[रेडियो-नाट्य के सिद्धान्त, इतिहास तथा विविध रूपों की रचना]

लेखक

हरिश्चन्द्र खन्ना, एम. ए.

नाट्य-निर्देशक, आकाशवाणी केन्द्र, नई दिल्ली

अधिकारी हिन्दी यूनिट, बी बी सी., लन्दन

भूमिका-लेखक

रेवतीसरन शर्मा

१९५५

आत्माराम एण्ड संस

प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

काश्मीरी गेट

प्रकाशक
रामलाल पुरी
आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

मूल्य छः रुपये

मुद्रक
श्यामकुमार गर्ग
हिन्दी प्रिंटिंग प्रेस
क्वीन्स रोड, दिल्ली-६.

भूमिका

रेडियो के आविष्कार से नाटक के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं। एक क्रान्तिकारी परिवर्तन तो यह हुआ है कि नाटक ने रेडियो पर आकर अपनी चोली बदल ली है। नाटक, जो मंच पर देखा जाता था, अब रेडियो सैट द्वारा सुना जाता है। नाटक, जिसकी कल्पना दृश्यों में की जाती थी, उसको अब ध्वनियों द्वारा संयोजित किया जाता है। नाटक, जिसका सम्बन्ध पहले आँख से, अभिनेता की वेष-भूषा से और मंच की सजधज से था, अब उसका रिश्ता कान से, ध्वनि से और प्रसारण यन्त्रों से जुड़ गया है। पुराने सम्बन्ध टूट जाने और नए रिश्ते जुड़ जाने से, नाटक के ढाँचे पर, उसके निर्माण-शास्त्र पर और उसके मूल्यांकन के सिद्धान्तों पर क्या प्रभाव पड़ा है, यह खोज किये बिना हम आधुनिक नाट्य-साहित्य का विवेचन नहीं कर सकते।

परन्तु नाटक के नए रूप को पहचानना और उसके मूलभूत आधारों का पता लगाना और इस प्रकार एक नए नाट्य-शास्त्र का निर्माण करना, कोई आसान काम नहीं है। इस काम के लिए पुराने नाट्य-साहित्य और पुराने नाट्य-शास्त्र का ज्ञान ही काफी नहीं है। इसके लिए आलोचक का ध्वनि के नए सिद्धान्तों (Theories of Sound), प्रसारण के नए यन्त्रों, और उनकी विशेषताओं से पैदा होने वाली टैक्निकल समस्याओं से, भली भाँति परिचित होना आवश्यक है। इस टैक्निकल ज्ञान के अतिरिक्त उसे यह भी मालूम होना चाहिए कि प्रसारण की कला में आज तक कितने प्रयोग हुए हैं और ध्वनि-यन्त्रों को किस-किस तरह अनेक प्रभाव पैदा करने के लिए प्रयुक्त किया गया है। निश्चय ही यह काम अध्ययन-कोष्ठ में बैठकर नहीं किया जा सकता। इसके लिए स्टूडियो की दुनिया में आकर उन विशेष मजबूरियों और उन विशेष सुविधाओं का पता लगाना होगा, जिनके कारण रेडियो-नाटक, मंच के नाटक से एक समकोण बनाता है।

स्पष्ट है कि यह कार्य वही व्यक्ति बड़ी कुशलता से कर सकता था, जिसे रेडियो के माध्यम का और नाटक प्रसारण का निजी अनुभव हो, जिसने रेडियो-नाटक लिखे हों और प्रोड्यूस किये हों, जिसने रेडियो-साहित्य का अध्ययन किया हो और रेडियो पर प्रयोग किये हों। और हरिश्चन्द्र खन्ना ने अध्ययन-अनुभव और प्रयोग की ये सब मंज़िलें तै की हैं। शायद इसी कारण उनकी यह पुस्तक हिन्दी के आलोचना साहित्य में अपनी तरह की पहली पुस्तक ही नहीं, अपनी तरह की खास और सब प्रकार से पूर्ण पुस्तक है।

हरिश्चन्द्र खन्ना पिछले सात-आठ वर्षों से ऑल इण्डिया रेडियो से सम्बन्धित

है और आज-कल ब्रिटिश ब्रॉडकास्टिंग कार्पोरेशन, लन्दन, में डेप्यूटेशन पर गये हुए है। ये अग्रेजी के बडे विद्वान् है और ससार के नाट्य-साहित्य का इन्होने गहरा अध्ययन किया है। इसके अतिरिक्त ये स्वय लेखक है। इस प्रकार इन्होंने प्रसारण के माध्यम और रेडियो-नाटक का अध्ययन, एक प्रोडचूसर, एक आलोचक और एक लेखक के तौर पर किया है। और यही विशेषता इनकी इस पुस्तक को न तो टैक्निकल किताबों की भाँति जटिल बनने देती है और न आलोचना की पुस्तकों की भाँति कोरी 'शास्त्रीय' (Academic)।

यह विशेषता पुस्तक के अध्यायों के क्रम ही से विदित हो जाती है। पहले अध्याय में ब्रॉडकास्टिंग का आम बयान है। दूसरे में रेडियो-नाटक का उद्गम और विकास और रेडियो-नाटक की प्रगति का सिंहावलोकन।

इन तीन अध्यायो द्वारा वे पाठक को रेडियो के विकास की कहानी और रेडियो-नाटक की पृष्ठभूमि ही नहीं बताते, बल्कि पुस्तक में एक साहित्यिक रुचि पैदा कर देते हैं। शुरू के अध्याय पढकर पाठक को भारत में प्रसारण और रेडियो-नाटक की प्रगति का पूर्ण ज्ञान हो जाता है। यहाँ तक सिंहावलोकन होता है। परन्तु इसके बाद लेखक विषय की गहराई में उतरता है। 'श्रव्य-कला और उसके मूलभूत आधार' और 'श्रव्य-कला और उसकी विशेषताएँ और परिसीमाएं' नामक अध्यायो में लेखक पाठको को ध्वनि और श्रुति (Sound and Listening) की रहस्यमयी दुनिया मे ले जाता है और श्रवणेन्द्रिय द्वारा सवेदन के उन नवीनतम वैज्ञानिक तथ्यों का ज्ञान कराता है, जिनका उल्लेख किसी हिन्दी पुस्तक में नहीं मिलता। ये अध्याय हिन्दी-साहित्य में एक नये विषय पर वैज्ञानिक गवेषणा का श्रीगणेश करते है।

इन अध्यायों द्वारा लेखक उन आधारो का पता लगाता है, जिन पर एक सफल रेडियो-नाटक का निर्माण किया जा सकता है और जिनकी कसौटी पर कस-कर रेडियो नाट्य-साहित्य की परख की जा सकती है। इन आधारों को निर्धारित करने के पश्चात् लेखक रेडियो-नाटक की टैकनीक पर विस्तृत बहस करता है। रेडियो-नाटक का निर्माण कैसे होता है, उसके सवाद कैसे होने चाहियें, और उसमें ध्वनि-प्रभावों का प्रयोग किस हद तक वांछनीय है, यह बताकर लेखक ने साहित्य के इस नये रूप की टैकनीक को वैज्ञानिक ढग से समझाया है। इस भाग में लेखक ने सैद्धान्तिक बातो को उदाहरण दे-देकर समझाया है और इस प्रकार पुस्तक का व्यवहारिक महत्त्व बढ़ गया है।

रेडियो-नाटक के अनेक रूप हैं और इन पर भी लेखक ने प्रकाश डाला है। इन रूपों की क्या विशेषताएँ हैं, इनके क्या-क्या भेद है, और इनके सफल सृजन और

निर्देशन के लिए किन-किन सिद्धान्तों का पालन करना आवश्यक है, लेखक ने बड़े स्पष्ट शब्दों में समझाया है। डॉक्यूमेंटरी यानी आलेख रूप, पर जो रेडियो-नाटक का नवीनतम रूप है, लेखक ने बड़ी गहरी खोज की है और प्रचार के इस नये माध्यम से सफलतापूर्वक लाभ उठाने के लिए लेखकों और प्रोड्यूसरों के लिए मूल्यवान सामग्री एकत्र की है।

यह सब कुछ करने के लिए लेखक को जिन कठिनाइयों से गुजरना पड़ा उसका ज्ञान मुझे भी है। लेखक को टैक्निकल सामग्री प्राप्त करने के लिए प्रसारण सम्बन्धी पुस्तकों की खोज में विदेशी दूतवासों की लाइब्रेरियां तक छाननी पड़ीं। पुस्तकें मिल गईं तो एक और विकटतम समस्या उठ खड़ी हुई। इन पुस्तकों में प्रसारण सम्बन्धी पारिभाषिक शब्द प्रयुक्त हुए थे। इनको कैसे हिन्दी-भाषा में ढाला जाए ? स्टूडियो में भी अंग्रेज़ी शब्द ही बोले जाते हैं और इनका हिन्दी अनुवाद किसी कोष में नहीं मिलता। अतः यह पुस्तक लिखने से पहले लेखक को प्रसारण सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दावली तैयार करनी पड़ी और इसमें इतना समय लगा कि लेखक का उत्साह कई बार टूटते-टूटते बचा। परन्तु गहरी खोज लग्न और प्रभाकर माचवे, रामचन्द्र तिवारी और बन्धु जी जैसे हिन्दी के ज्ञाताओं के बहुमूल्य परामर्श से यह बेल मंढे चढ़ी और लेखक अपना यह ग्रन्थ पूरा कर सका।

इन परिस्थितियों के कारण पुस्तक की शैली में वह निखार और निखार नहीं आ सका है, जो भाषा को सरल और सरस बना देता है। पुस्तक में भाषा कहीं-कहीं बहुत क्लिष्ट है। परन्तु लेखक ने अर्थ की सत्यता (Exactness) को शब्दों की सरलता के लिए कहीं कुरबान नहीं किया है। लेखक को स्वयं इस बात का ज्ञान था कि भाषा कुछ क्लिष्ट है और अगर वे अचानक लन्दन न चले जाते तो शायद भाषा को सरल बनाने की चेष्टा करते। परन्तु इसमें उन्हें कहां तक सफलता मिलती यह संदिग्ध है। इस प्रकार की टैक्निकल पुस्तकों में भाषा-स्तर सदा ही ऊंचा रहता है और रहना भी चाहिए।

इस पुस्तक का स्थान हिन्दी आलोचना-साहित्य के उस शैल्फ के उस खाने में है जो अब तक खाली पड़ा था। यह नहीं है कि समय के साथ-साथ इस खाने में और भी पुस्तकें आयेंगी और इसके पहलू में जगह पायेंगी, परन्तु रेडियो नाट्य-आलोचना के क्षेत्र में पहले पग-चिन्ह डालने का श्रेय, इसे ही प्राप्त रहेगा। और ये पग-चिन्ह मंजिल का पता ही नहीं देते, मंजिल तक पहुंचा भी जाते हैं।

५, भार्गव लेन
तीस हजारी
दिल्ली।

रेवतीसरन शर्मा

विषय-सूची

रे डि यो - ना ट क

प्रथम खण्ड

प्रास्ताविक

अध्याय पहला

ब्रॉडकास्टिंग

१. बेतार और रेडियो—जब वैज्ञानिक हेर्ट्ज, कार्लस्रोहे प्रयोगशाला में विद्युत-चुम्बकीय तरंगो की गति और उनकी प्रकृति आदि का विश्लेषण कर रहा था तो उसने कहाँ सोचा होगा कि वह एक ऐसे महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक तथ्य का आविष्कार कर रहा है जो कुछ ही वर्षो मे कला और सामाजिक जीवन के क्षेत्र में एक व्यापक क्रान्ति उत्पन्न कर देगा।

यह बात सन् अट्ठारह सौ सत्तासी की है। बान विश्वविद्यालय की ओर से एक विशेष पुरस्कार की घोषणा की गई थी, उस वैज्ञानिक के लिये जो विद्युत-चुम्बकीय शक्ति की कल्पना को वैज्ञानिक आधार पर प्रस्तुत कर सके। हेल्महोल्ट्ज ने अपने प्रिय शिष्य हेर्ट्ज का ध्यान इस घोषणा की ओर आकृष्ट किया। हेर्ट्ज ने पहले तो कुछ उत्साह नही दिखाया पर गुरु के आग्रह पर उसने यह खोज शुरू कर दी। प्रसन्न गुरु ने गुणी और प्रतिभावान शिष्य के लिये प्रो० कार्लस्रोहे पालीटेक्निक प्रयोगशाला में परीक्षण की सुविधाओ का प्रबन्ध कर दिया।

इस प्रकार रेडियो और बेतार के मूलभूत सिद्धान्त का पता लगाने की दिशा में पहला महत्त्वपूर्ण कदम उठाया गया। वैसे तो हेर्ट्ज ने पहले भी कई वैज्ञानिक इस रोमांचक विषय से सम्बद्ध अनेक अनुमान और धारणायें प्रकाशित कर चुके थे। ब्रिटिश वैज्ञानिक मैक्सवेल और कदाचित् इनसे भी पहले रूसी वैज्ञानिक पोपोव ने इस क्षेत्र मे मौलिक आविष्कार किये थे। लेकिन हेर्ट्ज ही वह पहला वैज्ञानिक था जिसने अनिश्चित अनुमानो को एक प्रामाणिक सिद्धान्त में परिणत किया। बहुत परिश्रम के बाद हेनरिख रुडोल्फ हेर्ट्ज यह सिद्ध करने में सफल हो गया कि विद्युत-चुम्बकीय तरंगे विस्तृत स्थान में फैलती और निश्चित गति से चलती हैं, और इस गति द्वारा जो स्पन्दन-शून्य (ईथर) मे पैदा होते है, वे जब किसी पदार्थ

से टकराकर परावर्तित होते है अथवा किसी माध्यम मे प्रवेश करते समय मुडते हैं तो उनका व्यवहार प्राय वैसा ही होता है जैसा कि उष्णता और प्रकाश की तरगो (Waves) का।

यह आविष्कार वास्तव में बहुत महत्त्वपूर्ण था। क्योकि इसी के आधार पर आगे चलकर मारकोनी ने १८९६ में विद्युत-चुम्बकीय तरगो के द्वारा एक सकेत (सिगनल) को पौने-दो मील की दूरी तक भेजन में सफलता प्राप्त की। १८९७ की एक शीत सध्या को ब्रिटेन के तट पर अट्ठारह मील दूर एक जलयान तक एक सन्देश भेजा गया। इसी प्रकार बेतार तथा रेडियो-प्रसारण का सिद्धान्त एक रोमाचक कल्पना या अद्भुत अनुमान मात्र न रहकर एक वैज्ञानिक सत्य बन गया।

रॉबिन्सन ने अपनी पुस्तक 'ब्रॉडकास्टिग' में एक रोमाचकारी घटना का उल्लेख किया है। सन् उन्नीस सौ दस की बात है मॉटरोज जलयान के कप्तान को एक मुसाफिर के विषय में सन्देह हुआ कि वह क्रिप्पेन नाम का एक हत्यारा है। उसने बेतार द्वारा यह सूचना लन्दन भेजी। इससे पहले कि जलयान अमरीका के तट पर लग सकता और हत्यारा भाग निकलता, पुलिस-अधिकारियो ने एक तेज स्टीमर से एटलाटिक सागर को पार कर हत्यारे को पकड लिया। इस घटना ने बहुत से लोगो का ध्यान बेतार के उपयोग की ओर खीचा। वे यह कल्पना करने लगे कि यह नया आविष्कार उनके जीवन के लिए कितना महत्त्वपूर्ण बन सकता है। दो वर्ष बाद बेतार ने एक डूबते हुए जहाज की सहायता की। इन घटनाओ ने बेतार को बहुत प्रसिद्ध कर दिया।

पहले महायुद्ध से पूर्व बेतार केवल दूर-दूर तक सकेत प्रसारित करने का एक साधनमात्र था। उस समय बेतार की मनोरजन और लोक-शिक्षण के माध्यम के रूप में कल्पना नही की गई थी। बेतार भी अन्य वैज्ञानिक आविष्कारों—रेल, हवाई-जहाज आदि की तरह भौगोलिक अन्तर को मिटाने की दौड में एक कदम था।

२ ब्रॉडकास्टिग का विकास—ब्रॉडकास्टिग का विकास उस समय शुरू हुआ जब बेतार के सिद्धान्त को लोकरजन के लिये प्रयुक्त किया गया। वैसे तो १९१४ से पहले भी शौकिया तौर पर कुछ साहसी व्यक्ति भाषण और सगीत को कुछ दूरी तक प्रसारित करने में सफल हो चुके थे, लेकिन श्रव्य-प्रसारण की वास्तविक प्रगति महा-युद्ध के दौरान में कुछ वैज्ञानिक आविष्कारो के कारण सम्भव हो सकी। युद्धकाल में ही थर्मियोनिक वेल्व का आविष्कार हुआ। पहला ब्रॉडकास्ट कार्यक्रम भी उन्ही दिनों सुनने में आया। १९१७ में कैप्टन एच० डी० ए० डोनिसथोर्प और उनकी पत्नी ने ग्रामोफोन रिकॉर्डो का एक साप्ताहिक कार्यक्रम प्रसारित करना आरम्भ किया। यह कार्यक्रम ब्रिटेन के वायरलैस ट्रेनिग कैम्पो के लिये आयोजित किया गया था ताकि

शिक्षण का नीरस कार्य रोचक बन सके।

उन्नीस सौ बीस में अमरीका के ऐमेचर प्रयोगकर्त्ताओं ने भी छोटे-छोटे संगीत कार्यक्रम प्रस्तुत करना आरम्भ कर दिया, यद्यपि इन कार्यक्रमों का प्रसार-क्षेत्र बहुत संकुचित होता था। प्रसिद्ध N D K A केन्द्र का पहला प्रोग्राम जिसे यूरोप के श्रोताओं ने सुना १९२१ में प्रसारित हुआ।

ब्रिटेन में भी प्रसार-केन्द्र स्थापित करने की सुविधाओं के लिये मांग की गई। १९२२ में मारकोनी कम्पनी को रिट्ल केन्द्र से आध घंटे का साप्ताहिक कार्यक्रम प्रसारित करने की आज्ञा मिल गई। शीघ्र ही मारकोनी कम्पनी ने एक और स्टेशन संचालित किया जो बाद में लन्दन केन्द्र के नाम से प्रसिद्ध हुआ। अमरीका में जनसाधारण ने इस नये आविष्कार में असाधारण रूप से रुचि दिखाई। उन्होंने अनुभव किया कि यह आविष्कार एक दिलचस्प मनबहलाव है, एक सस्ता और अद्भुत मनोरंजन है, और साथ ही साथ घर बैठे शिक्षा प्राप्त करने का एक उत्तम साधन भी। इसलिये अमरीकी जनता, रेडियो बनाने वालों, इश्तहारबाजों और अखबार वालों, सबने इस नये आविष्कार में गहरी दिलचस्पी दिखाई, और पूरे उत्साह से इसे विकसित करने का प्रयत्न किया। १९२४ में यू० एस० ए० में ११०५ ट्रान्समिटिंग स्टेशन काम कर रहे थे। प्रसार-केन्द्रों की इस अनियमित रूप से बढ़ती संख्या को हानिकारी समझा गया। १९२६ में सब रेडियो-निर्माताओं ने इकट्ठे होकर नेशनल ब्रॉडकास्टिंग कम्पनी बनाने का निश्चय किया।

यूरोप में ब्रॉडकास्टिंग का विकास प्रथम महायुद्ध के बाद वेग से होने लगा। चार साल तक पूरे यूरोप की जनता युद्ध में लड़ती रही थी। यहाँ ब्रॉडकास्टिंग थकित और उदास लोगों के लिए मनोरंजन का साधन बनी। अब जब कि युद्ध समाप्त हो चुका था सिपाही के सामने फौजी वर्दी उतारकर असैनिक जिन्दगी शुरू करने का सवाल था। इन नये नागरिक के जीवन की नीरसता को दूर करने के लिये रेडियो एक ऐसा सुविधापूर्ण मनोरंजन था जिसका आनन्द वह घर में अपने सगे-सम्बन्धियों और मित्रों के बीच बैठकर सम्मिलित रूप से ले सकता था। इस सन्दर्भ में हिल्डा मैथीसन ने अपनी पुस्तक 'ब्रॉडकास्टिंग' में एक दिलचस्प बात कही है। ब्रॉडकास्टिंग उन यूरोपीय देशों में अधिक वेग से विकसित और सम्पन्न हुई जहाँ घरेलू जिन्दगी का अधिक महत्त्व है। इसके अतिरिक्त यूरोप के उन देशों में रेडियो अधिक लोकप्रिय हुआ जिनकी जनता सुदूर विदेशों में व्याप्त नहीं थी, जैसे जर्मनी और ब्रिटेन में। फ्रांस और इटली में तो बहुत समय तक रेडियो एक मन बहलाने से अधिक कुछ न बन सका।

युद्ध से सम्बन्धित एक और बात भी थी जिसने रेडियो और ब्रॉडकास्टिंग के महत्त्व को बढ़ाया। युद्ध ने राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता दोनों भावनाओं के

से टकराकर परावर्तित होते हैं अथवा किसी माध्यम में प्रवेश करते समय मुड़ते हैं तो उनका व्यवहार प्राय वैसा ही होता है जैसा कि उष्णता और प्रकाश की तरंगों (Waves) का।

यह आविष्कार वास्तव में बहुत महत्त्वपूर्ण था। क्योंकि इसी के आधार पर आगे चलकर मारकोनी ने १८९६ में विद्युत-चुम्बकीय तरंगों के द्वारा एक संकेत (सिगनल) को पौने-दो मील की दूरी तक भेजने में सफलता प्राप्त की। १८९७ की एक शीत संध्या को ब्रिटेन के तट पर अट्ठारह मील दूर एक जलयान तक एक सन्देश भेजा गया। इसी प्रकार बेतार तथा रेडियो-प्रसारण का सिद्धान्त एक रोमांचक कल्पना या अद्भुत अनुमान मात्र न रहकर एक वैज्ञानिक सत्य बन गया।

रॉबिन्सन ने अपनी पुस्तक 'ब्रॉडकास्टिंग' में एक रोमांचकारी घटना का उल्लेख किया है। सन् उन्नीस सौ दस की बात है मॉंटरोज़ जलयान के कप्तान को एक मुसाफिर के विषय में सन्देह हुआ कि वह क्रिप्पेन नाम का एक हत्यारा है। उसने बेतार द्वारा यह सूचना लन्दन भेजी। इससे पहले कि जलयान अमरीका के तट पर लग सकता और हत्यारा भाग निकलता, पुलिस-अधिकारियों ने एक तेज़ स्टीमर से एटलांटिक सागर को पार कर हत्यारे को पकड़ लिया। इस घटना ने बहुत से लोगों का ध्यान बेतार के उपयोग की ओर खींचा। वे यह कल्पना करने लगे कि यह नया आविष्कार उनके जीवन के लिए कितना महत्त्वपूर्ण बन सकता है। दो वर्ष बाद बेतार ने एक डूबते हुए जहाज़ की सहायता की। इन घटनाओं ने बेतार को बहुत प्रसिद्ध कर दिया।

पहले महायुद्ध से पूर्व बेतार केवल दूर-दूर तक संकेत प्रसारित करने का एक साधनमात्र था। उस समय बेतार की मनोरंजन और लोक-शिक्षण के माध्यम के रूप में कल्पना नहीं की गई थी। बेतार भी अन्य वैज्ञानिक आविष्कारों—रेल, हवाई-जहाज आदि की तरह भौगोलिक अन्तर को मिटाने की दौड़ में एक कदम था।

२ ब्रॉडकास्टिंग का विकास—ब्रॉडकास्टिंग का विकास उस समय शुरू हुआ जब बेतार के सिद्धान्त को लोकरंजन के लिये प्रयुक्त किया गया। वैसे तो १९१४ से पहले भी शौकिया तौर पर कुछ साहसी व्यक्ति भाषण और संगीत को कुछ दूरी तक प्रसारित करने में सफल हो चुके थे, लेकिन श्रव्य-प्रसारण की वास्तविक प्रगति महा-युद्ध के दौरान में कुछ वैज्ञानिक आविष्कारों के कारण सम्भव हो सकी। युद्धकाल में ही थर्मियोनिक वेल्व का आविष्कार हुआ। पहला ब्रॉडकास्ट कार्यक्रम भी उन्हीं दिनों सुनने में आया। १९१७ में कैप्टन एच० डी० ए० डोनिसथोर्प और उनकी पत्नी ने ग्रामोफोन रिकॉर्डों का एक साप्ताहिक कार्यक्रम प्रसारित करना आरम्भ किया। यह कार्यक्रम ब्रिटेन के वायरलैस ट्रेनिंग कैम्पों के लिये आयोजित किया गया था ताकि

शिक्षण का नीरस कार्य रोचक बन सके।

उन्नीस सौ बीस में अमरीका के ऐमेचर प्रयोगकर्त्ताओं ने भी छोटे-छोटे संगीत कार्यक्रम प्रस्तुत करना आरम्भ कर दिया, यद्यपि इन कार्यक्रमों का प्रसार-क्षेत्र बहुत संकुचित होता था। प्रसिद्ध N D K A केन्द्र का पहला प्रोग्राम जिसे यूरोप के श्रोताओं ने सुना १९२१ में प्रसारित हुआ।

ब्रिटेन में भी प्रसार-केन्द्र स्थापित करने की सुविधाओं के लिये माँग की गई। १९२२ में मारकोनी कम्पनी को रिट्टल केन्द्र से आध घंटे का साप्ताहिक कार्यक्रम प्रसारित करने की आज्ञा मिल गई। शीघ्र ही मारकोनी कम्पनी ने एक और स्टेशन संचालित किया जो बाद में लन्दन केन्द्र के नाम से प्रसिद्ध हुआ। अमरीका में जनसाधारण ने इस नये आविष्कार में असाधारण रूप से रुचि दिखाई। उन्होंने अनुभव किया कि यह आविष्कार एक दिलचस्प मनबहलाव है, एक सस्ता और अद्भुत मनोरंजन है, और साथ ही साथ घर बैठे शिक्षा प्राप्त करने का एक उत्तम साधन भी। इसलिये अमरीकी जनता, रेडियो बनाने वालों, इश्तहारबाज़ों और अख़बार वालों, सबने इस नये आविष्कार में गहरी दिलचस्पी दिखाई, और पूरे उत्साह से इसे विकसित करने का प्रयत्न किया। १९२४ में यू० एस० ए० में ११०५ ट्रान्समिटिंग स्टेशन काम कर रहे थे। प्रसार-केन्द्रों की इस अनियमित रूप से बढ़ती संख्या को हानिकारी समझा गया। १९२६ में सब रेडियो-निर्माताओं ने इकट्ठे होकर नेशनल ब्रॉडकास्टिंग कम्पनी बनाने का निश्चय किया।

यूरोप में ब्रॉडकास्टिंग का विकास प्रथम महायुद्ध के बाद वेग से होने लगा। चार साल तक पूरे यूरोप की जनता युद्ध में लड़ती रही थी। यहाँ ब्रॉडकास्टिंग थकित और उदास लोगों के लिए मनोरंजन का साधन बनी। अब जब कि युद्ध समाप्त हो चुका था सिपाही के सामने फौजी वर्दी उतारकर असैनिक ज़िन्दगी शुरू करने का सवाल था। इस नये नागरिक के जीवन की नीरसता को दूर करने के लिये रेडियो एक ऐसा सुविधापूर्ण मनोरंजन था जिसका आनन्द वह घर में अपने सगे-सम्बन्धियों और मित्रों के बीच बैठकर सम्मिलित रूप से ले सकता था। इस सम्बन्ध में हिल्डा मैथीसन ने अपनी पुस्तक 'ब्रॉडकास्टिंग' में एक दिलचस्प बात कही है। ब्रॉडकास्टिंग उन यूरोपीय देशों में अधिक वेग से विकसित और सम्पन्न हुई जहाँ घरेलू ज़िन्दगी का अधिक महत्त्व है। इसके अतिरिक्त यूरोप के उन देशों में रेडियो अधिक लोकप्रिय हुआ जिनकी जनता सुदूर विदेशों में जाकर लड़ी थी, जैसे जर्मनी और ब्रिटेन में। फ्रांस और इटली में तो बहुत समय तक रेडियो एक खेल-तमाशे से अधिक कुछ न बन सका।

युद्ध से सम्बन्धित एक और बात भी थी जिसने रेडियो और ब्रॉडकास्टिंग के महत्त्व को बढ़ाया। युद्ध ने राष्ट्रीयता और [illegible] दोनों भावनाओं के

विकास को प्रोत्साहन दिया। अपने देश के प्रति आसक्ति बढ़ी तो दूसरे देशो के प्रति उत्सुकता भी। इन दोनो वृत्तियो ने ब्रॉडकास्टिंग के विकास में सहायता दी। युद्ध के बाद गरीबी, बेरोजगारी, दुःख और दीनता ने लोगो के स्वभावो में तेजी से क्रान्ति पैदा कर दी। स्केंडिनेवियाई देशो, स्वीडन, नारवे और डेन्मार्क, की जनता में भी रेडियो लोकप्रिय होता गया। मध्य यूरोप और पूर्वी यूरोप में से होते हुए यह प्रभाव बाल्कान देशो में पहुँचा और फिर इसी तरह दक्षिणी अमरीका में और सुदूर मैक्सिको में। वहाँ रेडियो को सैनिक शिक्षा के लिये प्रयोग किया गया। रूस ने क्रान्ति और संघर्ष के बीच ब्रॉडकास्टिंग का सत्कार किया। वहाँ १९२४ में पहला प्रसारण लाइसेंस दिया गया। रूस के जन-नेताओं ने इसके क्रान्तिकारी शिक्षा-साधन के मूल्य और प्रभाव-सम्पन्नता को पहचाना और इसके विकास की ओर विशेष ध्यान दिया। वास्तव में रूसी ब्रॉडकास्टिंग ही रूस में नये जीवन-दर्शन के प्रचार का शक्तिशाली माध्यम है। मास्को रेडियो अनेक भाषाओ में कार्यक्रम प्रसारित करता है। इस विश्वव्यापी प्रचार का नियमन पूर्णतया सरकारी है। इस प्रचार का उद्देश्य प्रेस, शिक्षा-व्यवस्था, थियेटर और सिनेमा की तरह विश्व के जीवन-दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना है।

३. **भारतीय ब्रॉडकास्टिंग**—भारत में ब्रॉडकास्टिंग विधिवत २३ जुलाई, १९२७ से शुरू हुई जब लॉर्ड अर्विन ने इण्डियन ब्रॉडकास्टिंग कम्पनी के बम्बई स्टेशन का उद्घाटन किया। इससे पहले बहुत सी एमेचर रेडियो ऐसोसियेशनो ने भारत के विभिन्न स्थानो पर बहुत कम शक्ति के ट्रासमिटर लगाकर प्रसारण के प्रयोग किये थे। १६ मई, १९२८ को मद्रास में पहली रेडियो-क्लब खोली गई थी और ३१ जुलाई से कार्य-क्रम प्रसारित होने शुरू हो गये थे। लेकिन कोई विशेष प्रगति लक्षित नही हुई थी। बम्बई केन्द्र की स्थापना के बाद २६ अगस्त को कलकत्ता स्टेशन भी खुल गया। भारत ब्रॉडकास्टिंग के विकास के लिए उपयुक्त है यह आरम्भ से ही अनुभव किया जाने लगा था। लॉर्ड अर्विन ने अपने भाषण में कहा था—

"India offers special opportunities for the development of Broadcasting Its distances and wide spaces alone make it a promising field To all Broadcasting will be a blessing and a boon of real value Both for entertainment and education, its possibilities are great, and as yet we perhaps scarcely realise how great they are"

उस समय भारत में कुल १,००० रेडियो-लाइसेंस थे। १९२७ के अन्त तक यह संख्या बढकर ३,५९४ तक पहुँच गई और १९७८ के अन्त तक ६,१५२ तक। लेकिन इस प्रगति में गतिरोध आ गया। १९२९ के अन्त तक लाइसेंस संख्या थी—७,७७५ और १९३० के अन्त तक उससे भी कम यानी ७,७१९। १९३२ के अन्त तक

रेडियो-लाइसेंसों की संख्या सिर्फ ८,५५७ थी। इसके बाद स्थिति कुछ सुधरना शुरू हुई। १९३४ में यह संख्या १७,१३९ तक पहुँच चुकी थी और १९३८ के अन्त तक ५०,००० तक। अप्रैल १९३९ तक कुल संख्या ७४,००० थी। तब तक कई नये स्टेशन खुल चुके थे। १९३६ में दिल्ली और १९३७ में पेशावर और लाहौर, १९३८ में लखनऊ और मद्रास १९३९ में ढाका और त्रिचनापल्ली। ब्रॉडकास्टिंग की व्यवस्था में भी मूल परिवर्तन आ चुका था। क्योंकि मार्च १९३० में इण्डियन ब्राडकास्टिंग कम्पनी दिवालिया हो गई थी इसलिये करीब एक महीने बाद ब्राडकास्टिंग का अधिकार सरकार ने अपने हाथ में ले लिया और आई० बी० सी० का नाम इण्डियन ब्रॉडकास्टिंग सर्विस रख दिया गया था। यह नाम भी १९३६ मे बदल गया। अब ब्राडकास्टिंग संस्था का नाम था ऑल इण्डिया रेडियो।

दूसरा महायुद्ध—जितनी प्रगति रेडियो और ब्रॉडकास्टिंग के क्षेत्र मे युद्धकाल में हुई उतनी किसी भी काल में नहीं हुई। ब्रॉडकास्टिंग की जडें अभी पूरी तरह भूमि में जमने न पाई थी कि उस पर इतने भारी दायित्व का बोझ आ पड़ा। सरकार ने पहली बार प्रचार के इस नये माध्यम की शक्ति को आजमाया, प्रोग्रामों का विस्तार हुआ और नई-नई समस्याएँ सामने आईं। पहली बार कार्यक्रम प्रस्तुत करने वालों को कम से कम समय में अधिक से अधिक प्रभावपूर्ण प्रोग्रामों का आयोजन करना पड़ा। इस काल मे बहुत से प्रयोग हुए और रेडियो-कौशल का विकास हुआ। रेडियो-नाटक के आधुनिक रूप का उद्भव भी इसी काल में हुआ। इसके अतिरिक्त रेडियो-नाट्य के एक नये और प्रभावशाली प्रकार—रूपक—का विकास भी इसी काल में हुआ। यह नया रूप बहुत शीघ्र ही लोकप्रिय हो गया। आलेख रूपक (डाकूमेंटरी) भी इसी प्रयोगवादी काल की उपज है।

स्वतन्त्रता—भारत के स्वतन्त्र होते ही राष्ट्रीय जीवन के अन्य पहलुओं के विकास के साथ रेडियो का भी महत्त्वपूर्ण विकास हुआ। पंचवर्षीय योजना और सप्त-वर्षीय विकास-योजनाओं के अधीन सांस्कृतिक क्षेत्रों के अनुरूप नये प्रसारण-केन्द्रों की स्थापना हुई ताकि प्रत्येक प्रदेश अपने वैविध्यपूर्ण जीवन के सौन्दर्य को ब्राड-कास्टिंग द्वारा अभिव्यक्त कर सके, ताकि प्रत्येक प्रदेश की जनता को उनके कल्याण के लिये उसके जीवन के नित्य प्रति के उपादानों की सहायता दी जा सके। अब विभिन्न प्रदेशों मे २१ केन्द्र हैं। स्वतन्त्रता के पश्चात् प्रसारण-नीति में भी महत्त्वपूर्ण और मूलभूत परिवर्तन दृष्टिगोचर हुए। मनोरंजन की अपेक्षा शिक्षा और [illegible] पर अधिक बल दिया गया। रेडियो [illegible] का एक मनोरंजन साधन नहीं बल्कि राष्ट्र-निर्माण के काम में योग देने वाला एक शक्तिशाली साधन समझा जाने लगा। अब बच्चों-विद्यार्थियों, किसान-मजदूरों आदि के लिये [illegible] कार्यक्रमों में [illegible]

जागरूकता और दायित्वपूर्णता पाई जाती है। स्वतन्त्रता के साथ राष्ट्रभाषा हिन्दी का पुनरुत्थान भी हुआ है। इसका प्रभाव मौलिक रचनाओ की बढती हुई सख्या में प्रकट है।

व्यवस्था—ब्रॉडकास्टिग के विस्तार की कहानी बहुत लम्बी है। उसके वर्णन के लिये इस पुस्तक मे स्थान नही क्योकि इसका क्षेत्र ब्रॉडकास्टिग का एक रूप-रेडियो-नाट्य है। यहाँ इतना कह देना काफी होगा कि ब्रॉडकास्टिग का विकास प्राय सब देशो में एक ही तरह से हुआ है। पहले पहल ऐमेचर मडलियो ने प्रसारण-प्रयोग किये। शीघ्र ही जनता ने इस प्रयोग में दिलचस्पी लेना शुरू कर दिया। फलत. शासन-व्यवस्था को इसके विकास में प्रोत्साहन देना पडा। पर जैसे ही लोकरजन के माध्यम का वास्तविक मूल्य और शक्ति उन पर प्रकट हुई उन्होने इसे अपने अधिकार में लाना हितकर समझा। ब्रॉडकास्टिग का विकास विभिन्न देशो की परम्परा और सामयिक शासन-व्यवस्था के अनुकूल भिन्न-भिन्न देशो में भिन्न-भिन्न प्रकार से हुआ। उदाहरणार्थ ब्रिटेन ने कारपोरेशन-प्रणाली को अपनाया तो जर्मनी ने रेडियो को शासन का एक अग, एक प्रचारयन्त्र (Mouth-piece) बनाना हितकर समझा। रूस में भी ब्रॉडकास्टिग को देश-निर्माण और प्रचार का शक्तिशाली माध्यम बनाया गया। अमरीका मे आर्थिक क्षेत्र की तरह ब्रॉडकास्टिग के क्षेत्र को भी मुक्त स्पर्द्धा (Free Competition) का अखाडा बनने दिया गया। भारत में ब्रॉडकास्टिग शासन का एक सूत्र है।

इन व्यवस्था-प्रणालियो में से कौनसी अच्छी और कौनसी बुरी है, यह कहना असम्भव है। वास्तव में प्रश्न उद्देश्यो की पूर्ति का है। जो व्यवस्था समाज के उद्देश्यो को पूर्ण कर सकती है वह किसी के भी अधिकार में हो अच्छी कहलायेगी। अगर वह उन उद्देश्यो को पूर्ण नही होने देती या विरोधी उद्देश्यो की पूर्ति में सहायक होती है, तो वह प्रणाली अहितकर और बुरी समझी जायेगी।

४. ब्रॉडकास्टिग का उद्देश्य—साहित्य की तरह ब्रॉडकास्टिग का प्रथम और सर्वोत्तम उद्देश्य मनोरजन के द्वारा जनता को जाग्रत करना है। नये युग के मूल्यो के प्रति उन्हे सजग करना और उनमें घटनाओ और समस्याओ को स्वतन्त्रतापूर्वक और निर्विकार बुद्धि से जाँचने-परखने की क्षमता का विकास करना और लोकरुचि को सुधारना, उसके लिये स्वस्थ जीवन मे अभिव्यक्ति के मार्ग प्रस्तुत करना है। इस प्रकार ब्रॉडकास्टिग देश और राष्ट्र के निर्माण के लिये एक शक्तिवान उपकरण (Force) है। इसके विरुद्ध अगर ब्रॉडकास्टिग जनता को उनके विकारो, द्वेषो को उकसा-भडकाकर सकीर्ण मनोवृत्ति वाला बनाती है, उन्हे प्रगतिशील और स्वस्थ मूल्या के प्रति सन्दिग्ध, विकृत और झूठे मूल्यो के प्रति आकृष्ट करती है, तो यह ब्रॉडकास्टिग का नकारात्मक प्रयोग होगा। रेडियो का उद्देश्य विश्व की विभिन्न

जातियों को एक-दूसरे के सन्निकट लाना होना चाहिए, उनमें परस्पर विश्वास और सहानुभूति पैदा करना, न कि घृणा और भय। आदर्श कला की तरह ब्रॉडकास्टिंग को राष्ट्रों में एकता, मानवता में सन्तुलन स्थापित करना चाहिए।

ब्रॉडकास्टिंग एक सोद्देश्य कला है। यहाँ पहुँचकर हमें उस प्रश्न पर विचार करना होगा जो अक्सर ब्रॉडकास्टिंग के सामने आता रहा है। वह यह, कि ब्रॉडकास्टिंग का वास्तविक प्रयोजन क्या है ? ब्रॉडकास्टिंग का उद्देश्य क्या है, मनोरंजन, शिक्षण या मनोरंजन द्वारा शिक्षण ?

पहले पहल जब रेडियो एक तिलिस्मी आविष्कार था, श्रोता के लिये प्रत्येक प्रसारित कार्यक्रम अद्भुत तथा रोचक था। कुतूहल और आश्चर्य ने श्रोता की आलोचना-वृत्ति को जैसे थपकी देकर सुला दिया था। पर जैसे-जैसे ब्रॉडकास्टिंग का विकास होता गया, श्रोता अधिकाधिक संवेदनशील (Sensitive) और आलोचनाशील बनता चला गया। पहले सीधे-सादे नाटक हमें मोहित कर देते थे लेकिन अब हम नाटक से बहुत से नये मूल्यों की माँग करते हैं। संगीत में भी पुरानी तर्जें जैसी भी होतीं हमें अच्छी लगतीं। बीस वर्ष पुराने रिकॉर्डों को बजाकर सुनिये और देखिये वही गाने जिन पर हम कभी झूम जाया करते थे, अब हमारे कानों को खटकने लगते हैं। कारण यह, कि रुचि में भी सामयिक परिवर्तन आते रहते हैं।

ब्रॉडकास्टिंग के मानमूल्य भी समय के परिवर्तनानुसार बदलते रहने चाहिएँ, ताकि लोकरंजन-कला सदा एक सजीव वास्तविकता बनी रहे।

ब्रॉडकास्टिंग के उद्देश्यों में इसी प्रकार का परिवर्तन देखा गया है। जब रेडियो बिलकुल नया-नया था तब प्रत्येक प्रोग्राम के मनोरंजन तत्त्व पर अधिक बल दिया जाता था। प्रयत्न यह था कि श्रोताओं की उत्सुकता को जगाकर उन्हें नये माध्यम के प्रति आकर्षित किया जाय। नाटक में चमत्कारिक प्रभावों पर अधिक बल था, चारित्रिक संघर्षों या असाधारण परिस्थितियों के विश्लेषण पर नहीं। अब स्थिति भिन्न है। जागृत श्रोता अब चमत्कार मात्र से कदापि सन्तुष्ट नहीं होता। वह कुछ और चाहता है। अपने वातावरण का प्रतिबिम्ब, अपनी परिस्थितियों [illegible], अपनी समस्याओं का [illegible], और कदाचित् उनमें से कुछ का समाधान। वह [illegible] एक सजग, गम्भीर मित्र मानता है, जादू की पिटारी वाला मदारी नहीं। इसलिये वह एक ब्रॉडकास्ट-कार्यक्रम से वही आशा रखता है जो एक साथी से रखी जाती है।

मनोरंजन-कला और शिक्षण-कला एक दूसरे की विरोधी नहीं हैं। दोनों में एक तत्त्व समान है—रोचकता। मनोरंजन का आधार [illegible] रोचकता है। शिक्षात्मक ब्रॉडकास्ट का आधार भी यही है। अगर [illegible] नहीं होगा तो श्रोता उसे सुनने के लिये बाध्य नहीं है। इसलिये ब्रॉडकास्टों की [illegible]

उनके मानसिक स्तर, उनकी सामाजिक परिस्थितियो तथा उनके सस्कारो का ज्ञान कार्यक्रम प्रस्तुत करने वाला और रेडियो-लेखको के लिये अपेक्षणीय हे। इस दृष्टिकोण मे प्रत्येक ब्राडकास्ट शिक्षात्मक है। क्योकि प्रत्येक विषय में अन्तर्निहित विचार-वस्तु अस्पष्ट किन्तु निश्चित रूप से श्रोता को प्रभावित करती है, उसके विचार-व्यवहार के सन्तुलन को निर्धारित करती है। अत कहा जाता है ब्रॉडकास्टिंग का वास्तविक उद्देश्य यही अस्पष्ट किन्तु निश्चित रूप से काम करने वाली शिक्षा-दृष्टि है। विशेषकर वर्तमान स्थिति मे, जब कि, किसी भी व्यवस्था या प्रयोग की सफलता के लिये जनता का सहयोग अनिवार्य है। कोई भी प्रगति का कार्यक्रम अथवा योजना सफल नही हो सकती यदि जनता उसमे रुचि, उसके आदर्शो के प्रति आदर एव सहानुभूति न रखती हो। इसलिये हर प्रगतिशील शासन-व्यवस्था का धर्म हो जाता है कि वह जनशिक्षा के विस्तार का अपना प्रमुख उद्देश्य बनाये।

जब जब यह विचार-शक्ति ग्रहण करता जायगा ब्रॉडकास्टिंग का महत्त्व भी उसी परिमाण मे बढता चला जायगा। इस समय ब्रॉडकास्ट कार्यक्रमो में जनता के इन विभिन्न अशो (Cross-section) के लिये विशेष और भिन्न कार्यक्रमों की व्यवस्था की जाती है। विद्यार्थी, मजदूर, किसान, बच्चे, नारियाँ आदि। इस प्रकार ब्रॉडकास्टिंग सामान्य जनता के लिये युग सम्पर्क का एक प्रभावशाली माध्यम बन चुकी है।

विज्ञान के अन्य आविष्कारो की तरह जिनका मूल उद्देश्य जन-जीवन को अधिक पूर्ण और सम्पन्न बनाना रहा था, ब्रॉडकास्टिंग का उपयोग क्रियात्मक और रचनात्मक भी हुआ है, और नकारात्मक और ध्वसात्मक भी। एक ओर ब्रॉडकास्टिंग लोकरजन और जन-शिक्षण का शक्तिशाली साधन बनी है। भौगोलिक अन्तरो के रहते भी रेडियो ने एक तरह की सामान्य और व्यापक सास्कृतिक एकता की रचना की है। दूसरी ओर, ब्रॉडकास्टिंग यन्त्र बनी है जन-विरोधी आक्रमको की शक्ति के प्रसार का, साधन बनी है जनशोषण और विकृत एव कुत्सित मूल्यो के प्रचार का। वास्तव में ब्रॉडकास्टिंग का उपयोग उद्देश्यानुसार जन कल्याण के लिये, या जन-अहित के लिये हो सकता है। जर्मनी में नाजी रेडियो हिटलर की शक्ति के प्रचार का साधन था। उधर सोवियट रूस में विस्तृत क्षेत्र मे फैली अशिक्षित जनता को जाग्रत करने में जितना हाथ रेडियो का रहा है उतना किसी और प्रचार-साधन का नही रहा। ब्रॉडकास्टिंग के इस प्रभावशाली माध्यम के सदुपयोग अथवा दुरुपयोग का दायित्व शासन-व्यवस्था और लोक-नेताओ पर है।

५. नया माध्यम, नयी रचना-लिपि—इस आविष्कार के सामाजिक परिणाम तो थे ही लेकिन कला के क्षेत्र में जो परिणाम लक्षित हुए वे भी कम महत्त्वपूर्ण या कम क्रान्तिकारी नही थे। थोडे ही समय में एक नये, वृहद् और प्रभावशाली कला

माध्यम और उससे आविर्भूत अन्य कला-रूपों का उद्गम और विकास हुआ [illegible] नयी रचना-लिपि का आविष्कार हुआ। इस विकास की कहानी बहुत लम्बी है। जो प्रगति पिछले २५ वर्षों में श्रव्यकला के क्षेत्र में हुई है उसे क्रान्तिकारी कहना [illegible] नहीं होगा। अब ब्रॉडकास्टिंग एक स्वतन्त्र कला है। उसका अपना मूल्य-विधान है।

इसलिये जहाँ मनोवैज्ञानिकों और समाजशास्त्रज्ञों को इस सांस्कृतिक क्रान्ति के सामाजिक पहलुओं पर विचार करना पड़ा है, वहाँ कलाविज्ञ को श्रव्यकला (Aural art) के कलात्मक दृष्टिकोण पर सोच-विचार करना अनिवार्य हो गया है।

श्रव्यकला ने कलाकार के लिये सृजनात्मक अभिव्यक्ति और आविष्करण के अनेक अवसर प्रस्तुत किये हैं। उस अद्भुत प्रयोग ने जैसे एक विचित्र संसार को खोज निकाला जहाँ ध्वनि ऐसे सूक्ष्म और अरूप माध्यम से भी इतने प्रकारों की सफल अभिव्यक्ति सम्भव है। विशेषतया नाटककार के लिये यह प्रयोग बहुत महत्त्वपूर्ण था क्योंकि पहली बार उसने केवल श्रुति पर आधारित रचना-शिल्प द्वारा अपने भाव-सत्य को व्यक्त करने का प्रयास किया। यह अभिव्यक्ति कितनी सरल और साथ ही साथ कितनी प्रभाव-सम्पन्न थी। कम से कम शब्दों में वह अधिक से अधिक कह सकता था। केवल संकेत मात्र से ही वह श्रोता के मन में विचित्र और तीव्र भावों का उद्दीपन कर सकता था। पहली बार उसने अपनी कलाकृति से दृश्य तत्त्व का निरसन कर दिया, जो जीवन के प्राय हर क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण है, और संगीत को छोड़कर सब कलाओं के लिये अनिवार्य।

रेडियो के माध्यम द्वारा प्रसारित साहित्य की रचना निश्चय ही अनुकरणात्मक कलाओं के क्षेत्र में एक क्रान्तिकारी प्रयोग था। अब तक साहित्य और विशेषकर नाट्य-साहित्य दृश्य वस्तु था। उसका प्रभाव प्रेक्षक या पाठक तक दृष्टि द्वारा ही पहुँचता था। हम कविता या कहानी पढ़ते थे, नाटक देखते थे। इन दोनों का आधार मुख्यत 'देखना' था, सुनना नहीं। साहित्य की शास्त्रीय परिभाषा में किस प्रकार परिवर्तन आता चला गया इसका संकेत अगले परिच्छेद में दिया गया है। पढ़ने-लिखने के आविष्कार और विकास के फलस्वरूप साहित्य क्रमशः श्रव्य से दृश्य की ओर झुकता चला गया है। जब श्रव्य कलाकार ने नाटक के समूचे प्रभाव को श्रव्य माध्यम द्वारा प्रसारित करने का प्रयास किया तो उसके सम्मुख अनेक प्रश्न थे, अनेक परिसीमितियाँ और असुविधाएँ थीं। इन प्रश्नों का उत्तर देने और इन परिसीमितियों के होते हुए भी प्रभाव-सम्पन्न अभिव्यक्ति का प्रयास करते हुए उसने एक नये रचना-शिल्प और एक नये प्रभावशाली अभिव्यञ्जनात्मक माध्यम का आविष्कार किया। नये रूप-विधान निर्मित हुए और एक 'नये नाट्य' का जन्म हुआ, रेडियो-नाट्य का। इस पुस्तक का विषय यही नया नाट्य है।

अध्याय दूसरा

रेडियो-नाट्य का उद्गम और विकास

६. रेडियो-नाटक का विकास एक आधुनिक घटना है। अभी कुछ वर्ष पहले तक रेडियो-नाटक का विशेष अस्तित्व नही था। न साहित्य में उसका अपना कोई स्थान था। लेकिन जैसे-जैसे रेडियो टैक्नीक का विकास हुआ यह सिद्ध होता गया कि रेडियो पर केवल वही नाटक पूर्ण रूप से सफल हो सकता है जो विशेष रूप से रेडियो के लिये लिखा जाय। तत्पश्चात् लेखको का ध्यान इस दिशा में आकृष्ट हुआ और रेडियो-नाटक लिखे जाने लगे। यानी ऐसी नाटकीय कृतियाँ रची जाने लगी जिनके पूरे प्रभाव को, समूचे सौन्दर्य को, श्रुति और केवल श्रुति माध्यम द्वारा अभिव्यक्त किया जा सकता था। वैसे यह तो आरम्भ में ही अनुभव कर लिया गया था कि साहित्य की बहुत सी प्रसिद्ध कृतियो को रेडियो द्वारा भली भाँति प्रसारित किया जा सकता है। इसके लिये थोडी-बहुत कतर-ब्योंत, कुछ सशोधन-परिशोधन की आवश्यकता तो होती थी, किन्तु मूल कृति में किसी विशेष परिवर्तन की जरूरत महसूस नही की जाती थी। इस प्रकार अनेक कवित्त्व-प्रधान या विचार-प्रधान नाटक अत्यन्त सरलता से प्रसारणीय बना लिये जाते थे क्योकि इन दो तत्त्वो का प्रभाव, दृश्य की अपेक्षा श्रव्य के माध्यम द्वारा अधिक सरलता, तीव्रता और परिपूर्णता से व्यक्त हो सकता था। लेकिन वास्तव मे अत्यधिक सफल नाटक वही थे जो विशेष रूप से रेडियो के लिये लिखे गये।

७ नया नाट्य रूप—रेडियो-नाटक के विकास के प्रारम्भिक काल में एक महत्त्वपूर्ण तथ्य सामने आया जो अब रेडियो-नाट्य का मूलभूत सिद्धान्त है। वह यह कि घटना-प्रधान नाटक की अपेक्षा विचार-प्रधान या वातावरण-प्रधान नाटक रेडियो के लिये अधिक उपयुक्त, अधिक सफल और प्रभावोत्पादक होता है। कारण यह कि अरूप और सूक्ष्म जितनी सफलता से रेडियो द्वारा प्रसारित हो सकता है उतना रूपायत्त और स्थूल नहीं। दृष्टि को रूपायत्त (Concrete) और स्थूल (Solid) प्रभावित करती है, कल्पना को सूक्ष्म। इसके अतिरिक्त रेडियो-नाटक के लिये विस्तारपूर्ण विषय की अपेक्षा प्रगाढ (Intense) और सघन (Concentrated) विषय अधिक सफल रहते है। पात्रो की भीड-भाड, घटनाओ की भरमार कल्पित चित्र को अस्पष्ट बना देती है। इसलिये अतरग (Intimate) विषय चुनना अति सफल रहता है।

पुराने रेडियो-नाटक का स्वरूप प्राय वही था जो उसके समसामयिक रग-नाटक का था। रग निर्देश अकसर एक निरूपक द्वारा पढ दिये जाते थे। प्रवेश-प्रस्थान आदि मचीय कार्यकलाप को ध्वनियुक्त क्रिया मे व्यक्त किया जाता था। कथा का निर्वाह प्राय रग-नाटक के कथानक ऐसा ही रहता, ढीलाढाला, विस्तृत और कभी-कभी उच्छृखल। सरल कथानक और एक प्रभाव, एक वातावरण की परिधि मे केन्द्रित सुगठित रेडियो-नाटक वाद की उपज है।

मनोवैज्ञानिक और समस्या-प्रधान विश्लेषणात्मक नाटक का विकास रेडियो-नाटक के विकास में विशेषरूप मे सहायक हुआ क्योकि नाटक के इस प्रकार मे घटनाओ से अधिक विचार तथा भाव पर अधिक वल दिया जाता है। इसके अतिरिक्त उसका प्रभाव विस्तार का नही संयम और प्रगाढता का रहता है। इसलिये, मेगाफोन की अपेक्षा वह माईक्रोफोन द्वारा प्रसारित होने के लिये अधिक उपयुक्त अभिनय-शैली का आविर्भाव भी स्वाभाविक था। यह शैली रगमच की अतिरजना-प्रधान शैली से सर्वथा भिन्न थी, वल्कि यो कहा जाय कि यह स्वाभाविकता और यथार्थ-प्रधान शैली प्रतिक्रिया थी रगमच की कृत्रिमतापूर्ण शैली की। रग-नाटक के सवाद ऐसे होते थे जिनके पूरे प्रभाव को व्यक्त करने के लिये उन्हे ऊंचे स्वर में अदा (Deliver) किया जाना अनिवार्य था। रेडियो-नाटक की सवाद-शैली मे यह विशेषता थी कि वह धीमे स्वर मे पढी जाने के लिये थी क्योंकि सवाद सुनने वाला रग-नाटक के प्रेक्षक की तरह वाचको से दूर नही होता, वल्कि अतिनिकट होता है। इस समीपत्व के तत्व ने एक नवीन सवाद-शैली और विभिन्न अभिनय-कला का विकास किया।

रेडियो-नाटक का श्रोता रग-नाटक के प्रेक्षक की अपेक्षा अधिक सहृदय (Sensitive) और सजग होता है। रचना और निर्माण के दोष, विचारो के प्रस्तुती-करण के दोष, अभिनय के दोष रेडियो पर अधिक स्पष्ट रूप से प्रगट हो जाते है। उदाहरणार्थ, एक ढीलाढाला दृश्य अच्छे अभिनय या रोचक परिपार्श्व की सहायता से रगमच पर भले ही निभ जाय, रेडियो पर वह कभी सफल नही हो सकता। इसी प्रकार अगर अभिनेता का सभाषण और उच्चारण ठीक नही है और उसके विराम (Pauses) और वल (Stresses) उचित स्थानो पर नही दिये गये है तो न केवल प्रस्तुत विचार सरलता से समझ में नही आ सकेंगे, बल्कि प्रस्तुत चरित्र के सत्य का स्पष्टीकरण भी न होगा। माइक्रोफोन इस दोष को सदा बहुत उभारकर प्रकट करेगा। अतिरजन का दोष मच पर कभी-कभी चल जाता है रेडियो पर वह अति स्पष्ट रूप से हास्यास्पद और असत्य हो जाता है। वाणी और स्वर से हल्के से हल्का विचार भी माइक से Magnify हो जायेगा और श्रोता विचलित होगा। इसीलिये भावातिरञ्जन-प्रधान दृश्यो का अभिनय रेडियो पर अधिक कठिन होता है। क्योंकि

सदा अप्राकृतिकता (Fasle note) का भय रहता है। कारण, श्रोता रेडियो-नाटक के अभिनेताओं को दूरी से नहीं देखता जैसे कि प्रेक्षक देखता है, बल्कि उनके बीच रह कर उनसे परिचित होता है। इसी आत्मीयता, इसी नैकट्य के कारण रेडियो-अभिनेता का कार्य अत्यन्त कठिन हो जाता है। लेकिन इस परिमिति के साथ-साथ रेडियो-नाट्य के विशेष गुण भी हैं। Hilda Mathieson ने उन्हें बहुत सुन्दर शब्दों में व्यक्त किया है —

"The concentration upon one sense, the inevitable sharpening of the ear to catch fine shades of voice and meaning, the impression that the speakers are close besides one, may all help to emphasise the human element, to bring one more intimately into touch with the thought and emotions which players are interpreting, and at the same time give a fuller weight to the beauty of language and cadence"

इसलिये रेडियो-नाट्य में भाषा और ध्वनि पर पूरा बल दिया जाता है। इस कला-प्रवृत्ति का चरमोत्कर्ष आज शब्द-प्रधान या संवाद-प्रधान नाटक के रूप में हमारे सामने है।

रेडियो-नाट्य का आधार यह सिद्धान्त था कि प्रत्येक ध्वनि व्यंजना से सम्पन्न है, और प्रत्येक शब्द उच्चारण मात्र से श्रोता में विशेष भाव जाग्रत कर सकता है। ध्वनि और शब्द के उचित सामंजस्य से रेडियो-शैली का जन्म हुआ। रंग-नाटक दृश्य वस्तुओं का प्रयोग करता है—परिपार्श्व, लिबास, हावभाव आदि, किन्तु रेडियो-नाटक श्रव्य वस्तुओं का प्रयोग करेगा जैसे ध्वनि, संगीत, आदि। रंग-नाटक का आधार स्थायित्व है, रेडियो-नाटक का गति। इसलिये रंग-नाटककार बड़े-बड़े दृश्यों का निर्माण करता है, उसे करना पड़ता है—रेडियो-नाटककार छोटे-छोटे वेगवान, गतिशील दृश्यों का, ठीक उसी तरह जैसे कि फिल्म-निर्माता करता है। सारांशतः रेडियो-नाटककार उस शिल्प का प्रयोग करता है जिसका माध्यम माईक्रोफोन है।

ध्वनि और संगीत को रेडियो-नाटक का प्राण समझा जाता था। इसलिये प्रारम्भिक काल के नाटक बहुत से ध्वनि-प्रभावों और चामत्कारिक आभासों से भरे रहते थे। जैसे एक बालक को एक अद्भुत खिलौना हाथ लग जाय और वह उसे बार-बार चलाता फिराता रहे। धीरे-धीरे सन्तुलन स्थापित हो गया। अब वर्तमान रेडियो-नाटक में ध्वनि-प्रभाव के महत्त्व को तो स्वीकार किया जाता है, लेकिन उन्हें रेडियो-कृति का प्राण नहीं माना जाता। ध्वनि प्रभाव या आभास केवल उस स्थान पर प्रयुक्त होता है जहाँ उसके अभाव में अर्थग्रहण अधूरा रहना हो। अब जो आदर्श धारणा स्थापित हुई है वह Hilda Mathieson के शब्दों में यह है—

" Plays for microphone must possess that solid basis of interest, without which virtuosity in noises is of no permanent avail"

(प्रसारण के लिये रचे गए नाटको में रोचकता का मूलतत्व उपस्थित रहना चाहिए। इसके अभाव में ध्वनि के सब अद्भुत चमत्कार निरर्थक होगे।)

८. **रेडियो-नाटक की बढती हुई लोकप्रियता**—रेडियो-नाटक प्रसारित कार्यक्रमो में सदा श्रेष्ठ स्थान पाता रहता है। समाचार को छोडकर इस समय नाटक सबसे अधिक लोकप्रिय कार्यक्रम है। लेकिन इस लोकप्रियता को पाना अत्यन्त कठिन भी है। इसके कई कारण हैं। अच्छे नाटक जो विशेष रूप से रेडियो के लिये, और श्रव्य-सिद्धान्तो के अनुरूप लिये गये हो, बहुत कम मिलते हे। अच्छे मौलिक रेडियो-नाटको की कमी को पूरा करने के लिये सभी केन्द्र प्रसिद्ध नाट्य-कृतियो के रेडियो-रूपान्तर ब्रॉडकास्ट करते रहते हैं। क्योकि रेडियो उचित पारितोषक नही देता, या दे सकता, इसलिये कुशल और प्रसिद्ध नाटककार फिल्म की ओर अधिक आकृष्ट होता है। तरुण नाटककार श्रव्य-सिद्धान्त और रेडियो-शिल्प से परिचित नही है। इसलिये मौलिक नाटक बहुत कम मिलते है। १९३७ में ऑल इण्डिया रेडियो दिल्ली, ने सर्वश्रेष्ठ नाटक के लिये एक पुरस्कार की घोषणा की थी। इस प्रतियोगिता के लिये जो नाटक आये उनमें से एक भी ऐसा न था जिसे प्रथम पुरस्कार दिया जा सकता। स्पष्ट है कि भारत में अभी रेडियो-नाटक बहुत ही अल्पविकसित है। अब स्थिति पहले की अपेक्षा काफी सुधर चुकी है। प्रतिभावान लेखक रेडियो की ओर आकृष्ट हो रहे है, और अच्छे रेडियो-नाटक भी लिखे जा रहे हैं। रेडियो-नाटक की दिनोदिन बढती श्रोता-संख्या इसके विकास में योग दे रही है। रेडियो-नाटक की लोकप्रियता बढती जा रही है।

यह प्रगति और सुधार कपरिमाणात्मक (Quantitative) मात्र नही बल्कि गुणात्मक (Qualitative) भी है। पुराने नाटक रंग-नाटक की रूपरेखा पर लिखे जाते थे। उनमे वे विशेषताएं नही मिलती थी जो रेडियो-नाटक में लक्षित होनी चाहिएं। बंगाल में रंगमंच परम्परा के प्रभाव के अन्तर्गत जो साप्ताहिक नाटक जनवरी १९२८ से शुरू हुए उनकी अवधि तीन घंटे हुआ करती थी, और इन नाटको में सभी रंगमंच-युक्तियाँ प्रयुक्त होती थी। वार्तालाप और संवाद भी रंगमंच के नाटक के-से होते। धीरे-धीरे इन नाटक की अवधि कम होती गई। अब साप्ताहिक नाटक एक घंटा पन्द्रह मिनट से अधिक का नही होता। क्षेत्र के सीमित होने के साथ इन नाटक के रूप और विधान मे भी अनेक मूलभूत शिल्पगत और शैलीगत परिवर्तन भी आये हैं जिनसे कि एक नये कलारूप का उद्भव हुआ है, जिसमें विस्तार और वैविध्य के स्थान पर प्रभाव की सघनता और ऐक्य पर विशेष बल दिया जाता है।

कुछ समसामयिक कला-प्रवृत्तियो ने इस नये रेडियो-नाटक के विकास में विशेष योग दिया। बिम्बवाद, लक्षणावाद और मनोवैज्ञानिक ... और ... पर बल देने वाले यथार्थवाद के सम्मिलित प्रभाव ने पुराने रेडियो-नाटक को उन दोषो से मुक्त कर

दिया जो उसके विकास में बाधक हो रहे थे ।

इन प्रेरक प्रवृत्तियों का प्रभाव रूपगत प्रगति तक ही सीमित नहीं रहा । वस्तु सम्बन्धी दृष्टिकोण में भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन दृष्टिगोचर हुए हैं । यथार्थवादी प्रभाव के अन्तर्गत एक ऐसे नाट्य-साहित्य का सृजन आरम्भ हुआ है, जिसका मुख्य उद्देश्य वर्तमान जीवन के संघर्षों की अभिव्यक्ति का प्रयास करना है, चामत्कारिक संयोग, परिस्थिति की कटुताओं से आँख चुराना या विगत गौरव से मन बहलाना नहीं । नाटक अधिकाधिक सोद्देश्य और दायित्वपूर्ण होता चला जा रहा है । समस्या-प्रधान नाटक अधिक लिखे जाते हैं और लोकप्रिय होते हैं । कहानी की रंगीनी के स्थान पर चरित्रों का मनोविश्लेषण अधिक अपेक्षित समझा जाता है । अद्भुत की अपेक्षा सत्य को अधिक मूल्यवान माना जाता है । यह बात विचारणीय है कि १९४७ से पहले जितने हिन्दुस्तानी नाटक ऑल इण्डिया रेडियो से प्रसारित हुए, उनमें से सबसे अधिक संख्या ऐतिहासिक और रोमांटिक नाटकों की थी । उन नाट्य-कृतियों का उद्देश्य हल्की फिल्म के मनोरंजन से अधिक कुछ न था । अलंकारिक भाषा के चमत्कार की सहायता से देर तक निष्प्राण और ह्रासोन्मुख विषय प्रस्तुत किये जाते रहे । फिर धीरे-धीरे विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण से लिखा गया मनोवैज्ञानिक और सामाजिक नाटक आगे आया । ऐतिहासिक नाटक अब भी लिखे जाते हैं, किन्तु एक नये दृष्टिकोण से । उनमें ह्रासोन्मुख प्रवृत्ति नहीं है, बल्कि एक प्रगतिशील रचनात्मक भावना मिलती है । स्वतन्त्रता के तुरन्त पश्चात् एक संकीर्ण नकारात्मक 'Revivalist movement' शुरू हुई थी । उसके प्रभाव के अन्तर्गत कुछ प्रतिगामी (Reactionary) और अवास्तविक (Unrealistic) नाटक लिखे गये । किन्तु यह प्रवृत्ति (Movement) उसी वेग से क्षीणबल होती जा रही है जिस वेग से वह आई थी । आधुनिक नाटक के स्वस्थ विकास के लिये यह बहुत ही अच्छा लक्षण है ।

९. रेडियो-नाटक के विभिन्न रूप—नाटक के अतिरिक्त नाट्यरूप को अन्य प्रसारणों के लिये भी प्रयुक्त किया गया है । वास्तव में नाट्य माध्यम में ऐसी रोचकता और रंजकता है कि उसकी सहायता से नीरस विषय भी रोचक बनाया जा सकता है । पहले पहल गम्भीर वस्तु को प्रस्तुत करने के लिये वार्तालाप, संवाद आदि का प्रयोग किया जाने लगा । यही रूप विकसित होकर रूपक (Feature Programme) और आलेखरूपक (Documentary) बना । इस प्रकार नाटकीय माध्यम को शिक्षण और प्रचार के लिये अत्यन्त उपयुक्त पाया गया है । काव्यमय, प्रतिरूपक में भी नाटकीय उपकरण प्रयुक्त होते हैं । बच्चों के लिये लोककथाओं और Allegories को नाटकीय रूप देकर प्रस्तुत किया जाता है । कथाकार कहानी सुनाता है और कथानक के महत्त्वपूर्ण चरण नाटकीय रूप में

प्रस्तुत होते हैं। इतिहास की महत्वपूर्ण घटनाओं को रूपकों द्वारा प्रस्तुत करना अधिक सफल प्रयास रहा है जिसे विद्यार्थियों के कार्यक्रम में प्रयुक्त किया गया है। ग्राम्य श्रोताओं में सुधार-प्रचार के लिये उद्देश्य-प्रधान, निर्माणात्मक रूपक आये दिन ब्रॉडकास्ट होते रहते है।

कविता को लोकप्रिय बनाने के लिये एक नये रेडियो कलारूप का विकास हुआ है जिसे Mosaic कहते हैं—एक ही विषय या एक विषय से सम्बद्ध विभिन्न भावो की कविताओं का सुरुचिपूर्ण संग्रह। इस संयोजना को क्रमबद्ध और एकसूत्र करने वाला होता है निरूपक या वाचक, और इस समूची साहित्यिक संयोजना को भावरंजित और अलंकृत करने वाला संगीत संयोजक, जो उपयुक्त, मर्मस्पर्शी संगीत से प्रत्येक रचना और समूचे संग्रह (Pattern) के भाव की पुष्टि और नयी-नयी अर्थ छटाओं की सृष्टि करता है। कभी-कभी साधारण वाचक का स्थान लेते हैं कुछ प्रतीकपात्र।

इससे एक कदम आगे है पद्यरूपक और गीतिनाट्य, जिनके विकास में सबसे अधिक महत्वपूर्ण योग रेडियो ने दिया है। और जो टैलिविजन के आ जाने पर भी अद्भुत रूप से आकर्षक और लोकप्रिय नाट्यरूप रहेगा। इस साहित्यिक रूप का क्षेत्र पहले पाठक तक ही सीमित था जो बहुत ही संकुचित है। रेडियो ने कवि की रचना को एक बहुत विस्तृत क्षेत्र के लिये उपलब्ध बना दिया है। इस रूप ने प्रसिद्ध कवियों को अपनी ओर आकृष्ट किया है। सुमित्रानन्दन पंत, भगवतीचरण वर्मा, रामधारीसिंह दिनकर, उदयशंकर भट्ट, चिरंजीत, गिरिजाकुमार माथुर, नरेश कुमार मेहता आदि ने सुन्दर और रोचक गीतिनाट्य लिखे हैं जो सफलतापूर्वक विभिन्न केन्द्रों से प्रसारित हो चुके हैं। प्रसारण और विशेषरूप से नाटकीय उपकरणों ने इन रचनाओं को लोकप्रिय बनाया है।

साहित्यिक रचनाओं की चर्चा करते हुए एक नये प्रयोग का संकेत देना आवश्यक है। कहानियों, काव्यों के रूपान्तरों के अतिरिक्त उपन्यास को एक नये रूप में प्रस्तुत किया गया है। अभी हाल में दिल्ली-केन्द्र ने जैनेन्द्र का रेडियो-उपन्यास 'व्यतीत' ८ भाग में गोपालदास के निर्देशन में प्रसारित किया था। कहानी का मुख्य पात्र कहानी सुनाता है। अन्य पात्रों के वाक्य नाटकीय रूप में प्रस्तुत होते है। नाटकीय उपकरण की सहायता से दीर्घ कथन को रोचक बना दिया जाता है। कहानी में भी चरित्रांकन के तत्व के आ जाने से एक प्रकार की सजीवता और सघनता आ जाती है। यह रूप साधारण कहानी सुनाने और घटनाओं और दृश्यों के नाटकीय प्रस्तुतीकरण के बीच की श्रेणी है। इस प्रयोग को अधिक प्रचलन देने की आवश्यकता है, क्योंकि इसके द्वारा कथाकार की पुरानी कला का पुन: [illegible] भी हो सकता है। कहानी पाठक मात्र

न रहकर वाक् बन सकती है और यदि कथाकार की वाणी व्यंजना सम्पन्न और प्रभावशाली हो तो कथावस्तु अधिक सुगमता से व्यक्त हो सकती है।

रेडियो-नाट्य का एक और उत्कृष्ट रूप 'Radio News Reel' यानी समाचार-माला रूपक है, जिसका विकास दूसरे महायुद्ध के दिनों में हुआ था। युद्ध के दिनों मे नाजी प्रोपेगेंडा का प्रतिकार करने और जनता में अनुशासन और सयम को पुष्ट करने के लिये छोटे-छोटे रूपक 'जगनामा' और 'जवाबी हमला' शीर्षक के अन्तर्गत प्रसारित हुआ करते थे। उनमे एक प्रमुख घटना को लेकर कल्पित वस्तु की सहायता से नाटकीय रूप में प्रस्तुत किया जाता था। प्रभाव की दृष्टि से वे रूपक अद्वितीय थे। बी बी सी ने महत्त्वपूर्ण समाचारों को प्रभावोत्पादक रूप में प्रस्तुत करने के लिये 'रेडियो न्यूज़रील' रूपक का विकास किया है। भारत में भी इसका विकास होना चाहिए।

एक और अत्यन्त रोचक और लोकप्रिय 'रूप' है जिसका विकास रेडियो के प्रारम्भिक काल से ही शुरु हो गया था—रगारग प्रोग्राम, जिसे हास्य-विनोद, झलकियाँ, नमकदान, इन्द्रधनुष, लहरे, रग-तरग आदि शीर्षको के अन्तर्गत प्रस्तुत किया जाता रहा है। छोटे-छोटे हास्य-प्रधान रूपक, लतीफे, चुटकले, गीत आदि एक सयोजित कार्यक्रम के रूप में प्रस्तुत होते है। इस कार्यक्रम का उद्देश्य मनोरजन और केवल मनोरजन होता है। मज़ाक ऐसे चुने जाते है जिनका प्रभाव तात्कालिक (Instantaneous) हो। भाषा ऐसी प्रयुक्त होती है जो हल्की-फुल्की और नमकीन हो।

हास्य को नाटकीय रूप में प्रस्तुत करना अत्यन्त सफल रहा है। जितने श्रोता इस कार्यक्रम के लिये मिलते है उतने किसी और कार्यक्रम के लिये नही।

इन विविध प्रकारो में रूपगत विभेद है, लेकिन ये एक ही मूल सिद्धान्त पर आधारित है। वह यह कि ध्वनि और शब्द के उचित सामजस्य से अनेक भाव, समूचे प्रभाव सहित, व्यक्त हो सकते है। आगे चलकर इसी सिद्धान्त की सविस्तार चर्चा होगी। हम देखेंगे कि इस माध्यम की विशेषताएँ और परिसीमाएँ क्या हैं, और श्रव्य-नाट्यकार इस माध्यम की सहायता से किस नाट्य-रूप और रचना-विधान को अपनाता है, और उसे कहाँ तक सफलता मिलती है।

अध्याय तीसरा

रेडियो-नाटक की प्रगति

१०. रेडियो-नाटक की प्रगति और विकास का मूल्यांकन करने के लिये हिन्दी और अन्य भाषाओं के प्रतिनिधि रेडियो-नाट्यकारों और शिल्पकारों के प्रयोगों का सर्वेक्षण करना लाभप्रद होगा।

यह बात तोते की रटन की तरह दुहराई जा चुकी है और जा रही है, कि हिन्दी नाटक के लिये रंगमंच नहीं है, और यह स्थिति प्रगति के मार्ग में सबसे बड़ी रुकावट है। कहा जाता है कि शून्य में जनित होने के कारण हिन्दी नाटक में वह बल, वह स्वस्थ गतिशीलता नहीं है, जो रंगमंच के लिये तथा रंग-परम्परा के प्रभाव के अन्तर्गत रचे गये नाट्य-साहित्य में होती है। एमेचर आन्दोलन भी इस शून्य को भरने में असमर्थ रहा, यद्यपि उसके महत्त्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। पर पिछले २५ वर्षों में नाट्य-साहित्य में निश्चित प्रगति हुई है। नये नाटक लिखे जा रहे हैं और उनमें से बहुत से स्वस्थ और प्राणवान भी हैं। इसका श्रेय बहुत-कुछ रेडियो को मिलना चाहिये। राष्ट्रीय 'रंगमंच' की अनुपस्थिति में, रेडियो, हिन्दी और अन्य प्रादेशिक भाषाओं का रंगमंच बनता जा रहा है। लेकिन जहाँ इस बात से सामान्य नाटक को लाभ पहुँचा है, वहाँ रेडियो-नाटक को हानि पहुँची है। रेडियो-नाटक का विकास इसलिये मन्द गति से हुआ है क्योंकि प्रायः नाटककार एक ही रचना को दोनों काम में लाना चाहता है। वह चाहता है कि उसका एकांकी प्रसारित हो, और बाद को छप भी जाय। या पहले किसी पत्र-पत्रिका में प्रकाशित हो, फिर प्रसारित होने के लिये प्रस्तुत कर दिया जाय। इस प्रकार, मिश्रित उद्देश्यों ने शुद्ध रेडियो-नाट्य रूप के विकास में बाधाएँ डाली हैं। अंग्रेज़ी, जर्मन या कुछ अन्य यूरोपीय भाषाओं के रेडियो-नाटकों की समता करनेवाले बहुत कम हिन्दी नाटक हमें मिलते हैं।

इस बात के अतिरिक्त हिन्दी के अनेक रेडियो-नाट्यकारों की रचनाओं में अभी तक दो परम्परागत प्रभाव काम करते पाये जाते हैं। संस्कृत नाट्य-परम्परा से ग्रहण की गई काव्यात्मकता, अतिरंजना प्रधान गद्यशैली, जो सामान्य स्थितियों में रेडियो के लिये अनुपयुक्त हैं, और मध्ययुगीन रंगमंच की अस्वाभाविकता के प्रभाव। निर्माणात्मक दोषों की भी कमी नहीं। यह इसलिये है कि हिन्दी के नाटककार नये माध्यम से रोमांचित तो कदाचित् हुए हैं, पर उन्होंने इस विषय का तलस्पर्शी विश्लेषण करने का प्रयास नहीं किया। छोटे लेखकों की त्रुटियाँ इन दोनों से और

भी अधिक विकृत मिलेगी। इसलिये कि वे सीखने को अपमान और बदलने को अपने कला-कौशल की हार समझते है। यहाँ एक खेद की बात का उल्लेख अनिवार्य-सा लगता है। हिन्दी के पुनरुत्थान के साथ-साथ कुछ 'प्रतिभाओं' का पुनस्थापन भी हुआ है। इस विषय का विस्तार न करना ही अच्छा है।

हम प्रगति की बात कर रहे थे। जो प्रगति रेडियो-नाटक के क्षेत्र में हुई है उसका स्रोत हमें स्टूडियो में ही मिलेगा। स्टूडियो से सम्बन्धित या श्रव्यशिल्प से परिचित नाटककारों ने रेडियो-निर्देशकों से मिलकर अनेक नये प्रयास और प्रयोग किये है। इस मौलिक अनुभव ने रेडियो-नाट्य के विकास में महत्त्वपूर्ण योग दिया है। इन्हीं से निराशामय पृष्ठभूमि पर अंकित चित्रसमूह में हमें एक आशाप्रद और उज्ज्वल चित्र भी दिखाई दे रहा है। चित्र में यहाँ-वहाँ टेढ़ी-मेढ़ी अकलात्मक रेखायें हैं। कहीं-कहीं बेसुरी रागिनी सरीखे भद्दे रंग भी दिखाई देते है—लेकिन इस चित्र के कुछ भाग अत्यन्त सुन्दर और आकर्षक हैं। यही आशा के चिन्ह है, और इनके अस्तित्व का श्रेय नये लेखकों को है।

११ हिन्दी और उर्दू—हिन्दी के प्राय सब नये-पुराने नाटककार किसी न किसी समय पर रेडियो के लिये लिखते रहे हैं। मित्रों के आग्रह पर, या केवल कुछ रुपया कमाने के लिये, या केवल एक नये माध्यम को आजमाने के उद्देश्य से। यह देखा गया है कि अगर एक बार किसी नाटककार ने इसमें सही दिलचस्पी ली तो उसने इस प्रयोग को नहीं छोड़ा। बल्कि इस नये माध्यम के प्रति उसकी आसक्ति बढ़ती गई। और बहुत सी हालतों में तो वह उसी का हो रहा। यह इस क्रान्तिकारी रचना माध्यम के प्रभाव का सबसे अधिक पुष्ट प्रमाण है।

अनेक विषयों को लेकर विविध प्रकार के रेडियो-नाटकों का सृजन हुआ है। पौराणिक विषयों पर उदयशंकर भट्ट, लक्ष्मीनारायण मिश्र, (अहिल्या, अशोकवन), गोविन्ददास (कर्ण), कैलाशचन्द्र देव बृहस्पति; विपिन चन्द्र बन्धु (ऋष्यश्रृंग) और ऐतिहासिक विषयों पर रामकुमार वर्मा, जगदीशचन्द्र माथुर (भोर का तारा, विजय की वेला, कोणार्क), लक्ष्मीनारायण लाल (ताजमहल के आँसू, शाहजहाँ की आखिरी रात), देवेन्द्रनाथ शर्मा (आचार्य द्रोण, शाहजहाँ के आँसू और शेरशाह), देवराज दिनेश (रावण, तपोबल, मानव-प्रताप), आर. एन नागर (विद्रोही सिराजुद्दौला), रामवृक्ष बेनीपुरी (अम्बपाली), प्रशान्त पाडे (कीचकवध), और नरेन्द्र शर्मा (उपगुप्त) आदि ने सफल नाटक लिखे है। दिनेश के ऐतिहासिक नाटक ओजपूर्ण संवाद और कुशल चरित्र-निरूपण के कारण अत्यन्त सफल रहे हैं। कुछ नाटकों में ऐतिहासिक पात्रों की मौलिक व्याख्या का प्रयास भी किया है।

सुप्रसिद्ध कवि और प्रौढ नाटककार उदयशंकर भट्ट ने विविध प्रकार के नाटक तथा रूपक लिखे हैं। उनके अनेक नाटक, विशेषकर पद्य-नाटक, (मदन दहन, विक्रमो-

ङ्गी) प्रसारण में सफल रहे हैं। उनके श्रेष्ठ प्रयोगात्मक नाटकों में से 'आदिम' युग से जवानी — एक प्रतीक (यद्यपि वह प्रतीक नहीं बल्कि ऐलीगरी है) और 'अन्धकार और प्रकाश' (मनोवैज्ञानिक नाटक) अधिक प्रसिद्ध हैं। उन्होंने रूपक भी लिखे हैं। उनमें 'एकला चलो' और 'महाकवि कालिदास' महत्त्वपूर्ण रेडियो-रचनाएँ हैं। ऐतिहासिक नाटकों में 'शक-विजय' और पौराणिक में 'भीष्म' उल्लेखनीय हैं।

रामकुमार वर्मा ने सामाजिक नाटकों की अपेक्षा ऐतिहासिक नाटकों के क्षेत्र में अधिक सफलता प्राप्त की है। वैसे जब लिखने पर आते हैं तो कौनसा विषय है जिसे उनकी कल्पना तथा कलाचातुर्य एक सुन्दर और उत्कृष्ट रचना का रूप नहीं दे देता। हास्य में 'फैल्ट हैट' दर्जनों बार प्रसारित हो चुकने के पश्चात् भी आकर्षक है। कल्पना-प्रधान समस्यामूलक नाटकों में 'उत्सर्ग' एक उच्चकोटि का रेडियो-नाटक है। ऐतिहासिक नाटकों में 'चारुमित्रा' और 'औरंगजेब की आखिरी रात' और 'कौमुदी महोत्सव' अच्छे हैं। लेकिन रेडियो-शिल्प की दृष्टि से उनकी पिछले चार-पाँच वर्षों की रचनाएँ अपेक्षाकृत श्रव्योचित और अधिक प्रभावशाली हैं। कारण यह कि ये रचनाएँ मुख्य रूप से श्रव्य-प्रसारण के लिये लिखी गई हैं। इन नाटकों की दृश्य-निर्माण-योजना प्रकाशित नाटकों से भिन्न है। उनमें ध्वन्यात्मक मूल्यों का विशेष ध्यान रखा गया है और शैली अधिक सरल, प्रभावात्मक और संकेतात्मक बनती चली गई है।

प्रयोग की दृष्टि से विष्णु प्रभाकर का दाय रेडियो-नाटक के लिये विशेष महत्त्व रखता है। उन्होंने १९४७ और १९५२ के अर्से में रेडियो-नाट्य के प्रायः प्रत्येक रूप को आजमाया है। उन्होंने नाटक, रूपक, रेडियो-रूपान्तर, एकपात्र नाटक, प्रति-कल्पना, रिपोर्ताज लिखे हैं। पर जितनी सफलता उन्हें सामाजिक और मनोवैज्ञानिक नाटकों में मिली है उतनी अन्य प्रकारों में नहीं मिली। विष्णु के नाटकों में रेडियो-शिल्प का क्रमिक विकास स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। जैसे कलाकार नये माध्यम के भेद समझने और उसके रचना-कौशल में निपुणता प्राप्त करने की कोशिश कर रहा हो। समय के साथ उनकी नाट्य-कला मँजती गई है। जिससे ऊपर कही एक बात का प्रमाण भी मिलता है। उनकी नाट्य-कला के विकास में जितना हाथ रेडियो का है उतना किसी और प्रभाव का नहीं। नाटककार विष्णु का विकास उसी काल में हुआ जिसमें कि लेखक का रेडियो से सम्पर्क बना। विष्णु के नाटकों में मौलिक स्थितियाँ, सरल स्वाभाविक संवाद और मानवीयता के गुण प्रत्यक्ष हैं। निर्माण-[illegible] भी किसी-किसी नाटक में [illegible] है। '[illegible]', 'जहाँ दया पाप है', 'धरती' '[illegible]' '[illegible]' उनके सफल रेडियो-नाटकों में से हैं। [illegible] नहीं, फिर भी '[illegible]' [illegible] रचना है।

सामाजिक नाटक के क्षेत्र में [illegible] शर्मा का स्थान [illegible] है। [illegible] सबसे बड़ा कारण यह है कि [illegible] रेडियो के लिये लिखते हैं, [illegible]

निशाना कभी नही चूकता। उनकी नाट्य-कला का प्रमुख गुण स्वाभाविकता और लोकगीत का-सा सारल्य है। उनके नाटक एक विशेष प्रकार की आत्मीयता से ओत-प्रोत रहते है। उनकी सफलता का रहस्य यह है कि कहानी का स्तर सदा मानवीय और यथार्थनिष्ठ रहता है। उसमें घटनाएँ कम और व्यवहार का विश्लेषण अधिक होता है। रचना का प्रधान उद्देश्य विस्तार न होकर प्रगाढता है। अत प्रभाव की एकाग्रता का बना रहना प्राय निश्चित हो जाता है। उनकी शैली बडे लेखको की-सी कृत्रिम साजसज्जा से पूर्णतया मुक्त है। पारम्भिक काल के नाटको मे जो अति-रञ्जना की हल्की-सी झलक दिखाई देती थी, उसके स्थान पर अब सयत भावना प्रदर्शित होती है। 'नगमे की मौत' और 'आंसू' की अतिरजना और भावुकता के स्थान पर बाद के नाटकों मे सयत मानवीय भावना मिलती है। एक दोष है जिसे लेखक को दूर करना है। वह है बहुत से नाटको में एक ही विषय और स्थिति की आवृत्ति। इसके अतिरिक्त कभी-कभी रेवती का कथानक नाटक का रूप त्याग, कहानी बनकर चलने लगता है। इसस नाटक के बल और क्रिया के वेग पर बुरा प्रभाव पडता है। किन्तु यह दोष भी भावसिक्त और हृदयस्पर्शी सवादो के बल और आकर्षण के नीचे छिप-सा जाता है। 'क्रिस्मस की एक शाम', 'अमावस का अन्धकार', 'पत्थर और आंसू', 'उतार चढाव', 'अँधेरा-उजाला' और दुश मन' उनके सफल और लोकप्रिय नाटक है। उन्होने अति कल्पना नाटक भी लिखे है। 'कल' मे एटमी युद्ध के परिणामो की ओर सकेत किया गया है। काफी सफल रहा है।

सामाजिक नाटक की चर्चा करते हुए भगवतीचरण वर्मा (राख और चिन-गारी), हसकुमारी तिवारी (पुकार, झूठे सपने), राधाकृष्ण प्रसाद (आवरण), प्रफुल्ल-चन्द्र ओझा 'मुक्त', (चट्टाने), शिवसागर मिश्र, मोहनलाल महतो (चूडियाँ), विश्वम्भर 'मानव' (जीवन-साथी), सत्येन्द्र शरत् (आवारा, तार के खम्भे), और भृग (दस का नोट) का उल्लेख किया जा सकता है। सवादों की सरलता के लिये सत्येन्द्र शरत् के नाटक अच्छे नमूने हैं।

उपेन्द्रनाथ अश्क पुराने और सिद्धहस्त नाटककार है। उनकी रेडियो-रचनाएँ उस समय भी उत्सुकता, चाव और आदर से सुनी जाती थी जबकि ताज और रफी पीर की धाक थी। वे रचनाएँ आज भी आदर्श रेडियो-कृतियाँ है क्योकि वे मुख्य रूप से श्रव्य माध्यम के लिये रची गई। अश्क के नाटक केन्द्रीय स्थिति की मौलिकता, सवादो की निश्चेष्टता और तीक्ष्णता और कथानक के वेगपूर्ण तथा निश्चित विकास के गुणो के कारण श्रेष्ठ और प्रशसनीय है। चरित्र वैविध्य का निरूपण, जीवन का सूक्ष्म अध्ययन, हास्य और व्यग्य का चतुर सम्मिश्रण, अश्क के नाटको की विशेषताएँ

है। हास्य और व्यंग्य ऐसे के सम्मिश्रण का जोड़ कृष्णचन्द्र को छोड़ अन्य किसी हिन्दी या उर्दू नाटककार में नहीं मिलता। गम्भीर, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक नाटकों में 'शिकारी', 'अजली रास्ते', 'लक्ष्मी का स्वागत', 'छठा बेटा', 'जीवनसाथी' और हास्य-प्रधान नाटकों में 'सुबह-शाम', 'लीडर', 'तकल्लुफ', 'बनसिरा', 'काले साहब' और 'पर्दा उठाओ, पर्दा गिराओ' उल्लेखनीय हैं।

हिन्दी में हास्य और व्यंग्य बहुत ही कम है। इसलिये जो है उसका विशेष महत्त्व है। हास्य और व्यंग्य लिखने वालों में प्रभाकर माचवे, अमृतलाल नागर, जयनाथ नलिन, शौकत थानवी, सत्यप्रकाश किरण, पद्मकान्त त्रिपाठी और आवारा की रेडियो-रचनाएँ उल्लेख और सराहना के योग्य हैं। प्रभाकर माचवे ने हास्य-रूपक के एक नये प्रकार, परिहास-क्रम (Comic sequence) को बड़ी कुशलता से प्रस्तुत किया है। 'वधू चाहिये', 'कवायदवादी' उनके श्रेष्ठ परिहास तथा व्यंग्य-क्रम हैं। नाटकों में 'राम भरोसे', 'पुराने चावल' और 'अधकचरे' सफलतापूर्वक प्रसारित हुए हैं। ये नाटक अति आधुनिक समाज की कृत्रिमता पर तीखी चोटें हैं। माचवे एक बुद्धिवादी हैं। उनकी दृष्टि से समाज की कोई भी असामंजस्यता नहीं बच सकती। उनके हास्य-प्रधान नाटकों में रावले-ऐसे खुले कहकहे भी मिलते हैं, और ऐजिलिन-ऐसी हल्की मुस्कराहटें भी। परिहास में बिलकुल बर्नार्ड शॉ का रंग है। उनकी हास्यात्मक रचना कवायदवादी (Regimentation) ऐसे शुष्क और नीरस विषय को भी रोचक बना देती है। इस चमत्कार का रहस्य उनकी भाषा में है। अनेक विचित्र संयोजनाओं में ढलकर साधारण से साधारण शब्द भी विविध रूप की अनेक मौलिक अर्थच्छटाएँ प्रस्तुत करते हैं। माचवे के शब्द हँसते हैं, छेड़छाड़ करते हैं और तरह-तरह के सूक्ष्म भाव व्यक्त करते हैं। इस प्रकार भाषा अभिव्यक्ति बन जाती है। और यही रेडियो-शैली का प्रधान गुण है।

अमृतलाल नागर का 'बाबेलाल' बहुत बार प्रसारित हुआ है। जयनाथ नलिन का परिहास-क्रम 'नवाबी सनक' पुस्तक रूप में छपा था, [illegible] के लिये। किन्तु जब वह रेडियो से प्रसारित हुआ तो 'वर्ष का सर्वश्रेष्ठ प्रोग्राम' माना गया। कारण यह कि नलिन के हास्यात्मक रूपकों का आधार भी शब्द-प्रधान नाटक-शैली है। स्थिति का भाव घटनाओं की अपेक्षा चर्चा से व्यक्त होता है। उनकी एक और उत्कृष्ट रचना 'कल्पना सदन' एक मनोरंजक [illegible] है जिसमें विचार की मौलिकता, संवाद-शैली की [illegible] और [illegible] है। धर्मवीर भारती ([illegible]) ने भी अनेक रूपक और मनोरंजक [illegible] लिखे हैं। पुराने [illegible]। [illegible] लिखे हुए [illegible] हो चुके हैं।

व्यग्य की चर्चा करते हुए राजेन्द्रसिंह वेदी और कृष्णचन्द्र का नाम सामने आता है, यद्यपि दोनो ने व्यग्य के अतिरिक्त अन्य प्रकार के नाटक भी लिखे हैं। कृष्णचन्द्र के रोमानी नाटको मे 'आगी' और काहिरा की एक शाम' बहुत प्रसिद्ध हुए। व्यग्य मे 'सराय के बाहर' अत्यन्त मार्मिक और हृदयस्पर्शी हैं। इस रचना में व्यग्य और दुखान्त तत्वो का सम्मिश्रण अद्भुत है, और शेक्सपीयर के 'किगलियर' की याद दिलाता है। 'एक रुपया एक फूल' जिसे दिल्ली रेडियो के १६४८ के नाटकोत्सव का सर्वोत्तम नाटक माना गया था एक दूसरी श्रेणी में आता है। 'सराय के बाहर' में रुलाकर सोचने पर मजबूर किया गया था, एक रुपया एक फूल' में हँसाकर सोचने की प्रेरणा दी गई है। इसमें मोलियर का रग झलकता है। एक अत्यन्त सफल व्यग्य होने के साथ-साथ यह नाटक रेडियो-नाट्य-शिल्प का एक उत्कृष्ट नमूना भी है।

राजेन्द्रसिंह वेदी ने कम लिखा है पर जो कुछ भी लिखा है 'ए वन'। यह कथन कहानी की अपेक्षा नाटक के विषय में अधिक सत्य है। 'कार की शादी', 'पांव की मोच', ख्वाजा सरा' उनके सफल व्यग्य हैं। 'रखशिंदा' और 'कैदी' प्रतीक नाटक हैं। वेदी की नाट्यकला की विशेषता है विषय की आत्मा को एक ही केन्द्रीय स्थिति में प्रकट करना, और चरित्र के आवरणो को एक जर्राह की तरह धीरे-धीरे उतारते जाना, यहाँ तक कि चरित्र का सत्य अपने आप श्रोता पर प्रकट हो जाय। उनके चरित्र अपने वैचित्र्य को शारीरिक हाव-भाव की अपेक्षा सवादो में कुछ अधिक प्रकट करते है। इसी कारण उनके नाटक माइक्रोफोन के लिए अत्युपयुक्त होते है।

इसी समूह का एक और रत्न विशेष उल्लेख पायेगा। रेडियो-नाटक का इतिहास उसकी चर्चा के बिना अधूरा रहेगा। सआदतहसन मटो ने रेडियो के लिये ही लिखा और खूब लिखा। मटो एक ऐसी विचित्र और बहुमुखी प्रतिभा हैं कि उनके लिये कोई लेवल उचित नही। आपने अनेक प्रकार के नाटक रचे जिनकी सामान्य और प्रमुख विशेषता एक शक्तिमान स्थिति, और कथानक का वेगपूर्ण उत्थान है। गम्भीर नाटको में 'जेबकतरा' और 'कबूतरी', हास्य में 'रधीर पहलवान' और 'कमरा नम्बर नौ', व्यग्य में 'हतक', ख्याति प्राप्त रचनाएँ है। मनोवैज्ञानिक नाटको में 'इतजार' और 'इतजार का दूसरा रुख' प्रसिद्ध हैं। ऐतिहासिक विषयो को लेकर भी मटो ने अत्यन्त प्रभावपूर्ण नाटको की रचना की। 'नैपोलियन की मौत', 'तैमूर की मौत', पुराने जमाने की सफल रचनाएँ है यद्यपि आज उनमें इतना आकर्षण नही रहा, क्योकि वर्तमान श्रोता प्रकट से सूक्ष्म को अधिक चाहता है।

रेडियो द्वारा पद्य-रूपक और गीतिनाट्य की दिशा मे प्रशसनीय प्रगति हुई है। कवियो और नाटककारो ने अनेक सफल प्रयोग किये है। सुमित्रानन्दन पत का 'फूलो का देश', 'रजत-शिखर' और 'ध्वसशेष', उदयशकर भट्ट का 'विश्वामित्र', भगवती

चरण वर्मा का 'कर्ण'; गोविन्ददास का 'स्नेह और स्वर्ग', चिरंजीत का '[illegible] मानव' तथा 'छाया', एम० एन० चौबे का 'उद्धव सन्देश' और 'विद्यापति' [illegible] मेहता का 'अग्निदेवता', त्रिलोकचन्द कौसर का 'हयाते नौ मनाम' [illegible] 'अनारकली', मखमूर जालंधरी का 'लालारुख', रामगोपाल शर्मा रुद्र का [illegible] और विंध्याचल प्रसाद गुप्त का 'चांद और चांदनी' उल्लेखनीय रचनायें हैं। उदयशंकर भट्ट और गिरिजाकुमार माथुर ने कालिदास की अमर रचनाओं का [illegible] रेडियो-रूपान्तर करने का सफल प्रयास किया है। गिरिजाकुमार माथुर का 'शकुन्तला' और उदयशंकर भट्ट का 'विक्रमोर्वशी' और 'मेघदूत' सफलतापूर्वक प्रसारित हो चुके हैं। चिरंजीत की बहुमुखी प्रतिभा अन्य प्रकार में भी चमकी है, किन्तु गीति नाट्य के क्षेत्र में वह अधिक दीप्ति से विद्यमान हुई है। उनके ओपेरा सुगठित कथानक सरल संवाद और संरचना में संगीतात्मक मूल्यों के समावेश के लिये प्रसिद्ध हैं।

रेडियो-नाट्य का यह प्रकार रंग-नाटक की परम्परा से आविर्भूत है। अन्तर है तो अवधि और विस्तार में, अन्यथा निर्माण-योजना में कोई भेद नहीं। लेकिन इनमें बहुत वास्तविक अर्थ में गीति-नाट्य है। उनमें काव्यात्मकता और गीतात्मकता के साथ-साथ नाटकत्व भी है। ऐसी रचनाओं का बड़ा अभाव है। गीति-नाट्य एक ऐसा प्रकार है जिसे रेडियो के माध्यम द्वारा बड़ी सफलता से प्रस्तुत किया जा सकता है क्योंकि रेडियो के पास ध्वनि, शब्द और संगीत के कलात्मक सामञ्जस्य के अनेक उपकरण और साधन उपलब्ध हैं। इसके अतिरिक्त, क्योंकि गीति-नाट्य की प्रवृत्ति दृष्टि की अपेक्षा श्रवण, और वस्तु संवेद (Sense of the concrete) की अपेक्षा सूक्ष्म संवेद (Sense of the abstract) की ओर लक्षित होती है इसलिये श्रव्य माध्यम गीति-नाट्य के अभिनय के लिये [illegible] है। लेकिन आज देखने में आता है कि रेडियो-गीति-नाट्य लोकप्रिय नहीं बन पाया। इसका यह अर्थ नहीं कि गीति-नाट्य के लिये भी हम उतने श्रोताओं की अपेक्षा करें जितने कि रेडियो-नाटक के अन्य हल्के-फुल्के (Light) प्रकारों उदाहरणार्थ हास्य-व्यंग्य, सामाजिक नाटक, ऐतिहासिक नाटक के लिये रखते हैं। गीति-नाट्य विशिष्ट श्रोताओं के लिये है। फिर भी हम आशा कर सकते हैं कि गम्भीर और [illegible] होने के साथ-साथ गीति-नाट्य रोचक भी हो। [illegible]

व्यग्य की चर्चा करते हुए राजेन्द्रसिंह वेदी और कृष्णचन्द्र का नाम सामने आता है, यद्यपि दोनो ने व्यग्य के अतिरिक्त अन्य प्रकार के नाटक भी लिखे हैं। कृष्णचन्द्र के रोमानी नाटको में 'आगी' और काहिरा की एक शाम' बहुत प्रसिद्ध हुए। व्यग्य मे 'सराय के बाहर' अत्यन्त मार्मिक और हृदयस्पर्शी हैं। इस रचना में व्यग्य और दुखान्त तत्वो का सम्मिश्रण अद्भुत है, और शेक्सपीयर के 'किंगलियर' की याद दिलाता है। 'एक रुपया एक फूल' जिसे दिल्ली रेडियो के १६४८ के नाटकोत्सव का सर्वोत्तम नाटक माना गया था एक दूसरी श्रेणी मे आता है। 'सराय के बाहर' में रुलाकर सोचने पर मजबूर किया गया था, एक रुपया एक फूल' में हँसाकर सोचने की प्रेरणा दी गई है। इसमें मोलियर का रग झलकता ह। एक अत्यन्त सफल व्यग्य होने के साथ-साथ यह नाटक रेडियो-नाट्य-शिल्प का एक उत्कृष्ट नमूना भी है।

राजेन्द्रसिह बेदी ने कम लिखा है पर जो कुछ भी लिखा है 'ए वन'। यह कथन कहानी की अपेक्षा नाटक के विषय में अधिक सत्य है। 'कार की शादी', 'पांव की भोच', ख्वाजा सरा' उनके सफल व्यग्य हैं। 'रखशिंदा' और 'कैदी' प्रतीक नाटक हैं। बेदी की नाट्यकला की विशेषता हे विषय की आत्मा को एक ही केन्द्रीय स्थिति में प्रकट करना, और चरित्र के आवरणो को एक जर्राह की तरह धीरे-धीरे उतारते जाना यहा तक कि चरित्र का सत्य अपने आप श्रोता पर प्रकट हो जाय। उनके चरित्र अपने वैचि य को शारीरिक हाव-भाव की अपेक्षा सवादो में कुछ अधिक प्रकट करते है। इसी कारण उनके नाटक माइक्रोफोन के लिए अत्युपयुक्त होते हैं।

इसी समूह का एक और रत्न विशेष उल्लेख पायेगा। रेडियो-नाटक का इतिहास उसकी चर्चा के बिना अधूरा रहेगा। सआदतहसन मटो ने रेडियो के लिये ही लिखा और खूब लिखा। मटो एक ऐसी विचित्र और बहुमुखी प्रतिभा हैं कि उनके लिये कोई लेबल उचित नही। आपने अनेक प्रकार के नाटक रचे जिनकी सामान्य और प्रमुख विशेपता एक शक्तिमान स्थिति, और कथानक का वेगपूर्ण उत्थान है। गम्भीर नाटको मे 'जेबकतरा' और 'कबूतरी', हास्य में 'रधीर पहलवान' और 'कमरा नम्बर नौ', व्यग्य मे 'हतक', ख्याति प्राप्त रचनाएँ है। मनोवैज्ञानिक नाटको में 'इतज़ार' और इतज़ार का दूसरा रुख' प्रसिद्ध हैं। ऐतिहासिक विषयो को लेकर भी मटो ने अत्यन्त प्रभावपूर्ण नाटको की रचना की। 'नैपोलियन की मौत', 'तैमूर की मौत', पुराने ज़माने की सफल रचनाएँ हे यद्यपि आज उनमें इतना आकर्षण नहीं रहा, क्योकि वर्तमान श्रोता प्रकट से सूक्ष्म को अधिक चाहता है।

रेडियो द्वारा पद्य-रूपक और गीतिनाट्य की दिशा मे प्रशसनीय पगति हुई है। कवियो और नाटककारो ने अनेक सफल प्रयोग किये हे। सुमित्रानन्दन पत का 'फूलो का देश', 'रजत-शिखर' और 'ध्वसशेप', उदयशकर भट्ट का 'विश्वामित्र', भगवती

चरण वर्मा का 'कर्ण'; गोविन्ददास का 'स्नेह और स्वर्ग', चिरजीत का 'देव और मानव' तथा 'छाया', एस० एन० चौबे का 'उद्धव सन्देश' और 'विद्यापति', नरेशकुमार मेहता का 'अग्निदेवता', त्रिलोकचन्द कौसर का 'हयाते नौ' सलाम मछलीशहरी का 'अनारकली'; मखमूर जालधरी का 'लालारुख', रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' का भगीरथी और विध्याचल प्रसाद गुप्त का 'चांद और चाँदनी' उल्लेखनीय रचनायें है। उदय-शंकर भट्ट और गिरिजाकुमार माथुर ने कालिदास की अमर रचनाओ का पद्य मे रेडियो-रूपान्तर करने का सफल प्रयास किया है। गिरिजाकुमार माथुर का 'शकुन्तला' और उदयशकर भट्ट का 'विक्रमोर्वशी' और 'मेघदूत' सफलतापूर्वक प्रसारित हो चुके हैं। चिरजीत की बहुमुखी प्रतिभा अन्य प्रकार में भी चमकी है, किन्तु गीति नाट्य के क्षेत्र में वह अधिक दीप्ति से विद्यमान हुई है। उनके ओपेरा सुगठित कथानक सरल सवाद और सरचना में सगीतात्मक मूल्यो के समावेश के लिये प्रसिद्ध है।

रेडियो-नाट्य का यह प्रकार रंग-नाटक की परम्परा से आविर्भूत है। अन्तर है तो अवधि और विस्तार में, अन्यथा निर्माण-योजना में कोई भेद नही। लेकिन इनमें बहुत वास्तविक अर्थ में गीति-नाट्य है। उनमें काव्यात्मकता और गीता-त्मकता के साथ-साथ नाटकत्व भी है। ऐसी रचनाओ का बडा अभाव है। गीति-नाट्य एक ऐसा प्रकार है जिसे रेडियो के माध्यम द्वारा बडी सफलता से प्रस्तुत किया जा सकता है क्योकि रेडियो के पास ध्वनि, शब्द और सगीत के कलात्मक सामजस्य के अनेक उपकरण और साधन उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त, क्योकि गीति-नाट्य की अपील दृष्टि की अपेक्षा कान, और वस्तु सवेद (Sense of the concrete) की अपेक्षा सूक्ष्म सवेद (Sense of the abstract) की ओर लक्षित होती है इसलिये श्रव्य माध्यम गीति-नाट्य के अभिनय के लिये अत्युपयुक्त पाया गया है। लेकिन प्राय देखने में आया है कि रेडियो-गीति-नाट्य रोचक नही बन पाता। इसका यह अर्थ नही कि गीति-नाट्य के लिये भी हम उतने श्रोताओ की अपेक्षा करते है जितने कि रेडियो-नाट्य के अन्य हल्के-फुल्के (Light) प्रकारो, उदाहरणार्थ हास्य-रूपक, सामाजिक नाटक, ऐतिहासिक नाटक के लिये करते है। गीति-नाट्य विशिष्ट श्रोताओ के लिये है। फिर भी हम आशा रख सकते है कि गम्भीर और कलात्मक होने के साथ-साथ गीति-नाट्य रोचक भी हो। दुर्भाग्यवश बहुत कम लेखक ऐसे है जो श्रोता को आकर्षित कर सकते है। इस असफलता के मुख्य और विशेषरूप से विचारणीय कारण है ··एक सबल केन्द्रीय विचार की अनुपस्थिति, भाषा की क्लिष्टता, विचारो की ग्रन्थिपूर्णता और पुनरावृत्ति और सगीत तथा अभिनय-कला से अनभिज्ञता। प्राय भ्रातिवश कविता-सयोजन को ही गीति-नाट्य समझ लिया गया है। एक और कारण भी विचारणीय है। पद्य में नाट्य-क्रिया के प्रधान गुणो, स्फूर्ति, वेग आदि का लाना

कठिन होता है, जब तक कि नाटककार विविध प्रकार के छन्दों, पंक्तियोजनाओं से पूर्णतया परिचित न हो। और गायक अभिनेताओं के अभाव में सफल से सफल रचना को भी सन्तोषजनक ढंग से प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। फिर भी यही एक क्षेत्र है जहाँ इन सब बातों के रहते भी अनेक प्रयोगों तथा प्रयासों की सम्भावना है।

मनोवैज्ञानिक नाटक भी रेडियो के लिये अत्युपयुक्त पाया गया है, क्योंकि वह घटनाप्रधान न होकर विचार-प्रधान तथा अनुभूतिप्रधान होता है। मनोवैज्ञानिक नाटक जिन नाटकीय उपकरणों का उपयोग करता है वे श्रव्य-माध्यम के पूर्णतया अनुकूल हैं। स्वगत भाषण, अस्फुट ध्वनि तथा संकेतात्मक शब्द, विगताख्यान (Flashback) आदि उपकरण रेडियो-शिल्प के प्रमुख सूत्र हैं। लेकिन आजकल के लेखक को एक मर्ज-सा हो गया है। वह प्रत्येक रचना पर 'मनोवैज्ञानिक' का लेबल चिपकाकर नया करना ही अपना परम कर्तव्य समझता है। सामान्य दृष्टि से हरएक नाटक मनोवैज्ञानिक है क्योंकि उसमें मनोवैज्ञानिकता का तत्त्व उपस्थित है। पर यदि इस लेबल को सस्ता न बनाया जाय तो सबकी सेहत के लिये अच्छा रहेगा। विष्णु प्रभाकर और उपेन्द्रनाथ अश्क की चर्चा ऊपर की जा चुकी है। मेरे निकट अश्क का नाटक 'भँवर' एक आदर्श मनोवैज्ञानिक नाटक है। उसका मुख्य उद्देश्य कहानी सुनाना न होकर एक विचित्र चरित्र का विश्लेषण, एक मनस्थिति का अनेक दृष्टिकोणों से प्रेक्षण है। 'भँवर' एक जीवन से ऊबी और चिढ़ी हुई (Jaded) नारी का चित्र है जिसके रोम-रोम में क्लान्ति, एक सर्वांगीण पीड़ा की भाँति व्याप्त है। उस नाटक की सारी घटनाएँ इस चरित्र के प्रकटीकरण के लिये संचालित की गई हैं। सारे पात्र इसलिये घुमाये-फिराये गये हैं ताकि श्रोता मुख्य पात्री की व्यावहारिक प्रतिक्रियाओं के प्रेक्षण द्वारा प्रस्तुत मन स्थिति से आत्मसात् हो सके। इन दो नाटककारों के अतिरिक्त जगदीशचन्द्र माथुर (खण्डहर), अमृतलाल नागर (चक्करदार सीढ़ियाँ और अन्धेरा), मुहम्मद हसन (महलसरा, फूल और परछाईं), नरेशकुमार मेहता (नीलदिशायें, साँझ के स्वर, सनोवर के फूल), भारत भूषण अग्रवाल (नींद की घाटियाँ), और के० के० श्रीवास्तव (धुँधले चित्र) के नाम भी उल्लेखनीय हैं। नरेश ने अपने मनोवैज्ञानिक नाटकों में अभिव्यंजनात्मक motifs का प्रयोग भी सफलतापूर्वक किया है। जैसे कि 'नीलदिशायें' में नीलरंजित अन्धकार का। मुहम्मद हसन ने ह्रासोन्मुख नवाबी समाज का भागाश (Cross-section) प्रस्तुत करते हुए उस वेदनास्पद संघर्ष को व्यक्त किया है जो तरुण हृदयों में पुरातन से टकराकर उठता है। भारतभूषण अग्रवाल ने काल्पनिक परिपार्श्व की पृष्ठभूमि पर सफल मनोवैज्ञानिक नाटक 'महाभारत की साँझ' का निर्माण करके एक नयी दिशा का निर्देश किया है। इन पंक्तियों के लेखक की नाट्य-रचना का मुख्य विषय भी मनोवैज्ञानिक नाटक है। जटिल चरित्रों के मनोविश्ल-

षण द्वारा असाधारण के तल की अपरोक्ष साधारणता को प्रत्यक्ष करने का प्रयास किया गया है। चरित्र को एक ऐसी विस्फोटात्मक और द्वन्द्वात्मक स्थिति मे केन्द्रित किया जाता है जिसमें उसके स्पष्ट व्यवहार के पीछे काम करने वाली अस्पष्ट मनोक्रिया क्रिया में अपने आप विद्यमान हो उठे। 'अपमान', 'मुक्ति के पथ पर', 'मांस और मानस', 'राख और कलियाँ', 'कायर' और 'मुर्दे जागते हैं' उल्लेखनीय रचनायें हैं। 'खण्डहर' का विषय है मनोविश्लेषण द्वारा मानसिक विकृतियो और रोगो की चिकित्सा। इनमे से कुछ रेडियो-नाटक अन्य प्रादेशिक भाषाओ मे अनूदित होकर प्रसारित हो चुके है।

रहस्यमय और जासूसी नाटक लिखने वालो में रफीपीर (मारेआस्ती), इशरत रहमानी (भूतो वाला बँगला), चिरजीत (महाश्वेता, नाटक का अन्त), एस० एन० चौबे (तीसरी चाल मात), अमृतलाल नागर (हीरे की अँगूठी) के नाम उल्लेखनीय हैं। रहस्यमूलक रेडियो-नाटको की सफलता का आधार है एक प्रभावशाली स्थिति, चातुर्य से निर्मित कथानक जो अन्त तक सभ्रम (Suspense) बानाये रखे। लोकप्रियता की दृष्टि से ये रचनाएँ बहुत अपील रखती है। कुतूहलपूर्ण कथानक और सरल सवाद की दृष्टि से चिरजीत की रचनाएँ बहुत सुन्दर है।

अतिकल्पना लिखने वालो में गिरिजाकुमार माथुर, सिद्धनाथ कुमार (लौहदेवता, सृष्टि की साँझ) और रामचन्द्र तिवारी विख्यात हैं। माथुर के नाटक 'शान्तिविश्वेदेव' में वर्तमान युग की सबसे महान् आध्यात्मक और सास्कृतिक समस्या मशीनी प्रगति और उसके कल्पित परिणामो को प्रभावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया गया है। तिवारी जी की रेडियो-रचना का क्षेत्र उनके विस्तृत ज्ञान की भांति विशाल है और उनकी बहुमुखी प्रतिभा शैली-वैविध्य मे प्रतिबिम्बित होती है। पर अतिकल्पना उनका विशेष विषय है। 'वन्दिनी' में धन की समस्या पर प्रकाश डालते हुए सत्ता और आचार के महत्त्वपूर्ण प्रश्नो का विश्लेषण किया गया है। 'नवप्रभात' एक हास्य-रस की रचना है जिसमें हार्मोन चिकित्सा और उससे उत्पन्न होनेवाली विचित्र स्थिति को प्रस्तुत किया गया है। तिवारी जी के प्रयोग एच. जी केल्ज की वैज्ञानिक अतिकल्पनाओ ऐसे है। सिद्धनाथ कुमार का नाटक 'लौहदेवता' भी मशीनो द्वारा मानव के दमन, और 'सृष्टि की साँझ', ऐटमी युद्ध के विषय पर आधारित है।

स० ही० वात्सायन ने तीन-चार रेडियो-नाटक लिखे है। 'वसन्त', 'नान्य पथा', 'नम्बर दस' और 'जयदोल'। इनमें से 'जयदोल' सर्वश्रेष्ठ है। यह रचना सक्षेप और प्रभाव की प्रगाढ तीव्रता का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। 'जयदोल' एक अतिकल्पना है जिसे ऐतिहासिक सामग्री को आधार मानकर नाटक की रचना की गई है। इस तीस मिनट के नाटक मे अहोम जाति की जनप्रिय रानी जयमती और अत्याचारी नायक चूलिकफा सजीव हो उठे हैं।

नवोदित रेडियो-नाट्यकारो में चन्द्रकान्त, राजेन्द्र राजन, सुनील शर्मा, मधु,

काश्मीरीलाल, जाकिर, रजनी पणिकर (भूमिजा), के० वी० वेद (जिन्दगी ख्वाब है दीव ने का), कृष्ण कुकरेजा, जितेन्द्र शर्मा, मदनमोहन, वालकराम नागर, एम० एन० साम, स्वदेशकुमार, सिकन्दर तोफीक उत्साह के साथ आगे बढ रहे हैं। इस समूह में जाकिर के कुछ रेडियो-नाटक अधिक विख्यात हुए हैं। जाकिर मुख्यत एक कहानीकार हैं, अत उनके निकट नाट्य-माध्यम कहानी सुनाने का एक उपकरण-मात्र है। एक अस्वस्थ ह्रासोन्मुखता उनकी रचनाओं के प्रभाव को विगाड देती है। यह Later Romantics लोवेल, और वेडोज की कविता में परिव्याप्त Decadance ऐसी है। 'गहण', 'सगेमील' और 'कच्ची दीवार' उनकी अच्छी रचनाएँ हैं। स्वदेशकुमार सामाजिक नाटक की दिशा मे बढ रहे हैं। वालकराम नागर ने वच्चो के लिये अनेक रोचक गद्य और पद्य अतिकल्पना रूपक लिखे हैं। इनमे 'खिलौनो की नगरी', 'पत्थर की शिकायत' और 'शीशे का जूता' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। हास्य भी वह अच्छा लिखने लगे हैं, यद्यपि यहाँ अभी परियाप्त परिपक्वता उन्हे प्राप्त नही हुई। वह शब्दो से खेलने लग जाते हैं और नाटक के समूचे प्रभाव, उसकी मूलभूत निर्माण-योजना की ओर यथेष्ट ध्यान नही दे पाते।

इन सव लेखको के अतिरिक्त अनेक प्रतिभावान लेखक हैं जो हिन्दी रेडियो-नाट्य को समृद्ध वनाने मे लगे हुए हैं। उनकी चर्चा कदाचित् इसलिये नही हो सकी क्योंकि लेखक उनकी रचनाओ से भली भाँति परिचित नहीं है।

परिमितियो और परिसीमाओ के कारण अन्य प्रादेशिक भाषाओ के रेडियो-नाट्य-साहित्य की विस्तृत चर्चा सम्भव नही। इसलिये उन भाषाओ के प्रसिद्ध नाटक-कारो का उल्लेखमात्र कर दिया जाता है। इनमें से बहुत कलाकार ऐसे हैं जिनकी रचनाएँ हिन्दी में रूपान्तरित या अनुदित हो चुकी है।

१२. पजाबी —पजाबी नाटक और रूपक मुख्यत जालधर और दिल्ली-केन्द्रो से प्रसारित होते हैं। गम्भीर विषयो पर लिखने वालो मे करतारसिह दुग्गल श्रेष्ठ हैं। दुग्गल स्वय एक सिद्धहस्त रेडियो-निर्देशक भी हैं, अत उनकी रचनाएँ शिल्प की दृष्टि से प्राय पूर्ण होती हैं। आपने अनेक प्रकार की रचनाएँ पिछले कई वर्षो में लिखी हैं—जवान जहान' में पजाव के लोकगीतो की सरसता, और प्रत्यक्ष अपील है। 'लघ गए दरिया' में सामाजिक मूल्यो का प्राधान्य है। 'आजादी' में सूक्ष्म व्यग के साथ-साथ रचनात्मक विश्वास के स्वर भी कर्णगोचर होते हैं। 'अमानत' एक-पात्र रूपक है। दुग्गल ने क्रिस्टोफर फ्राई की सवाद-शैली का अनुकरण करने का प्रयास किया है। 'दीवा वुझ गया' के सवाद एक घनीभूत काव्यात्मकता से सचित और रजित हैं, हाँ, कही-कही यह काव्यात्मकता उच्छल भावुकता वनकर श्रोताओं को निश्चय अखरने लगती है। उदाहरणार्थ, 'दीवा वुझ गया' का अन्त।

वलवन्त गार्गी ने भी कुछ सफल नाटको की रचना की है। 'लोहाकुट्ट' और

'पत्तन दी बेडी' उनकी उल्लेखनीय रचनाएँ हैं। गार्गी का झुकाव 'रोमांटिक ट्रेजिडी' की ओर है। 'पत्तन दी बेडी' सवादो की क्षिप्रता, और उनमें व्यक्त भावो की तीव्र प्रगाढता का एक अच्छा उदाहरण है। यह नाटक पजावी रेडियो-नाटक प्रतियोगिता में पुरस्कृत हुआ था, और हिन्दी तथा उर्दू अनुवाद में प्रसारित हो चुका है।

हास्यप्रधान नाटक लिखने वालो में पडित हरिचन्द अख्तर, हरिचन्द चड्ढा, सत्यदेव शर्मा, ऐन० आर० टण्डन, (तापते दी सलवार), मुजतर हाशमी और ऐस० एल० सीम के नाम उल्लेखनीय हैं।

पद्यरूपक लिखने वालो मे प्रसिद्ध उर्दू कवि मखमूर जालधरी, और पजावी कवियित्री अमृता प्रीतम सर्वश्रेष्ठ हैं। अमृता प्रीतम ने पजाब के ग्रामीण जीवन के स्वस्थ और खुले निखरे सारल्य को व्यक्त किया है। किन्तु यह आश्चर्य की बात है कि जो यथार्थ-प्रेम उनकी कविता या उपन्यासो में पाया जाता है, वह उनके नाटको में क्यो नही आया।

१४. बँगला—अब तक बँगला साहित्य की प्राय सब सर्वोत्कृष्ट रचनाओ को अनुकूलित करके रेडियो के माध्यम द्वारा प्रसारित किया जा चुका है। इससे साहित्य-सेवा तो हुई ही है, अनेक रेडियो-प्रतिभाओ का विकास भी हुआ है। बकिमचन्द्र चेटर्जी, शरत, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, डी० एल० राय, ताराशकर बेनर्जी, बुद्धदेव बोस, प्रबोध सान्याल, शरदेन्दु बेनर्जी, रमेन्द्र मैत्र आदि की रचनाओ के रेडियो-रूपान्तर प्रसारित हो चुके हैं। रूपान्तरकारो में बीरेन्द्र कृष्ण भद्र, वाणी कुमार, मन्मथ कुमार चौधरी, श्रीधर भट्टाचार्य और अनिल कुमार चेटर्जी के नाम विशेष रूप से गिनाए जा सकते हैं। इनमें वाणी कुमार ने रेडियो-नाट्य के प्राय सभी रूपो और प्रकारो में लिखा है, और ये प्रयोग काफी सफलता प्राप्त कर चुके हैं।

कहानियो, उपन्यासो के रूपान्तरो के अतिरिक्त कलकत्ता-केन्द्र से बँगला रगमच की उत्कृष्ट और लोकप्रिय कृतियो के सक्षेपण भी सफलतापूर्वक ब्रॉडकास्ट हुए हैं। बँगला-रेडियो-नाटक की प्रगति का मुख्य कारण यह है कि महाराष्ट्र की तरह वहाँ भी बगाल के श्रेष्ठ और उच्चकोटि के साहित्यिको और कलाकारो ने सदा अपना सहयोग दिया है।

सामाजिक नाटक लिखने वालो में प्रबोध सान्याल (भूत-प्रेतनी); प्रमथ नाथ बिसी (चौबीस घटा), मजन्तीकान्त दास, और प्रतिभा बोस के नाम उल्लेखनीय हैं। प्रसान्तकुमार चौधरी ने भी अनेक सामाजिक समस्याओ और सघर्षो को लेकर सफल रेडियो-नाटको का निर्माण किया है। 'घंटा फाटक' मे जमीदारी-प्रथा पर व्यग करते हुए नये सामाजिक शक्तियो के प्रादुर्भाव और प्रगति की ओर सकेत किया गया है। ताराशंकर बनर्जी के सुविख्यात नाटक 'दूई पुरुष' में भी यही समस्या प्रस्तुत है। यह नाटक विष्णुदत्त विकल के रूपान्तर में नाटक-समारोह मे प्रसारित

हुआ था, और अत्यन्त प्रभावशाली सिद्ध हुआ था। प्रशान्तकुमार चौधरी के दु:खान्त नाटकों को भी काफी ख्याति मिली है। उदाहरणार्थ, 'लाल पत्थर', और 'आकस्मिक' उनकी सफल रचनाएँ है।

हास्य लिखने वालों में गजेन्द्र कुमार (विधिलिपि), रमेन्द्र मैत्र (मानमयी गर्ल स्कूल), सजनीकान्त दास (पराग रेखा), और सुबोध बोस (कलेवर) श्रेष्ठ कहे जा सकते है। डी० सी० भट्टाचार्य ने विशेष रूप से 'Thriller' लिखने की ओर ध्यान दिया है। 'रानेर मोह' उनका एक अत्यन्त लोकप्रिय रेडियो-थ्रिलर है।

ऐतिहासिक नाटक लिखने वालो में मन्मथनाथ राय, शरदेन्दु बेनर्जी, प्रभात मुखर्जी, ऐन० के० चट्टोपाध्याय, और परिमल गोस्वामी के नाम अधिक प्रसिद्ध है।

१५. आसामी—शिलांग-गौहाटी केन्द्रो की स्थापना से आसामी भाषा मे लिखने वाले नये नाटककारो को काफी प्रोत्साहन मिला है। पुराने रग-नाटको और अन्य साहित्यिक कृतियों के रूपान्तर तो प्रसारित हुए ही है, नई रचनाओं की सख्या भी बढ़ती जा रही है।

सामाजिक विषयो पर लिखने वालो मे सय्यद अब्दुल मलिक (आधा अके छवि) प्रवीण फूकन (सतीकारवान) और रोमादास (पराजय) श्रेष्ठ है। फूकन ने थ्रिलर भी लिखे है। गिरीश चौधरी (एक सितम्बर) के सामाजिक नाटको में मनोवैज्ञानिक तत्वो का प्राधान्य रहता है।

ऐतिहासिक नाटक लिखने वालो में पूर्णचन्द्र मजुमदार प्रमुख है। उनकी रचना 'कीर्तिचन्द्र बरबरुआ', जिसमें अहोम इतिहास की कुछ घटनाएँ प्रस्तुत की गई है, अत्यन्त सफल रही है।

पद्य अतिकल्पना-रूपक राजेन हजारिका (सॉपन देखर अगाते) ने लिखे है। हजारिका ने आसाम के पर्वतीय प्रदेशो की जनजातियो के जीवन से सम्बद्ध कुछ दु:खान्त भी लिखे है। इनमें 'पर्वतन तिर्गतिग' श्रेष्ठ है। अनिल चौधरी ने भी लोक-गाथाओं पर आधारित दु:खान्त नाटक (माणिक रायताग) लिखे है।

१६ उड़िया—उड़िया नाटक मुख्यत कटक-केन्द्र से ब्रॉडकास्ट होते है। वहाँ भी महाराष्ट्र और करनाटक की तरह लोक-गाथाओं के कथानकों को परिष्कृत करके रेडियो-नाटको की रचना की गई है। इसलिये ऐतिहासिक नाटको का अधिक प्रचलन है। ऐतिहासिक विषय पर लिखने वालो में धर्मानन्द नायक (विप्लवी कृतिवास); गोपाल छोत्री (रूपमती, श्री गुण्डिया) के नाम उल्लेखनीय है। कालीचरण पात्तनायक ने लोक-गाथाओं के आधार पर कई एक सफल नाटक रचे है। 'उत्सर्ग' उनका एक लोकप्रिय नाटक है। कालीचरण पत्तनायक ने दु:खान्त नाटक भी लिखे है। उनकी प्रमुख

विशेषता ग्रामीण वातावरण है, जैसा कि हार्डी के उपन्यासो में मिलता है। चक पाथोना वैठक' में प्राकृतिक शक्तियो के क्रूर प्रहारो से एक हँसते-खेलते परिवार के वरवाद होने की कहानी प्रस्तुत की गई है। विष्णुप्रिया पत्तनायक ('सूर्यशकर') भी दु खान्त लिखती हैं। सामाजिक नाटक विश्वजीत दास (सूर्यास्त) और एन० पत्तनायक (जययात्रा) ने, और हास्य-प्रधान नाटक उदयनाथ मिश्र (कोयला कम्पनी) ने लिखे है।

१७. **गुजराती**—पहले गुजराती नाटक केवल वम्वई केन्द्र से प्रसारित होते थे, लेकिन अब वे वम्वई के अतिरिक्त वडौदा, अहमदावाद और विदेश मे सुनने वालो के लिये 'एक्स्टर्नल सर्विसिज़' से भी प्रसारित होते हैं।

सामाजिक नाटक लिखने वालो में चन्द्रवदन महता, अम्वालाल त्रिवेदी, (प्रेमधर्म), सुरेश गांधी (घाटनूँ घामसान), और धनजय ठकार (क्षयनो दर्दी) धन-सुखलाल मेहता (वा), के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। पौराणिक विषयो पर लिखने वालो में से के० एम० मु शी (लोपामुद्रा, ध्रुव स्वामिनी), उमाशकर जोशी (राम), वच्चूभाई शुक्ल (वरदान) और चन्द्रवदन महता (विश्वामित्री) के नाम लिये जा सकते है। मु शी जी की रचनाएँ यद्यपि रेडियो को लिये नही लिखी गई थी, फिर भी वे प्रसारण में अत्यन्त सफल सिद्ध हुई है। गुजरात के प्रमुख कवि अभिनेता और आलोचक भानुशकर व्यास ने भी रेडियो को अनेक उत्कृष्ट रचनाएँ दी है। वे भी मुख्यत पौराणिक विषयो पर लिखते है। 'जानकी' उनकी एक विख्यात रचना है जो हाल ही में बम्बई-केन्द्र द्वारा आयोजित नाटक-समारोह में ब्रॉडकास्ट हुई थी। रमण-लाल वी० देसाई (वकुलादेवी) ऐतिहासिक विषयो पर लिखने वालो में प्रमुख हैं। ऐतिहासिक नाटक रमेश जोशी (चांद सुलताना, गर्व गौरव) ने भी लिखे है।

हास्य-प्रधान और मनोरजनक व्यग लिखने वालो में सुप्रसिद्ध निर्देशक आदी मरज़वान, धनजय ठाकर, प्रवोध जोशी (खीजी आणे खुशामत) और फीरोज़ आतिया (लाल, पीलो ने वाडोली, पर्पीतिनी भेत) के नाम उल्लेखनीय है। आतिया पारसी उपभाषा (Dialect) की पुट देकर गुजराती सवादो को अत्यन्त मनोरजक वना देते हैं। पैरोडी लिखने वालो में जयन्त पटेल श्रेष्ठ हैं। उनकी कालिदासकृत 'शाकुन्तल' की पैरोडी 'दुष्यन्त वीजो' वहुत लोकप्रिय हुई है।

पद्यरूपक लिखने वालो में भानुशकर व्यास, धनसुखलाल मेहता और इन्दुलाल गांधी (पखानूँ प्रयाण वसन्त सम्वन्धी गीतिनाट्य) के नाम विशेष रूप से लिये जा सकते है। नीनू मजुमदार (गगावतरण) और वेणीभाई पुरोहित (वासवदत्ता) ने भी सफल संगीत प्रधान रूपको की रचना की है।

१८. **मराठी**—मराठी रगमच काफ़ी उन्नत माना जाता है। इस उन्नति का प्रभाव

तेलगु रेडियो-नाटककारो में तीन नाम अधिक प्रसिद्ध है—का० श्री० श्री, के० कुटु बराव और गोरा शास्त्री।

श्रीरगम श्रनिवासराव ने प्राय सभी प्रकार के नाटक और रूपक लिखे हैं, जो विचारो की परिपक्वता और भावो की प्रगाढता के लिए अद्वितीय माने जाते है। 'विदूषकाडी आत्महत्या' मे एक विदूषक का मार्मिक चरित्र-चित्रण हुआ है जो सबको हँसाता है, किन्तु स्वय उदासीन और दुखी है। ऋतु चक्रम' गीति-नाट्य में श्री० श्री की काव्य-प्रतिभा प्रदर्शित हुई है। 'जनता एकमप्रेम' एक रेडियो रिपोर्ताज है।

के० कुटु बराव मुख्यत मनोवैज्ञानिक नाटक लिखते है। उनमे मध्य और निम्न-मध्य वर्ग के जीवन की विषमताओ और तीव्र सवेदनशील व्यक्तित्वो की समस्याओ का चित्रण मिलता है। 'सौतीली मां' (सावतीतल्ली) नाटक दिल्ली-केन्द्र के नाटक समारोह का अत्युत्तम नाटक माना गया था। 'गलीपदग', 'राम पापू कोठा', 'ग्रहा जन्म', 'जीवितेच्छा' और 'अडापली' उनकी विख्यात रचनाएँ है। 'ग्रहा जन्म' में तीन नस्लो के मानसिक विकास की कहानी प्रस्तुत की गई है। 'अडापली' में एक ऐसी नवविवाहिता स्त्री के चरित्र का मनोविश्लेषण है जो अपने पति पर पूर्ण अधिकार चाहती है और उसे किसी अन्य व्यक्ति के प्रति अपना कर्तव्य-पालन नही करने देती। मनोवैज्ञानिक नाटक वी० रगनाथराव (अनुनयम) ने भी लिखे है।

सामाजिक नाटक के० कुटुम्बराव और गोरा शास्त्री (जीविता नटना आमेनन्दिन्दी) राजगोपाल (रेण्डोपल्ली) और एम० वी० एन० प्रसादराव (विनूवीढी एक मारा का चरित्र-चित्रण) ने लिखे हैं। राजगोपाल का झुकाव दु खान्त की ओर अधिक है।

पौराणिक विषयों को नई व्याख्या देते हुए पी० गणपति शास्त्री (जल सुन्दरी महाभारत की एक कथा), ऐन० पी० और कृष्णमाचार्य (चिरुतान्दनाम्बी) और जी० वी कृष्णराव (सुलभा) ने अनेक सफल रचनाएँ रेडियो को दी है।

ऐतिहासिक नाटक श्री० रामचन्द्रराव (कर्णधारी), एम० सोमशेखर शर्मा (रानी सारधा, प्रतिज्ञा), और विश्वनाथ सत्यनारायण (भुवन विजय मृ) ने लिखे हैं।

प्रतीक नाटक, जो मुख्यत पद्य में होते है, या गीति-नाट्य के रूप में लिखे जाते है, ऐस०वी० भुजगराय शर्मा (हेमतम), एनिसेट्टी सुब्बाराव ('चरितार्घुंड' और 'जीवन रस जीवित स्वप्नम') एस० कृष्णमूर्थि शास्त्री (समुद्रपेल्ली) ने, और कवितामय अतिकल्पना रूपक के० विश्वनाथराव (आसरेतवल), वी० कातारात्र (भूताला पुट्टिल्लू), ने लिखे है।

हास्य-रूपक जी० रामशास्त्री (हास्यवल्लरी), जी० राधाकृष्णमूर्थि (टोकरा), और वी० ऐस० शास्त्री (रूपाम) ने लिखे है और रगारग प्रोग्राम एम० वी० एन प्रसादराव, और सी० नरसिह शास्त्री ने।

२१. **तमिल**—मद्रास और त्रिचनापल्ली से प्रसारित होने वाले रेडियो-नाटको में भी बहुत प्रकार और शैली-वैविध्य पाया जाता है। मद्रास बहुल पुराना प्रसारण-केन्द्र है और इस केन्द्र में रेडियो-नाटक का विकास बहुत अधिक हुआ है। यहाँ से चारो दक्षिणीय भाषाओ के कार्यक्रम प्रसारित होते रहे हैं।

सामाजिक नाटक लिखने वालो में ऐस० डी० सुन्दरम् (डाक्टर); वी० सुब्रमणियन (कराएयुडी वयाल), ऐस० अरुमुगम (कैराशी); वाई लक्ष्मीनारायणलाल (कोतुल कडितम), टी० आर० राजगोपालन (पेन उल्लम) और एस० भूमिनाथन (पकायुम पासितुम) के नाम उल्लेखनीय हैं। एस० आरुमुगम ने रोमाटिक नाटक (मानविलक्कू) भी लिखे है।

मनोवैज्ञानिक नाटक लिखने वालो में ए० ऐस० राघवन (कोपावेरी) श्रेष्ठ है।

ऐतिहासिक नाटक स्वामीनाथ आत्रेय (वीरविजयम); और एच० वैद्यानाथन (चित्रलेखा), और पौराणिक नाटक टी० श्रिनिवासाचार्य (अनहिनवेत्री) ने लिखे है।

कुछ हास्य-रूपको की रचना आर० वीज़ीनाथन (उल्लास प्रयाणम) ने की है।

विचार-प्रधान सगीत रूपक जी० अप्पार्लिगम (वालविन्रहस्यम्) ने लिखे हैं और समस्याप्रधान नाटक, ऐस० डी० सुन्दरम (नाले नल्ला नाल) ने।

२२. **मलयालम**—तेलगु रेडियो-नाटक की तरह मलयालम रेडियो-नाटक भी बहुत विकसित है। कुछ लेखको ने केवल भारतीय इतिहास के स्वर्णिम काल से घटनायें लेकर नाटक रचे हैं और कुछ ने पाश्चात्य सभ्यता के महत्त्वपूर्ण तत्त्वो से प्रभावित होकर नाटकों की रचना की है।

ऐतिहासिक विषयो पर लिखने वाली में ऐन० के० कृष्ण वारियर (वीर रवि यर्मा चक्रवर्ती), डाक्टर एस० के० नायर (कुटुम्ब पारमवर्म्म, वीरयु मृत्यु), ई० वी० कृष्ण पिल्लै (सीता लक्ष्मी), के० कुमारन अशान (करुण,) के नाम उल्लेखनीय हैं। के० तायाट ने भी ऐतिहासिक नाटक लिखे हैं किन्तु अधिकतर ग्रीक और रोमन घटनाओ और पात्रोको लेकर। 'हैलिन' और 'त्याग सीमा' उनकी श्रेष्ठ रचनायें हैं। एम० वी० देवन ने इस्पानी लोककथाओ में से रोचक नाटको का निर्माण किया है, उदाहरणार्थ 'नाडुतेडल', और सी० जी० थॉमस ने वाइबल से घटना-चयन किया है, उदाहरणार्थ, 'जूडास'।

सामाजिक नाटक लिखने वालो में टी० एन० गोपीनाथन नायर (दुर्वलम); के० ए० जब्बार (वैरुध्यङ्गल) और इ० गोविन्दन नायर (वुद्धियिल्ला मनुष्यन्मार) के नाम उल्लेखनीय हैं।

पी० एन० नायर ने ऐतिहासिक रोमान (पूजा पुष्पम्) लिखे है। गीतिनाट्य

और कवितामय सगीत-रूपक लिखने वालो में टी० सी० गोपीनाथ (सीतापहरण), टी० एन० गोपीनाथन् नायर (कस्तूरी), और उन्नी कृष्णन नायर (वैशाली) के नाम विशेष रूप मे उल्लेख के योग्य है। पी० एन० नायर (कल्लिट कन्नुनीर) ने भी अनेक गीति-नाट्यो का निर्माण किया है किन्तु उनकी प्रमुख विशेपता यथार्थ-निष्ठता और सामाजिक मूल्यो का प्राधान्य है। पद्य में अतिकल्पना रूपक लिखने वालो में जी० शकर कुरुप (धर्म) श्रेष्ठ है।

हास्य लिखने वालो मे पी०ए० वारियर (ओमंत्तेट् और सकल कलापी) और के० एम० जार्ज (कल्ला नाण्यग्), का उल्लेख किया जा सकता है।

द्वितीय खण्ड

सिद्धान्त

अध्याय पहला

श्रव्यकला और उसके मूलभूत आधार

२३. श्रुतिसंवेद—जिस संसार में हम वास करते है वह नाना प्रकार के आकर्षणो से भरा है। इन अद्भुत आकर्षणो का आभास हम अपनी इन्द्रियो द्वारा प्राप्त करते है। वास्तव में इन्द्रियाँ हमें वस्तु का ज्ञान नही, वस्तु विशेष के गुण का ज्ञान देती है।

हमारी चक्षुरिन्द्रिय हमें दूसरी इन्द्रियो, उदाहरणार्थ घ्राणेन्द्रिय और श्रोत्रेन्द्रिय से अधिक पूर्णरूपेण प्रतीति देती है। घ्राणेन्द्रिय के आधार पर एक अनुकरणात्मक कला की स्थापना सम्भव नही। यह ठीक है कि हमारी आँख हमें वस्तुओ के वाह्य स्वरूप से परिचित कराती है, लेकिन प्राय. दृष्टि मात्र से ही हमें वस्तुओ के गुण और रूप का ज्ञान भी हो सकता है, यद्यपि कभी-कभी वह ज्ञान पूर्ण और विश्वसनीय नहीं होता। वर्ण, आकार, रूप आदि की विशेषताओ द्वारा हम प्रत्येक प्रकार की गति का आभास पा सकते है। और क्योकि, प्रत्येक घटना गति एवं परिवर्तन के रूप में विद्यमान होती है, इसलिए हम दृष्टि द्वारा प्राय सब की सब वाह्य घटनाओ से परिचित हो सकते है। हमें वस्तु विशेष की स्थिति, अर्थात् उसकी दूरी या निकटता, उसकी दिशा आदि का बोध हो सकता है। इसलिए इसी चक्षुरिन्द्रिय परिमाण के आधार पर दृश्यात्मक कलाओ, चित्रकला, शिल्पकला, फिल्म, रगमच और वास्तुकला आदि का विकास हुआ है। इन सब कलाओ का उद्देश्य एक ही है—जीवन की कल्पनात्मक अनुकृति तथा अभिव्यक्ति, जिसके द्वारा उसे देखने वाले के हृदय में रसोद्दीपन हो सके। इन कलाओं के टेक्नीक भिन्न-भिन्न है, किन्तु ये दृश्य-कलाएँ अनुभूति और विचार की अभिव्यक्ति के लिए दृष्टिग्राह्य वस्तु, उदाहरणार्थ, वर्ण, गति, स्थिति और आकार का प्रयोग करती है, जिसका सवेद हमें Three-dimensional space अर्थात् तीन परिमाण वाले देश के रूप में होता है। दो कलाएँ ऐसी है जो दृष्टि का सर्वथा प्रयोग नहीं करती''सगीत और श्रव्य-कला (Aural art)।

इस परिच्छेद में हमें यह देखना है कि श्रव्यकला किन-किन मूलभूत **आधारों** पर निर्धारित है, उसके मूल्य और मान-दण्ड क्या है, और **वह सृष्टि,** जो इन **आधारो**

पर अवलम्बित है कितनी सम्पूर्ण और अर्थ-सम्पन्न है। केवल श्रुति की सहायता से जो अनुभूत होता है क्या उसमें हमें किसी प्रकार की कमी या अधूरेपन का अनुभव तो नही होता ?

२४. ध्वनि, देश और काल—अगर प्रकाश है तो ससार की प्रत्येक वस्तु देखी जा सकती है। पकाश की अनुपस्थिति में देखना सम्भव नही। इस प्रकार प्रकाश दृश्य कला का प्राण है। किन्तु सुनने के लिए ऐसी किसी शर्त की आवश्यकता नही है। वायु, जिसमें हल्की से हल्की सिहरन उठने ही ध्वनि एक स्थान से दूसरे स्थान तक जा पहुँचती है, सदा उपस्थित रहती है। दिन हो या रात, प्रकाश हो या अन्धकार, कोई भी समय ऐसा नही जब हम न सुन सकें। लेकिन इससे यह न समझ लेना चाहिए कि कान की सवेदना अपने में सम्पूर्ण है। उसे किसी ऐसे अनिवार्य तत्त्व की आवश्यकता नही। उदाहरणार्थ, समुद्र और घडी सदा ध्वनियुक्त रहते हैं। इसलिए वह हमें दिखाई दें न दें, श्रवण द्वारा हमे उनकी उपस्थिति की प्रतीति हो जाती है। लेकिन मेज, कुर्सी या शैल्फ पर सजे हुए फूल नि शब्द हैं। अकेली श्रव्यानुभूति द्वारा हमें उनका ऐन्द्रिय सवेद नहीं हो सकता।

दृश्य-कलाओ में स्थिर, अविचल और गतिहीन वस्तुएँ भी अपना स्थान रखती हैं और दृष्टि द्वारा हमें उनकी उपस्थिति, अनुपस्थिति और कलाकृति में उनके महत्त्व का आभास मिलता रहता है। लेकिन श्रव्य में गतिहीन का महत्त्व नही है क्योंकि नि शब्द वस्तुओ का सवेद नही मिल सकता। मेज जब तक चुप-चाप कमरे के एक कोने में दुबकी पडी है, हमें उसकी उपस्थिति का ऐन्द्रिय आभास नही हो सकता और न ही सत्ता की दृष्टि से हमें उसकी अनुपस्थिति से कोई लाभालाभ हो सकता है। हाँ, अगर मेज को घसीटकर कमरे के एक कोने से दूसरे कोने तक ले जाया जाय तो वह सहसा सजीव होकर श्रव्य-चित्र में अपना एक विशेष स्थान प्राप्त कर लेगी। सारत व्य में हमें उन वस्तुओ का आभास होगा जो ध्वन्यात्मक हैं, गत्यात्मक हैं, क्योकि श्रव्यकला मूल रूप से गत्यात्मक है।

अब प्रश्न यह उठता है कि अगर श्रव्य का क्षेत्र वास्तव में इतना सकुचित है तो श्रव्यकला का वस्तुवर्णन किस प्रकार सम्पूर्ण कहला सकता है। निश्चय ही, जो ससार श्रव्य कलाकार अपने शिल्प और कौशल द्वारा निर्मित करता है, अपूर्ण, और अधूरे चित्र की तरह नीरस होगा। लेकिन ऐसा नही है। हाँ, इस ससार के विविध आकर्षणो को अपनी कलाकृति में स्थान देने के लिये उसे एक ऐसे माध्यम का आविष्कार करना पडता है जिसके द्वारा वह अधिक से अधिक अनुभवो को अपनी अभिव्यक्ति की परिधि में ला सके। कदाचित् उसे एक नयी अनुकरणात्मक शैली का विधान करना पडा है, अपने भाव-सत्य की सृजनात्मक अभिव्यक्ति के लिए एक नई रचना-लिपि

और एक नये कृतितन्त्र का आविष्कार करना पड़ा है। सौभाग्य से हमारे ससार में ध्वनि द्वारा सवेदन देने वाले इतने साधन मौजूद है कि किसी विशेष असुविधा के विना वह इसी ससार मे स्थित एक ध्वनि ससार की रचना कर सकता है, यद्यपि वह हमारे साधारण ससार की अपेक्षा सीमित होता है।

श्रव्यकला मूलत गत्यात्मक है। इसलिये दृश्य की अपेक्षा हम श्रव्य मे अधिक घटनाओ का चित्रण कर सकते है। और इसीलिये रेडियो-नाट्य मे रगनाट्य की अपेक्षा अधिक वैविध्य सम्भव है। इस स्थापना से एक और बात निकलती है, जिसका रेडियो-नाट्य के मूलभूत सिद्धान्तो से गहरा सम्बन्ध है। दृश्य-कलाओ की अपेक्षा श्रव्यकला में नाटकीय घटनाओ को अधिक पूर्णता से व्यक्त किया जा सकता है, क्योकि श्रव्यकला में दृश्यकला की अपेक्षा गति की जानकारी देने वाली प्रतीतियाँ अधिक होती है।

श्रव्यकला अपने मूलभूत आधार ध्वनि की तरह केवल काल में ही सम्भव है, यद्यपि उस क्षेत्र में देश की परिकल्पना भी की जा सकती है। दृष्टि के लिये प्रत्येक क्षण का अस्तित्व स्थान के वोध से सम्बद्ध है। हमारी आँख प्रत्येक दृश्य को परिमाणो मे अनुभव करती है। इसलिये दृश्यकला के क्षेत्र में चित्रकला और मूर्तिकला ऐसी कलाएँ है जिनमें कालान्तर नही होता। इनके साथ ऐसी कलाएँ भी है जो देश पर आधारभूत होते हुए भी काल से सम्बद्ध है। काल-निरपेक्ष दृश्य-कलाओ (Timeless visual arts) की तरह काल-निरपेक्ष श्रव्यकला की कल्पना असम्भव है। क्योकि अगर श्रव्य-चित्रण में से काल के तत्त्व को हटा दिया जाय, तो हम किसी भी सार्थक अभिव्यजना की कल्पना नही कर सकते। साराशतः, "Extension in time is a characteristic of the audible, and therefore, all aural arts." सगीत, रेडियो, रगमच, फिल्म आदि मे काल गुण आवश्यक है।

२५. ध्वनि-वैशिष्ट्य का आधार—श्रव्य का आधार है ध्वनि, और ध्वनि की सार्थकता निर्भर है ध्वनि में निहित व्यजना पर। इस व्यजना का मूल क्या है? इस प्रश्न का उत्तर है, ध्वनि-वैशिष्ट्य!

हमारे कान जिन ध्वनियो और शब्दो का प्रभाव ग्रहण करते है उनका क्षेत्र बहुत विस्तृत है। रेडियो-वैज्ञानिको का कहना है कि यह पन्द्रह से लेकर चालीस हजार नाद-कंपन (वाईव्रेशन) प्रति सैकड से उत्पन्न होती है, यद्यपि एक साधारण माईक्रोफोन पन्द्रह से बीस हज़ार कंपन प्रति सेकड की तरगो तक का रेंज ही Reproduce कर पाता है। इस विस्तृत कपन क्षेत्र (Frequency range) में नाना प्रकार की ध्वनियाँ है और प्रत्येक की अपनी-अपनी विशेषता है, स्वभाव है। प्रत्येक ध्वनि मे दो प्रकार के अश (फ्रीक्वेन्सीज़) होते है। हाई फ्रीक्वेन्सीज़ और लो फ्रीक्वेन्सीज़। दोनो का उचित सामजस्य या आदर्श सन्तुलन हमें

बहुत कम ध्वनियो में मिलता है। प्राय. ध्वनि विशेष में एक या दूसरे तत्त्व का आधिक्य रहता है। स्वर तीव्र है या क्षीण, कर्कश है या मधुर, कर्णप्रिय है या कर्णकटु, स्पष्ट है या अस्पष्ट, व्यजनायुक्त है या व्यजना-रहित, यह इन्ही तरग-तत्त्वो के सन्तुलन, सगति एव विसगति पर निर्भर है। ध्वनि की सार्थक प्रतीति का रहस्य भी इन्ही नाद-कपनो (Frequencies) में निहित है। इसी के सहारे हम पहचान सकते हैं कि स्वर नारी का है या पुरुष का, युवक का है या वृद्ध का। यहाँ तक कि प्राय चरित्र की प्रकृति और उसका स्वभाव ध्वनि मे झलकता है। पहाडी कौए की काएँ काएँ और चील का तीव्र स्वर, दोनो ध्वनियो में कितना अन्तर है। कारण, एक में लो फ्रीक्वेन्सीज का आधिक्य है तो दूसरे में हाई फ्रीक्वेन्सीज का, इसलिये एक शब्द-मन्द्र (Bassy) है और दूसरा तार (Sharp)। दोनो ध्वनियाँ अपने स्वर-वैशिष्ट्य के कारण भिन्न है। वास्तव में यही आधार है जिससे हम निरर्थक और अरूपात्मक नाद को अर्थ और रूप देते है।

ध्वनि के स्वर-वैशिष्ट्य की पहचान तीन गुणो से होती है।

१. Variation of Pitch—स्वर-श्रेणी।

२. Duration of Individual Sound—प्रत्येक स्वर की अवधि।

३. Intensity and Amplitude of Sound—स्वर-भार और स्वर-विस्तार।

इन तीन गुणो के मिले-जुले प्रभाव से हम ध्वनि विशेष के स्वभाव से परिचित होते है और उनका अनुभव करते हैं। जैसे चित्रकार अनेक रगो-उपरगो के समावेश से अर्थ की रचना करता है, सगीतकार स्वरो के तारतम्य से, वैसे ही श्रव्यकलाकार ध्वनियो के मौलिक सकलन और समन्वय से अपने अतर में निर्मित चित्र को ध्वनि सामजस्य द्वारा साकार करता है। विशेषतायुक्त ध्वनियो का उचित, अर्थपूर्ण और कलात्मक सविधान ही श्रव्य-कला का मूलभूत आधार है।

२६. ध्वनि-चित्र और कल्पना—रचना से पहले रचयिता के मन में अरूपात्मक भावो का एक ज्वारभाटा-सा उठता है। फिर वह धीरे-धीरे रूपात्मक आकार लेकर प्रकट होते है। विच्छृखलता तथा अव्यव्यस्थता के स्थान पर अन्विति आ जाती है, और अस्पष्टता के स्थान पर स्पष्टता। इस सृजनात्मक प्रक्रिया को हम कला कहते हैं। और इस प्रक्रिया से निर्मित वस्तु को कलाकृति। कलाकृति एक साग वस्तु है क्योकि उसमें अनेक प्रभावो का सम्मिश्रण होता है। लेकिन हमारा मन कलाकृति को एक सम्पूर्ण ऐक्य के रूप मे अनुभव करता है। हमें प्रक्रिया से कोई दिलचस्पी नही होती। दिलचस्पी होती है प्रक्रिया के परिणाम से। उससे प्रभावित होने के लिये, उसके सौन्दर्य मे आनन्दित होने के लिये, उस अगभूत वस्तु के विभिन्न निमायक अगो

के विश्लेषण की आवश्यकता समालोचक को भले ही पडती हो, पाठक, दर्शक या श्रोता को नही पडती। श्रव्यकार भी अनेक ध्वनियो का सकलन करता है और इस प्रकार अरूपात्मक और निराकार अनुभूतिवेग को साकार और सार्थक रूप देकर प्रस्तुत करता है। हमारी श्रवणेन्द्रिय हमें उस सकलन के सत्य का वोध कराती है। हम सुनते हैं स्त्री-पुरुषो का मिला-जुला शोर, लहरो के तट से टकराने और लौट जानेकी ध्वनि,दूर समुद्री पक्षियो का शब्द, और शायद कभी-कभी एकआध जहाज की कूक। इन ध्वनियो का अलग-अलग अर्थ है। लेकिन इन सवके सयोजन से जो अर्थ हमे मिलता है वह भिन्न है। इस शब्द-चित्र का अर्थ है वन्दरगाह। एक ध्वनि-चित्र मे समन्वित ध्वनियाँ हमारे मन पर अलग-अलग प्रभाव छोड जाती हैं, लेकिन जब हमारी कल्पना उन सव ध्वनियो का सकलन और सामजस्य उपस्थित करती है, तव हमें समूचे चित्र का ही अनुभव होता है। उदाहरणार्थ, प्लेटफार्म पर लोगो की चहल-पहल का शब्द, फिर रेल की सीटी का दूर से निकट आता शब्द, और कुछ समय वाद हमारी नायिका का पुकारना, 'कुली 'कुली' और कुली का दूर से उत्तर देना, 'आया वीवी जी'। इन सव ध्वनियो के सम्मिलित प्रभाव से हम रेलवे स्टेशन का आभास पाते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं होती। सुनने वाले की कल्पना विभिन्न ध्वनियो के सवेद को सयोजित कर, अर्थ निकाल लेती है। रेडियो-नाट्य का आधार यही ध्वनि समन्वय है।

२७. शब्द के दो तत्त्व-ध्वनि और अर्थ—श्रव्य ससार मे विशुद्ध ध्वनि के अतिरिक्त शब्द का अस्तित्व भी महत्त्वपूर्ण है। विशुद्ध ध्वनि की चर्चा के वाद अव हम शब्दो और भाषा पर विचार करेगे। हम देखेंगे कि रेडियो में विशेषकर रेडियो-नाट्य मे शब्दो का क्या स्थान है, और जीवन के वस्तुसत्य की अभिव्यक्ति के लिए उनका महत्त्व क्या है।

भाषा का आविष्कार मनुष्य का सवसे अधिक मौलिक और महत्त्वपूर्ण कार्य है जिसने उसके जीवन मे एक सर्वागरण क्रान्ति उत्पन्न कर दी और इन्सान गुफाओ में रहने वाला पशु मानव न रहकर सामाजिक मानव वना। इसी से महान् सभ्यताओ और व्यापक सस्कृतियो का प्रस्फुटन और विकास हुआ। भाषा ही एक साधन है जिसके द्वारा हम अपने हृदय में उमडने वाले भावो और क्षण-क्षण मस्तिष्क मे तरगित होने वाले विचारो को अपने सहचरो तक पहुँचाते हैं, और उनकी भावनाओ और विचारो से परिचित होते हैं। मानव सभ्यता के उस प्रभात-काल में जव इन्सान लिखना या पढना नहीं जानता था तो वह सरल ध्वनि-प्रतीको द्वारा ही अपने विचारो और भावोद्‌गारो को व्यक्त किया करता था। भय और विक्षोभ, हर्ष और उल्लास आदि भाव, ध्वनि-प्रतिक्रियाओं द्वारा व्यक्त होते थे। फिर धीरे-धीरे इन भावो को ध्वनि-सकेतो की वजाय सरल चित्रो द्वारा व्यक्त किया जाने लगा। वे चित्र हमें

पुरानी गुफाओं की भित्तियों पर, शिलाओं पर, सुराहियों और प्यालों पर, आखेट के शस्त्रों पर अब भी मिलते हैं। इन चित्रों के अध्ययन से एक महत्त्वपूर्ण सत्य का उद्घाटन होता है। सर्वप्रथम, मनुष्य ने अति सरल प्रतीक और प्रतिमाएँ प्रयुक्त कीं। ये प्रतिमाएँ और प्रतीक, दृश्य (Visual) हों यथा श्रव्य (Aural), इन्हीं के द्वारा इन्सान अपने आवेगों, शुद्ध और निर्विकार अनुभूतियों और वृत्ति-प्रतिक्रियाओं को साकार करता था। अपनी सरलता के कारण ही ये चित्र हृदयग्राह्य हैं। इनकी सीधी अपील है। पर ज्यों-ज्यों मानव-जीवन विकसित हुआ, उसमें अनेक प्रकार की उलझनें पैदा हुईं, तो मानव के प्रतीक भी गम्भीर, जटिल और रहस्यपूर्ण होते चले गये। सीधे प्रतीकों के स्थान पर परोक्ष और जटिल प्रतीक आने लगे, यहाँ तक कि आज हम उस अवस्था को पहुँच चुके हैं जब कवि की कविता केवल कवि ही समझ सकता है या शायद लिखने के कुछ समय पश्चात् उसे भी उसमें से अर्थ निकालने के लिये काफी उधेड़-बुन करनी पड़ती है। यह कहकर हमारा उद्देश्य प्रतीकवादी कविता की खिल्ली उड़ाना नहीं, बल्कि एक ऐतिहासिक सत्य का सामना करना है। इसी क्रमिक विकास के साथ-साथ हमारी अनुकरणात्मक शैली में भी परिवर्तन आता चला गया है। जैसे शब्द के स्वरूप और अर्थ में भिन्नता आती गई है, वैसे भाषा में ध्वनि, अभि-व्यंजना-सम्पन्न ध्वनि, का महत्त्व क्रमश क्षीण होता चला गया है। श्रव्यकला का आविष्कार और विकास, विशुद्ध ध्वनि और भाषा की अनेकानेक कलात्मक संभावनाओं की खोज की ओर एक महत्त्वपूर्ण कदम है।

यह स्वीकार करने में हमें कोई आपत्ति नहीं होगी कि Representational कला से विशुद्ध ध्वनिमात्र, शब्द से कहीं अधिक असर करने वाली और हृदय-स्पर्शी है। वास्तव में ध्वनि ही शब्द का मूल तत्त्व है। रेडियो-नाट्य में शब्द का अनुबोध हमें मुख्यत ध्वनि के रूप में होता है। रंगशाला में भी दर्शक और श्रोता सर्वप्रथम ध्वनि का अनुभव करता है। शब्द के अर्थ में, उसका स्वभाव बदलते ही, कितना अन्तर आ जाता है, यह नाट्यशास्त्र का विद्यार्थी भली प्रकार जानता है। ध्वनि-विशेषताओं के अन्तर से वाक्य का अर्थ बिलकुल दूसरा हो जाता है। ध्वनि की अभिव्यंजनात्मक विशेषताएँ उदाहरणत श्रेणी (Pitch), अन्तर (Interval), लय (Rhythm), तथा द्रुति (Tempo) हमारे मन पर अधिक सीधा प्रभाव डालती हैं। और इन गुणों (Properties) का शब्द के Objective meaning अर्थात्, वस्तुनिष्ठ आशय से कोई सम्बन्ध नहीं है। आर्नहाईम के शब्दों में ये गुण प्रत्येक प्रकार की श्रव्यकला के लिये, चाहे वह संगीत हो या ध्वनि एवम् संभाषण, मूलभूत और महत्त्वपूर्ण व्यंज-नात्मक सृजन-साधन (Creative means) हैं।

रोने की ध्वनि, 'रोना' शब्द से कहीं अधिक प्रभावोत्पादक और दुःख के भाव

को अधिक पूर्णता और तीव्रता से व्यक्त करती है। और इसी रोने की ध्वनि से, स्वर, लय, विस्तार और तीव्रता के परिवर्तनानुसार कई प्रकार के हृदयस्पर्शी प्रभावो की रचना और कई प्रकार की भावनाओ का सचार सम्भव है। इसके अतिरिक्त, ध्वनि की लय और गति को लक्षणात्मक रूप से भी प्रयोग किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, क्रमश स्वर-प्रकर्ष की ओर उभरती हुई ध्वनि से वढती हुई शक्ति और उदय होते साहस का सकेत होता है। धीरे-धीरे क्षीण होता स्वर, जिसकी तीव्रता (Intensity and Pitch) धीरे-धीरे कम पडती जाए, क्षीण होती शक्ति का बोधक है। अत. विशुद्ध ध्वनि, भावाभिव्यक्ति का एक अत्यन्त शक्तिशाली साधन है, और सुरुचिपूर्ण ध्वनि-सविधान द्वारा अनेक प्रयोगो की सम्भावनाएँ श्रव्य-कलाकार के पास हैं। रेडियो-नाट्य की मूल शक्ति (Elemental force) ध्वनि में निहित है न कि शब्द-मात्र में। और क्योकि ध्वनि, दूसरे बोधप्रेरक साधनो से अधिक सीधा और तीव्र प्रभाव रखती है, इसलिए श्रव्यकला को अपनी शैली का आधार इसी मूलभूत सिद्धान्त को वनाना होगा।

यहाँ एक बात पर विचार करना आवश्यक है, शब्द मे ध्वनि और अर्थ सस्थित नही, वलिक सश्लिष्ट है, एक दूसरे मे ऐसे और इतने समाविष्ट, कि एक को दूसरे से अलग नही किया जा सकता। दोनो का प्रत्यय हमें एक ऐन्द्रिय अन्विति के रूप में होता है। शब्द के अर्थतत्त्व और ध्वनितत्त्व का पार्थक्य तो एक बहुत ही ऊँचे मानसिक स्तर (Advanced stage in psychical reaction), पर जाकर होता है। मूल रूप में ये दोनो वस्तुएँ ध्वनि रूप मे ही हमारी चेतना को उत्तेजित करती है।
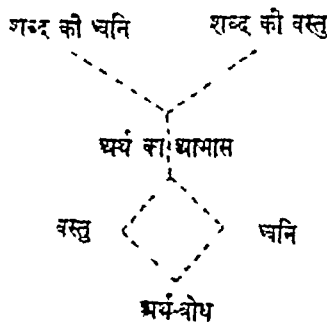
सवेदन के क्षेत्र में ध्वनि और शब्द की वस्तु एकागी अनुभव के रूप मे अनुभूत होते है। वस्तु की ध्वनि का पार्थक्य विवेचन और विमर्पण के परिणामस्वरूप होता है। इस अवस्था में ही हम शब्द के अर्थबोध को पाते हैं। सारत वस्तु और ध्वनि का ऐन्द्रिय ऐक्य (Sensuous unity), श्रव्यकला का मूल आधार है।

इसी पर हम श्रव्य-कला के विविध साधनो—उपकरणो—का विकास करते हैं। जैसे आर्नहाईम कहता है

"The pure sound in the word is the mother earth from which the spoken word of art must break loose, even when it disappears into the far heights of word-meaning The words in a radio play should shimmer in all their tone-colours, for the way to the meaning of words lies through the ear"

ध्वनि द्वारा व्युत्पन्न प्रतिक्रियाएँ कितनी यथार्थ और महत्त्वपूर्ण है यह हमें एक साधारण उदाहरण से पता चल जायगा। अगर किसी बोलने वाले की बात में व्यजना (Expressiveness) का अभाव है, तो श्रोता अपने क्षोभ का परिचय एक सीधे-सादे ढग से दे देता हैं। वह लपककर रेडियो बन्द कर देता है। इसका कारण क्या है ? सबसे सरल उत्तर तो यह होगा कि वक्ता श्रोता की सहानुभूति प्राप्त नही कर सका। उसे आकर्षित नही कर सका। लेकिन अगर इस सरल Reflexaction की खोज की जाय तो हम इस नतीजे पर पहुँचेंगे कि इस स्थिति में वक्ता ने Vocal Line की उपेक्षा की है। यानी जो सौन्दर्य और प्रभाव वाक्यो के स्वर और लय के घटाने-बढाने से पैदा हो सकता था, उसकी ओर उसने यथेष्ट ध्यान नही दिया, उसने सही स्थलो पर तो बल नही दिया, किन्तु अनुचित स्थलो पर बल दिया है, इसलिये वक्तृत्व का वास्तविक और पूर्ण अर्थ श्रोता तक नही पहुँच सका। इसी प्रकार Vocal Line के विकृत हो जाने से प्राय शब्दो का अर्थ विकृत हो जाता है। और इसका परिणाम हास्यास्पद और अरोचक होता है। जैसा कि अक्सर पुराने ढग के रगमच और रामलीला-स्वाग आदि में देखने में आता हैं। ऐसे वक्ताओ के लिये अत्यन्त गम्भीर विचारों को भी रोचक और आकर्षक बनाना सम्भव नही होता, क्योकि बात हँसी में उड जाती है। प्रभावशाली व्यक्तित्व में प्रभावशाली वाणी का कितना महत्त्व है यह लोकप्रिय नेताओ के मोहक प्रभाव मे स्पष्ट हैं। अगर वक्ता के उस भाषण को पढा जाय जिस पर श्रोताओ ने बीसियो बार तालियाँ बजाई, और घटो झूमते रहे, तो हमें उसमें कोई विशेष गुण नही मिलेंगे। फिर क्या था जिसने हजारो विवेकशील श्रोताओ की आलोचना-शक्ति को मन्द बल्कि कुण्ठित कर दिया ? इसमें सन्देह नहीं कि इस 'मूर्च्छना' (Hypnosis) या मोहनी में व्यक्तित्व और सामूहिक प्रतिक्रिया के तत्त्व सबल हैं, लेकिन वाणी की शक्ति का महत्त्व भी कम नही है। प्रत्येक विचार के लिये उसके समसमान (Corresponding) और उपयुक्त स्वर-मान (Tone scale) होता है। प्रयाण-गान और प्रणय-गति दो विभिन्न साहित्य-कृतियाँ है, दोनो का

अपना-अपना स्वभाव है। और जब उन्हे उनके अनुरूप और अनुकूल अभिव्यक्ति प्राप्त होगी तभी उनका वस्तुसत्य सच्चाई से व्यक्त होगा। अगर साधन अक्षम है तो परिणाम होगी असफलता। स्वर के हल्के से विकार से संवाद का स्वभाव तो बदल ही जाता है, कभी-कभी उसके अर्थ का भी लोप हो जाता है। अतिरंजित (मेलोड्रेमेटिक) अभिनय गम्भीर से गम्भीर विषय को हलका और हास्यास्पद बना सकता है, क्योकि उस अभिनय में सभाषरण का स्वर विकृत तथा अप्राकृतिक (False note) हो जाता है। जितना अधिक वक्ता अपनी वाणी और अपने स्वर को उपयुक्त स्वर (Vocal line) से ऊपर उभारता चला जाता है, उसका सभाषण उसी अनुपात से प्रभाव-रहित और अप्राकृतिक होता चला जाता है। दूसरी ओर ऐसा भी होता है कि बोलने वाला ऐसे स्वर में बोलता है कि वाक्यो का सीधा अर्थ भी श्रोता तक नही पहुँचता, भावना का तो कहना ही क्या। वाक्य उत्तेजना चाहते है, किन्तु अभिनेता उन्हें इतनी शिथिल वाणी में उपस्थित करता है कि श्रोता की उपेक्षा धीरे-धीरे ऊब और उक्ताहट में परिणत होने लगती है। श्रव्य अभिनेता के लिये Vocal modulation अर्थात् स्वर के उतार-चढाव की क्षमता का विकास उतना अनिवार्य है, जितना कि एक चित्रकार के लिये रगो की सगति (Colour harmony) का विकास। क्योकि इसी गुण द्वारा ही रेडियो-अभिनेता वाक्यो को भाव और अर्थ से अनुप्राणित कर सकता है। बल्कि यहाँ तक भी कहा जा सकता है कि सफल श्रव्य-लेखक के लिये सही स्वर (Correct tone) का ज्ञान उतना ही अपेक्षित है जितना कि अभिनेता के लिए, क्योकि " Audience is gripped not by what is said, but by the effective tone in which it is said " (Arnheim) (क्या कहा जा रहा है श्रोता उससे इतने प्रभावित नही होते जितना कि कहने के प्रभावशाली ढंग से।)

२८. **ध्वनि और सगीत**—सुप्रसिद्ध जर्मन साहित्यकार 'नोवालिस' ने एक बार कहा था, कि "पहले पहल हमारी भाषा बहुत अधिक सगीतमय थी लेकिन धीरे-धीरे वह गद्यमयी (Prosaic) बनती गई है, जैसे वह अपना उचित स्वर भूल बैठी हो। अब वह एक शोर मात्र बनकर रह गई है। उसे फिर से संगीत बनना होगा।" नोवालिस, उस पार्थक्य की ओर सकेत कर रहा था जो सभ्यता के विकास के साथ-साथ कला की और साधारण दैनिक जीवन की भाषा मे आ गया है। आजकल हमे सगीत के रूप में तो ध्वनि-सौन्दर्य का अनुभव होता रहता है, लेकिन भाषा के रूप में ध्वनि की प्राकृतिक सगीतात्मकता का अनुभव करने के हमे बहुत कम अवसर मिलते है यद्यपि कुछ भाषाएँ अब भी ऐसी है जिनमे इस प्राकृतिक सगीतमयता को नष्ट नही होने दिया गया। रगमंच पर बोली जाने वाली भाषा को यथार्थवाद के नाम पर इसी

प्रकार सगीतमयता से रिक्त कर दिया गया है। श्रव्य-कलाकार जिसका एक मुख्य उद्देश्य, ध्वनि की व्यजना और रजकता की सभावनाओ का विकास है, इस पार्थक्य को अच्छा नही समझता। वह इस सत्य को लेकर चलता है कि प्रत्येक ध्वनि में व्यजना की अद्भुत शक्ति है। प्रत्येक शब्द, अर्थ और भावना से परिपूर्ण है। यदि आवश्यकता है, तो भाषा के साधनो के कलात्मक और सुरुचिपूर्ण प्रयोग की। जैसा कि आर्नहाईम कहता है —

"The rediscovery of the musical note in sound and speech, the wedding of music, sound and speech, into a single material, is one of the greatest artistic tasks of the wireless"

ध्वनि और सभाषण में सगीत तत्त्व का पुनराविष्करण, सगीत, ध्वनि और सभाषण का एक तत्त्व मे सश्लेष, बेतार का सबसे बडा कलात्मक कर्तव्य है।

सगीत और श्रव्यकला एकात्म है, उनमें प्राय एक ही अभिव्यजना के साधन प्रयुक्त होते है। दोनो मे ध्वनि को कलाकार की भावाभिव्यक्ति का साधन और श्रोताओ मे रसोत्पत्ति का साधन माना जाता है। दोनो का प्रभाव उनकी सरलता और तीव्रता (Intensity) पर निर्भर है। और दोनो की अनुभूति विशुद्ध कल्पनात्मक अनुभव के रूप में होती है। इसलिये उचित ही है कि ध्वनि, सगीत, और उनके विभिन्न तत्त्वो, लय, स्वर और भावरजकता के तालमेल से एक नये कलामाध्यम और नयी रचना-शैली का आविष्कार किया जाये। जैसे चित्रकला में रगो के नये-नये समन्वय और समावेश खोजे जा रहे है, उसी प्रकार ध्वनि के क्षेत्र मे भी बहुत से प्रयोगो के लिये अवकाश है। पाश्चात्य सगीतकारो की वाद्यरचनाओ (Symphonies) में इस सत्य को प्रत्यक्ष रूप मे प्रस्तुत किया गया है कि स्वर और लय के तारतम्य द्वारा अनेकानेक अर्थच्छटाएँ (Shades of meaning) अभिव्यक्त की जा सकती है। वास्तव में आवश्यकता इस बात की है कि हम प्राकृतिक ध्वनियो की मूलभूत सगीतात्मकता को अनुभव करें। "हम एक बार फिर अपने आपको उस आदिम युग में अनुभव करें जहाँ शब्द निरा स्वर था, स्वर निरा शब्द।"

२९. ध्वनि-नाट्य - श्रव्यकला की परिभाषावली बहुत ही सीमित है। पर सगीत और ध्वनिकला में आत्मीयता होने के कारण हम सगीत सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दों का उपयोग कर सकते हैं। उदाहरणार्थ द्रुति (Tempo), तीव्रता (Intensity), गति (Dynamics), स्वर-सामजस्य (Harmony) और स्वर-विरोध (Counter point) ध्वनिकला के लिये भी उपयुक्त और महत्त्वपूर्ण पारिभाषिक शब्द (Expressions) है। हाँ ध्वनिकला के क्षेत्र में इनका गणित की तरह से नियमन नही किया जा सकता। ऐसा होना भी नही चाहिये क्योकि ध्वनियाँ और

शब्द प्रकृतिजन्य वस्तुएँ होने के कारण सगीत-स्वरो (Notes) की तरह रासायनिक तथा विशुद्ध कला-निर्मितियाँ (Chemically pure art products) नही हो सकती। फिर भी ध्वनि-कलाकार सगीत की सम्पन्न परिभाषावली द्वारा अनेक प्रकार के ध्वनि-वैशिष्ट्य को व्यक्त कर सकता है।

प्रत्येक ध्वनि की विशेषता उसके स्रोत के आकार-प्रकार और प्रकृति की विशेषता पर निर्भर है। सगीत की परिभाषा में हम इसे वाद्ययंत्रो का स्वर-गुण (Vocal character) कहते है। सगीत-रचना में प्रत्येक वाद्ययन्त्र का महत्त्व उसके ध्वनि-वैशिष्ट्य पर निर्भर होता है। और वाद्ययन्त्रो के स्वभाव की चर्चा करते समय हम प्राय उनका सम्बन्ध मानुषिक विशेषताओ से स्थापित करते है। उसी प्रकार क्या हम एक नाटक में प्रत्येक पात्र की कल्पना एक सगीत-प्रतिमा के रूप में नही कर सकते ? आर्नहाईम का मत है कि ऐसा न केवल सम्भव है, बल्कि वाछनीय भी। इस प्रकार हम एक Symphony लिखने वाले सगीतकार की तरह प्रारम्भ में ही निर्धारित कर सकते है कि अमुक पात्र, अपनी ध्वनि विशेषता सहित नाटक में किस प्रभाव की उत्पत्ति करेगा, और उसका समूचे नाटक के विधान में क्या महत्त्व होगा। ऐसे ध्वनि-नाटक में अनेक प्रभावो का समन्वय और समावेश होने पर भी प्रत्येक प्रभाव का व्यक्तिगत महत्त्व कायम रहेगा। और क्योकि रेडियो में चाक्षुष (Visual) का तत्त्व निकाल लिया जाता है इसलिये यह वांछनीय है कि ध्वनि-नाट्य में प्रत्येक चरित्र की कल्पना उसके ध्वनि-वैशिष्ट्य को सामने रखकर की जाय। उसी तरह, क्योकि रेडियो-नाट्य में चरित्रो का प्रकटीकरण स्वर द्वारा होता है, यह आवश्यक है कि नाटक का निर्माण करते हुए पात्रो की चारित्रिक विशेषताओ को ध्वनिप्रतीको द्वारा प्रकाशित किया जाय।

शायद इस शैली के विरुद्ध यह कहा जा सकता है कि इस प्रकार नाटककार का रचना-क्षेत्र सीमित हो जायगा, और इस शैली द्वारा निर्मित चरित्र भी प्राय स्थूल (Crude) होगे, क्योकि हर प्रतिनायक अहकारी और मिठबोला नही होता, हर नायिका मधुरकठा नही होती, और हर पिता मोटी खरजीली आवाज़ वाला (Husky) और माता तीखे स्वर (Sharp) वाली नही होती। यह आपत्ति ऊपर से बहुत तर्कसगत लगती है। लेकिन वास्तव में इसमें बहुत तथ्य नही है क्योकि अगर हम कान खोलकर चलें तो हमें अनुभव होगा कि साधारण स्वर (Normal voice) शायद हज़ार में से एक का भी नही होता। साधारण से साधारण वाणी में भी कोई अपनी व्यक्तिगत विशेषता है, स्वर की, स्वभाव की, उच्चारण की, लहजे की। और यह विशेषताएँ चरित्र विशेष के Accident नहीं है बल्कि चरित्र के वास्तविक मूल्य के प्रतीक है। इन ध्वनिप्रतिमाओ में चरित्र प्रतिबिम्बित होता है। इसलिये एक कुशल

कलाकार के लिए केवल ध्वनि के आधार पर चारित्रिक विशेषता की अनेक छटाएँ (Shades) व्यक्त करना असम्भव नही। उसका पहला काम है उस विशेषता, उस विभिन्नता का परीक्षण जिसके कारण एक चरित्र दूसरो से पृथक् है। उसे देखना होता है कि यह विशेषता वास्तविक है और चरित्र की मूल प्रकृति से जनित। उसे सोचना होगा कि एक ध्वनि-प्रतिभा के रूप में, वह श्रोता के मन में उसी प्रकार की अनुभूति का उद्दीपन करेगी या नही जो इस चरित्र को देखकर स्वय कलाकार के मन में आविर्भूत हुई थी। फिर यह बीज उसकी कल्पना में पनपकर एक सुन्दर और आकर्षक चरित्र के रूप मे विकसित होगा। ऐसा चरित्र न केवल जीवन के अधिक सन्निकट होगा बल्कि ध्वनि-नाटक की सफलता का प्राण भी।

जो कुछ ध्वनि-चरित्र की रचना के विषय में कहा गया है, वह उससे कही अधिक चरित्र-अभिनय के विषय में सगत है। वस्तुत ध्वनि-चरित्र उस समय सजीव होता है जब अभिनेता उसकी आत्मा में बसकर, वाणी-विन्यास और स्वर-छटाओ द्वारा उसके सत्य को मूर्त्त रूप में प्रकट करता है। शायद रेडियो-नाट्यकार के लिये यह जानना लाभप्रद होगा कि चरित्रो के निर्माण के लिये रेडियो निर्देशक किस युक्ति का प्रयोग करता है। नाटक का अध्ययन कर लेने के पश्चात् वह प्रत्येक चरित्र की कल्पना एक चारित्रिक मूलस्वर (Characteristic basic tone) के रूप में करता है। यह देखने के अतिरिक्त कि प्रत्येक स्वर अपने चरित्र की विशेषताओ को प्रति-ध्वनित करता है, उसे इस बात का ध्यान रखना पडता है कि श्रोता एक पात्र को दूसरे से उलझाने न पाये। अगर निर्देशक ऐसा करने में सफल हो जाय, तो नाटक के अर्थ का प्रकटीकरण केवल नाटक के शब्दो द्वारा न होगा, बल्कि उसमें प्रयुक्त ध्वनि-मूल्यो द्वारा भी। अगर वह ऐसा करने में असफल रहता है तो श्रोता की रुचि अस्पष्ट और उद्भ्रान्तिजनक पात्रो को पहचानने में ही क्षीण हो जायगा। और ऐसे पात्र नाटक के वास्तव को प्रकाशित करने के बदले, चित्र को धुंधला-मटमैला बना देंगे। और ऐसे नाटक के प्रभाव में केन्द्रैक्य न होकर बिखरन होगी।

३०. एक अद्भुत प्रयोग—पाश्चात्य सगीत के इतिहास में रोमाटिक युग सगीत के विकास के लिये अच्छा नही समझा जाता क्योकि जहाँ इस शैली में सगीत की अभिव्यजनात्मकता पर बल दिया गया वहाँ इस मुक्त प्रभाव ने सगीतकारो को अनु-शासन और नियमो-मर्यादाओ की उपेक्षा करने पर भी प्रोत्साहित किया। आज रोमा-टिक शैली आधुनिक सगीतकारो द्वारा प्राय त्याज्य समझी जाती है। लेकिन वाद्ययन्त्रो सम्बन्धी रोमाटिक प्रयोग आधुनिक सगीत-शैली में समाविष्ट कर लिये गये है। आज प्रत्येक वाद्ययन्त्र को विशेप व्यजना का साधन मानकर प्रयोग किया जाता है। पश्चिम में श्रव्य-नाट्यकारो ने भी इस नये ज्ञान को अपनी अभिव्यजना-शैली और रचनातन्त्र

में स्थान दिया है। इस क्षेत्र में कुछ नये प्रयोग बहुत अधिक सफल हुए हे। ध्वनि और सभाषण में अंतर्भूत सगीतमयता का पूरा-पूरा लाभ उठाते हुए एक नूतन प्रयोग किया गया है, जिसके विषय में जान-पहचान प्राप्त करना श्रव्यकला के मर्म को समझने में सहायक होगा।

प्रतिरूपात्मक नाटक में प्रत्येक ध्वनि का प्रयोग इस दृष्टि से किया जाता है कि प्रत्येक ध्वनि अपने स्रोत की परिचायक हो और उसकी मूलभूत प्रकृति की ध्वनि-प्रतिमा हो, ताकि केवल श्रवणाभास से ही श्रोता सम्पूर्ण रूप से उसके अर्थ को पा लें। प्रतिरूपात्मक ध्वनि-नाट्य एक ऐसी केन्द्रीय विचार-वस्तु पर निर्धारित है जिसकी कल्पना और अभिव्यक्ति शुद्ध ध्वनि के रूप मे की जा सके। जब केन्द्रीय पात्र एक सप्रभाव ध्वनि-प्रतीक से समीकृत हो जाता है, तब अन्य पात्रो को Rudimentary sound motifs अर्थात् प्राथमिक मूल-स्वर-प्रतीको के रूप में इस केन्द्र के चारो ओर समवेत किया जाता है। इस प्रकार शुद्ध ध्वनि मोतीफ नाटक की क्रिया और कार्य-व्यापार की भावात्मक व्याख्या करेंगे और नाटक का समूचा प्रभाव अर्थसमृद्ध और अधिक हृदयस्पर्शी होगा। इस समीकरण में एक बात बडी ध्यान देने योग्य है। विभिन्न ध्वनि-प्रतीको का भेद और अन्तर स्पष्ट होना चाहिये, ताकि किसी पात्र की व्यक्तिता का महत्त्व कम न हो। हां, तो जिस प्रयोग की हम यहाँ चर्चा करने जा रहे हैं उसमें सगीत-शैली के अनुरूप सरल मौलिक रूपो (Fundamental types) से शुरू होकर अधिक जटिल (Complex) चरित्रो की ओर बढा गया है। सगीत की ये Fundamental types है, मन्द्रतर (Bass), मन्द्र (Tenor), मध्य (Alto) और तार (Soprano)। एक प्रख्यात जर्मन ध्वनि-नाट्यकार Leo Matthias ने एक प्रतीक-नाटक 'The Ape Wun' के चरित्रो का निर्माण सगीत-प्रतिमाओ के रूप में किया। उस नाटक का पात्र-परिचय इस प्रकार है—

राजमाता	Bass (मन्द्रतर)
बुद्ध	Tenou (मन्द्र)
पशु-वुन	Baritone (षड्ज)
वुन	Bass (मन्द्रतर)
श्रीमती सियाग	Soprano (तार)
श्रामती फाई	Alto (मध्य)

इस नाटक की मूल समस्या बुद्ध (Tenor) और पशु-वुन (Baritone) का सघर्ष है। आरम्भ में वुन सर्वशक्तिमान और अजेय प्रतीत होता है। लेकिन धीरे-धीरे वह बुद्ध की आत्मशक्ति से पराजित हो जाता है, सबल पशुबल, भौतिक दृष्टि से दुर्बल बद्धिबल से। इसी सिद्धान्त के अनुकूल सारे पात्रो के उद्देश्यो को निर्धारित किया

गया। विभिन्न ध्वनि-समन्वयो की सहायता से नाटक के कथानक की अभिव्यजनात्मक व्याख्या प्रस्तुत की गई। इस प्रयोग के परिणामो के आधार पर अनेक ध्वनि-रचनाओ की सम्भावना है।

३१. दिशा और अन्तर—ध्वनि-वैशिष्ट्य के अतिरिक्त श्रव्य नाट्यकार को वस्तु-वर्णन के लिए कुछ और उपकरणो का उपयोग भी करना पडता है। यह आवश्यक है कि विशेषताओ के अनुसार किसी ध्वनि के अर्थ के अतिरिक्त श्रोता को ध्वनि की दिशा और अन्तर की प्रतीति भी हो। उसे मालूम होना चाहिए कि एक ध्वनि-स्रोत का किसी देश विशेष में क्या स्थान है (The situation of the sound-source in space") , और अगर वह एक से अधिक समकालीन ध्वनियोका आभास पा रहा है, जो विभिन्न स्रोतो मे उद्भूत हो रही है, तो उसे उनके दैशिक सम्बन्ध का ज्ञान होना चाहिए। जैसे एक कुशल चित्रकार के लिए चित्र में ठोसपन और सच्चाई लाने के लिए परिप्रेक्षण-योजना (Perspective) का ज्ञान अनिवार्य है, वैसे ही श्रव्य-कलाकार के लिए देश और काल का परिमाणिक चित्रण करने के लिए दिशा और अतर के सिद्धान्त का ज्ञान अनिवार्य है। रगमच पर हम यह निर्धारित करते है

श्रव्य-सवेदन-क्षेत्र
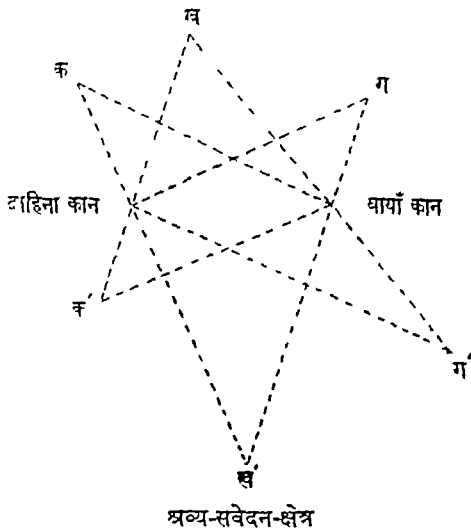
कि पात्र-विशेष विभिन्न स्थितियों में किस प्रकार अवस्थापित होगा, वह किस समय किस दिशा से प्रवेश करेगा, और किस दिशा में प्रस्थान। रेडियो-मच के लिए भी इसी प्रकार के सयोजन की आवश्यकता है, ताकि श्रव्यकला द्वारा निर्मित चित्र निर्जीव न लगे बल्कि जीवन के खड की तरह सजीव प्रतीत हो।

दिशा और अतर की प्रतीति हमें माइक्रोफोन द्वारा प्राप्त होती है जिसे स्टूडियो (श्रव्य रगमच) की आत्मा कहना अनुपयुक्त न होगा। लेकिन इससे पहले कि हम इस चमत्कारपूर्ण यत्र की कार्य-प्रणाली की विवेचना करने का प्रयास करें, यह अप्रासगिक न होगा अगर हम अपने शरीर के माइक यानी कानो की चर्चा करें और दोनो की सवेदन-प्रक्रिया की तुलना करें। सामान्यत. हमारा कान दाहिने और बायें की स्पष्ट पहचान कर लेता है क्योकि दाहिनी दिशा से आती हुई ध्वनि हमारे दाहिने कान तक पहले पहुँचती है। इस प्रकार हम दोनो कानो से दिशाओ का आभास पाते है। लेकिन सामने और पीछे, या ऊपर और नीचे की प्रतीति इतनी स्पष्ट नही होती, क्योकि ये दोनो दिशाएँ समवस्थित (Symmetrical) अर्थात दोनो कानो के लिए एक-सी हैं। जैसा कि ऊपर दी गई आकृति से स्पष्ट होगा, हमारे लिए यह पहचान सकना कठिन नही है कि स्थान 'क' बाई ओर है, और स्थान 'ग' दाई ओर। लेकिन स्थान 'क'' और स्थान 'क' में हमें कोई अतर प्रतीत नही होगा। और न ही स्थान 'ग'' और स्थान 'ग' में, क्योकि इनमे कोई अ तर नही। सामने और ऊपर का आभास हम कानों की साधारण स्थिति में परिवर्तन लाकर ही पा सकते है।

अब, माइक्रोफोन के लिए दायें-बायें का अतर कोई महत्त्व नही रखता। इस यंत्र द्वारा हमें केवल अतर का प्रत्यय मिल सकता है, दिशा का नही।

"In the sensory zone of audibility which the microphone transmits to us there is probably no direction but only distance That is, every sound-alteration evoked by the direction of the sound is apprehended as an effect of distance" (Rudolf Arnheim)

इसलिए श्रव्य-लेखक को दिशा की अपेक्षा अतर के प्रभाव पर अधिक ध्यान देना पडता है। उसे ईप्सित प्रभावो की उत्पत्ति के लिए अपने रचना-तत्र और लेखन-शैली में जरूरी परिवर्तन करने होते है। अर्थात्, ध्वनि-चित्र में जो अपूर्णता रह जाती है, उसे लेखक अपने शब्दो द्वारा पूरी कर देता है। श्रोता का अनुभव उसकी कल्पना की सहायता करता है और वह अधूरे चित्र का नही, सम्पूर्ण चित्र का आनन्द ग्रहण करता है।

अब हम यह देखें कि माइक्रोफोन किस प्रकार काम करता है। जब हम बोलते हैं तो ध्वनि-तरगें सब दिशाओ में फैल जाती है। माइक इन्ही ध्वनि-तरगो के स्पर्श से ध्वनि-तरगो को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाने में सहायक होता है। साधारण माइक ३ प्रकार के होते है। एक गोलाकार Ball shaped, Omni-directional माइक जो सब दिशाओ से ध्वनि-तरंगो का स्पर्श करता है। दूसरा Clock-face कहलाता है जो केवल एक ही दिशा से आती ध्वनि-तरगो से प्रभावित होता है। तीसरा

Ribbon या Bi-directional, जिसके दो मुख होते है। वैसे तो वह चतुर्मुखी होता है, लेकिन इसके दो पक्ष ही Live अर्थात्, प्रभावग्राहक होते हैं। दूसरे दो पक्ष निष्क्रिय (Dead) कहलाते है।
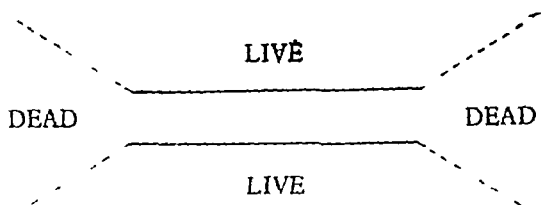
माइक्रोफोन द्वारा ग्रहण ध्वनि-विस्तार, और ध्वनि-स्वभाव, वक्ता और माइक के अतर पर निर्भर है। यदि ध्वनि का स्रोत माइक के प्रभाव-क्षेत्र से निकट है तो ध्वनि सबल होगी और यदि दूर है तो क्षीण। यदि बोलने वाला माइक के Dead यानी उन पक्षो के सामने बोले जो ध्वनि प्रभाव ग्रहण नही करते, तो ध्वनि-तरगें सीधे न टकराकर आस-पास की वस्तुओ से परावर्तित (Refeect) होकर टकराएँगी, इसलिए ध्वनि क्षीण होगी, और दूर से आती प्रतीत होगी। इस सिद्धान्त को प्रसिद्ध श्रव्य-शास्त्रज्ञ Arnheim ने साराश रूप, इन शब्दो में प्रस्तुत किया है—

"In fact, all different spatial characteristics of sounding bodies in the transmitting room are reduced in their effect on theblind listener, to his hearing along one extension is depth, sounds coming from various distances"

एक और ध्वनि-वैज्ञानिक E Michel ने इस सम्बन्ध में प्रयोग करनेके पश्चात् निर्धारित किया कि—"Taking into consideration the constant mode of refraction one can assume that the volume of sound diminishes insimple linear ratio to its distance from the source, that is,according to the length travelled" और एक साधारण रूप से स्पष्ट स्वर तकरीबन ८ मीटर(8 82 गज) से साफ-साफ सुनाई दे सकता है। इससे अधिक दूरी पर स्वर स्वर नही रहता, एक अस्पष्ट अर्थहीन रव-मात्र बनकर रह जाता है।

इन सब बातो से प्रतीत होगा कि माइक्रोफोन का कार्यक्षेत्र बहुत सीमित है। लेकिन जहाँ माइक की क्षमता सीमित है वहाँ उसे बहुत सी सुविधाएँ भी प्राप्त हैं। उदाहरणार्थ, अगर किसी नाटक में यह दिखाना अभीष्ट हो कि राम गली के नुक्कड से ऊपर वाले मकान की खिडकी में खडी लडकी रम्भा से बातचीत कर रहा है, तो हमें रगमच की तरह स्टूडियो में मकान बनाने की, या माइक्रोफोन के सामने सीढ़ी लगाने की कोई आवश्यकता नही। हमें केवल राम और रम्भा को माइक

से भिन्न-भिन्न दूरियो पर स्थिति कर देना है। अगर राम पहले पुकारता है तो वह माइक के अधिक निकट रहेगा और रम्भा उसकी बातो का उत्तर दूर से देगी। इस प्रकार दैशिक अ तर के कारण दोनो वक्ताओ के स्वर-विस्तार में जो भेद आ जायगा, उससे सुनने वाले को ऐसा लगेगा कि वे भिन्न-भिन्न स्थानो से बोल रहे है। इसी प्रकार पात्रो के स्वर-विस्तार को घटाने या बढाने से उनके प्रवेश या प्रस्थान की सूचना दी जा सकती है। अगर वक्ता निष्क्रिय पक्ष (Dead side) से बोलता हुआ प्रभावग्राहक पक्ष (Live side) की ओर बढे तो श्रोता अनुभव करेगा कि वक्ता दूर से निकट आ रहा है। और अगर प्रभावग्राहक पक्ष मे प्रभाव अग्राहक या निष्क्रिय पक्ष की ओर जाए तो श्रोता तुरन्त अनुभव करेगा कि पात्र दृश्य से प्रस्थान कर रहा है। प्रभाव अग्राहक पक्ष का एक और भी उपयोग है। अगर हमें यह बताना हो कि अमुक पात्र पहले दूसरे कमरे में बोल रहा था और फिर किवाड खोलकर सामने आगया है, तो पात्र को पहले प्रभाव अग्राहक पक्ष (Dead side) से बोलना होगा और किवाड खुलने के ध्वनि-प्रभाव के पश्चात् प्रभावग्राहक पक्ष (Live) से बोलना आरम्भ कर देना होगा। रेडियो-नाट्य का निर्माण इस प्रकार होता है कि जिसमें पात्रो की स्थिति और उपस्थान, दूरत्व और समीपत्व को ध्वनि के अन्तर द्वारा प्रकाशित किया जा सके।

३२. **गति और नाट्य-व्यापार**—रगमच पर, और फिल्म में हम पात्रो की गति-विधि की सूचना आंखो द्वारा पाते है। श्रव्य-नाट्य में वस्तुओ के स्थायी और गतिमान अस्तित्व का ज्ञान हमे कानो द्वारा होता है। क्योकि यहां हमारे प्रभाव-ग्रहण का माध्यम केवल श्रुति ही है। गति का श्रोत्राभास हमें तीन प्रकार से हो सकता है।

पहला, यदि एक शब्दायमान वस्तु एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाये तो इस गति द्वारा ध्वनि के स्वर-भार में अ तर आ जायगा। जैसा कि दिशा और अ तर के विषय में कहा जा चुका है माइक के लिए दिशा के अ तर को व्यक्त करना सम्भव नही। दिशा-परिवर्तन का आभास दूरी और निकटता के अनुभव द्वारा ही होगा।

दूसरा, शब्दायमान वस्तुओ के अतिरिक्त कभी-कभी हमें नि शब्द वस्तुओं की गति का आभास भी हो सकता है। विशेषकर जब इस गति द्वारा ध्वनि में अ तर उत्पन्न होता हो। जैसे हम सुनें कि कुछ दूरी पर कुछ लोग बातचीत कर रहे है, और उनके और माइक्रोफोन के बीच कोई वस्तु आ जाती है तो बातचीत के क्षणिक रूप से क्षीण होने से हमें नि·शब्द वस्तु की गति का आभास हो जाता है। इसी प्रकार से हम दरवाजे या खिडकी का खुलना सुन सकते है।

तीसरा, इस अवस्था में श्रव्य-केन्द्र भी गतिमान रह सकता है। इस प्रभाव को (D. C. P.) डाइरेक्ट कंट्रोल पेनल द्वारा ध्वनि-परिवर्तन से प्रकट किया जाता

लेकिन अगर हम माइक को आगे या पीछे कर सकें तो शायद अनेक अद्भुत प्रभावो की सम्भावना है। वैसे तो इन दो क्रियाओ में कोई अन्तर नही क्योकि दोनो स्थितियो में श्रोता को इस गति का अनुभव सवल और क्षीण स्वरके प्रभाव के रूप में होगा, पर वास्तव में इन दो स्थितियो के अ तर को स्पष्ट रूप से प्रकट किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, अगर हम सुनें कि घडी की ध्वनि धीरे-धीरे घटती जा रही है तो हम यह अनुभव करेंगे कि माइक ध्वनि के स्रोत के निकट जा रहा है। क्योकि क्लाक चलते-फिरते नही है। इसके विपरीत अगर हम सुनें कि आग वुझाने वाले इजन का शब्द धीरे-धीरे उभरता चला आ रहा है, तो हमें लगेगा ध्वनि का स्रोत श्रव्य-केन्द्र के निकट आ रहा है।

इनके अतिरिक्त एक और स्थिति भी है एक स्थल पर श्रव्य गतिमानता (Audible movement on the spot), यानी अगर वक्ता वोलते हुए इधर-उधर हिलता-जुलता रहता है, माइक से हटता है या उस पर झुकता है, तो हमें इस गति का भी स्पष्ट आभास होगा। क्योकि दिशान्तर और अ तर-परिवर्तन के साथ-साथ स्वर का भार (Volume) भी बदलता रहता है। इस गति का वार्ता-प्रसार में कोई महत्त्व नही, लेकिन नाटक में कार्य-व्यापार की व्याख्या के लिए यह बहुत उपयोगी है। एक कुशल निर्देशक पात्रो और माइक के अ तर को होशियारी से वदलते हुए नाट्य-व्यापार में वैविध्य ला सकता है और प्राय गति के उन सब प्रभावो (Effects) की उत्पत्ति कर सकता है जो रगमच पर सम्भव होते हैं। इसके अतिरिक्त वह श्रव्य-दृश्य में परिप्रेक्षण (Perspective) का प्रभाव भी पैदा कर सकता है।

३३. परिप्रेक्षण—क्योंकि श्रव्य में दिशा-ज्ञान के स्थान पर हमें अ तरज्ञान पर भरोसा करना पडता है इसलिए रेडियो-शैली में पर्स्पेक्टिव (Perspective) पर वहुत बल दिया जाता है। दूरी और निकटता का सवेद कानो की अपेक्षा हमें माइक्रोफोन द्वारा अधिक स्पष्ट और तीव्र होता है। इसका एक कारण तो यह है कि परिमाणात्मक परिवर्तन (Quantitative change) और गुणात्मक परिवर्तन (Qualitative change) का अ तर (Contrast), माइक से बहुत अधिक स्पष्ट व्यक्त होता है लेकिन सबसे वडा कारण यह है कि दृश्य की अनुपस्थितिमें हमारी कल्पना को देशान्तर की भावात्मक अनुभूति (Idealised Interpretation) करने का अवसर मिलता है।

"To the visual observer aural indications of space are secondary experiences, because his eye delineates the scene so well, that what he hears has no relative importance On the blind listener, however, the spatial characterisation of sound makes a forcible impression "

श्रव्य-नाट्य रंग-नाट्य की अपेक्षा अधिक सुविधा-सम्पन्न है। स्टेज पर पर्स्पेक्टिव (स्थूलता के प्रदर्शन) का प्रभाव अगर असम्भव नही तो कम से कम बहुत कठिन जरूर है। ऐसे दृश्यो की रचना जिसमें अ तर एक महत्त्वपूर्ण काम करता है स्टेज पर नही हो सकती। फिल्म कैमरा को Mobility अर्थात् गति की सुविधा प्राप्त है। इसलिए वहाँ विस्तृत और सुसबद्ध दृश्य (Composite scene) का निर्माण सम्भव है। माइक्रोफोन अपने स्थान से नही हिलता, लेकिन फिर भी उसे करीब-करीब गति की वही सुविधाएँ प्राप्त है जो फिल्म कैमरा को है। एक दृश्य में अनेक ध्वनियो का समन्वय इस प्रकार किया जा सकता है कि श्रोता पर्स्पेक्टिव का अनुभव करने लगे। उदाहरणार्थ, एक दृश्य में हम सुनते है नदी का कलकल, उसी दूरी पर दो मित्रो की गपशप और बहुत दूर मछुओ का गीत। इस प्रकार जो ध्वनि सरचना बनेगी उसमें परिप्रेक्षण का तत्त्व होगा। जो चित्र इस प्रकार हमारी कल्पना में उपस्थित होगा वह शून्य में से उभरता दिखाई न देगा बल्कि अपने प्राकृतिक परिपार्श्व से सम्बद्ध होगा। दूर से आती हुई ध्वनियाँ केन्द्रीय वस्तु को और सन्निकट बना देंगी। वह चित्र जिसमें तीसरे परिमाण (स्थूलता या घनता) का अभाव है, अपूर्ण है, क्योंकि जब तक हमे लम्बाई-चौडाई के अतिरिक्त वस्तुओ की गहराई का अनुभव न हो चित्र में सच्चाई नही आ सकती। चित्रकार, प्रकाश और छाया के उचित सविधान से हमें तीसरे परिमाण की अनुभूति कराता है। श्रव्य-नाट्यकार विभिन्न ध्वनियो के अ तर से ध्वनिचित्र में तीसरे परिमाण का प्रभाव पैदा करता है। जैसे एक दृश्य को लीजिए ··
कमरे के अग्रभाग में विपिन और शर्मा ताश खेल रहे है। दूर कोने में रमा अपने पति के मित्र अनिल से कुछ बातें कर रही है। शायद ताश खेलने वालो के विषय में कुछ कह रही है। इस दृश्य को रेडियो-नाट्यकार इस प्रकार लिखेगा—

विपिन—लीजिए हजूर।

शर्मा—अरे! आपने सत्ती फैकी ·· तो ···· यह लीजिये ब्राह्मण भी अपनी चाल चलता है।

विपिन—बस, यही कुछ है आपके पास, लीजिये। (हल्का अवकाश)

शर्मा—यार, बहुत देर हो गई शायद रमा मुझे कोस रही है।

विपिन—अब बहानो पर उतर आये तुम रमा की चिन्ता मत करो ··लो, मैंने अपना पत्ता फेंक दिया (स्वर धीरे-धीरे विलीन हो रहा है)।

रमा—(स्वर धीरे-धीरे उभरता है) मैं तग आ गई हूँ अनिल ··यह इसी तरह सारा-सारा दिन ताश मे मग्न रहते है। न घर की चिन्ता है न व्यापार की खबर···आखिर ऐसा कब तक चलेगा

अनिल—आहिस्ता बोलो भाभी, वह सुन रहे है।

विपिन—(दूर से आता स्वर) वह मारा शर्मा जी। आप तो विपिन को नीन गेम से हराने की बात कर रहे थे।

रमा—यही नही अनिल, इस मुई ब्रिज ने हजारो रुपये खा लिये। इन्हे अब तक चैन नही पडा।

× × ×

इसी प्रकार वस्तु-वर्णन के लिये नाटककार को माइक वही अवसर देता है जो कैमरा फिल्म-निर्माता को ध्वन्यात्मक अ तर की सहायता से एक नाट्यस्थिति में परिप्रेक्षण और दैशिक परिमाण का वही प्रभाव पैदा किया जा सकता है, जो एक फिल्म-दृश्य मे 'Shooting Angle' से प्राप्त होता है। ध्वन्यात्मक परिप्रेक्षण रेडियो-नाटक के लिए महत्त्वपूर्ण क्यो है ? यदि कुछ ध्वनियाँ निकट से आती प्रतीत हो और उसी समय कुछ ध्वनियाँ दूर से आती सुनाई दें, तो श्रोता को एक निरीक्षण स्थान (Observation-post) प्राप्त हो जाता है, जिसका केन्द्र प्रस्तुत दृश्य के मध्य में है और जहाँ से वह स्थिति विशेष का अनुभव आत्मिक (Subjective) रूप से कर सकता है। रेडियो-नाट्य में माइक को गति के उतने ही अवसर प्राप्त है जितने फिल्म-कैमरा को, जो कभी दृश्य के एक भाग को और कभी दूसरे भाग को आलोकित करता है। माइक के चमत्कार का प्रमाण एक उदाहरण में देखिये। हम यह दिखाना चाहते हैं कि एक प्रभावशाली वक्ता जनता को सम्बोधित करते हुए उन्हे अत्याचारी शासन के विरुद्ध सघर्ष करने को प्रेरित कर रहा है। जनता पहले शकाग्रस्त है। फिर वह क्रमश वक्ता की चिन्ताधारा के साथ बह निकलती है। इस प्रक्रिया का नाटकीय प्रस्तुतीकरण हम इस प्रकार करेंगे। दृश्य के प्राथमिक भाग में श्रोता वक्ता को सुनेंगे, फिर वक्ता की वाणी को फेड अन्डर (Fade under) करके उसके ऊपर जनता के स्वर सुनाई देने लगेंगे। कुछ समय के पश्चात् जनता का स्वर मद्धम पडता सुनाई देगा और वक्ता का स्वर स्पष्टतर होता जायगा। कुछ समय के पश्चात् हम इसी क्रम को फिर दुहराएँगे। इस प्रकार वक्ता के वक्तव्य के अतिरिक्त श्रोता यह भी जान सकेंगे कि इसका जनता पर क्या प्रभाव हो रहा है, उनके मन में कैसे भाव उद्बुद्ध हो रहे हैं, उनके मस्तिष्क में किस प्रकार की प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न हो रही है और उनके व्यवहार में किस प्रकार परिवर्तन हो रहा है। ध्वनि के अंतर की सहायता से श्रव्य-कलाकार विविध प्रकार के प्रभावो की रचना कर सकता है। और श्रोता अपना दृष्टिकोण बदल-बदलकर स्थिति का अनेक दृष्टिकोणो से अवलोकन कर सकता है। रगमच की तरह श्रोता को पात्रो से कुछ दूरी पर जमा नही दिया जाता, बल्कि उसे अभिनेताओ के बीच घूमने-फिरने का विशेषाधिकार प्राप्त होता है, जैसा अलिफ-लैला के राजकुमार को प्राप्त था।

पर्स्पेक्टिव की चर्चा करते हुए एक और नूतन और अद्भुत प्रयोग पर प्रकाश डालना रोचक और लाभप्रद होगा। सिनेमा में विस्तृत दृश्यो (Panoramic scene) को प्रस्तुत करने के लिये कैमरामैन लांग शाट (Long shot) का प्रयोग करता है। फिर एक क्लोज़अप् लेकर दृश्य के आकर्षण-केन्द्र की ओर हमारा ध्यान खीचता है। लांग शाट विस्तृति की सूचना देने के अतिरिक्त प्रेक्षक की उत्सुकता को जगाता है और क्लोज़अप् उसकी पूर्ति करते हुए विवरण की सूचना देता है। माइक द्वारा श्रव्य-कलाकार इसी प्रकार के प्रयोग कर सकता है। एक उदाहरण को देखिये ।

स्वर एक—उधर देखो।

स्वर दो—किधर ?

स्वर एक—उधर।

स्वर दो—मुझे तो कुछ दिखाई नही देता।

स्वर एक—लो, मेरी दूरबीन से देखो। देखा, पहाड की तलहटी के साथ-साथ एक काफिला चला जा रहा है (धीरे-धीरे फेड आउट), खानाबदोश लगते हैं। (धीरे-धीरे घोडो-खच्चरो के हिनहिनाने और घटियों आदि का सम्मिलित स्वर उभरता है। कुछ क्षणो के पश्चात् क्रमश विलीन होने लगता है। इसी के साथ स्वर १ और २ की बात पुन सुनाई देने लगती है।)

स्वर एक—(चौंककर) मेरा विचार है ये खानावदोश नही, डाकू हैं·· हमें सीमा की चौकी को सूचित कर देना चाहियें। (यह स्वर विलीन होता है और भारी भरकम कदमो की आवाज़ उभरती हैं)

सैनिक—शत्रु फिर सीमा पार कर आया है, अभी-अभी समाचार मिला है···जी, सैनिक भेज दिये गये हैं।

इस उदाहरण मे ध्वनि के अ तर में उचित परिवर्तन लाने से हम स्थान-परिवर्तन का प्रभाव तो व्यक्त कर ही सके श्रोता की कल्पना लेखक के आदेशानुसार एक स्थान से दूसरे स्थान तक भी पहुँच पाई। और यह परिवर्तन इतनी सुगमता और सफलता से हुए कि उनसे कथा के प्रवाह में कोई बाधा नही आई ।

माइक्रोफोन की गति की चर्चा से कही ऐसी धारणा न बन जाय कि माइक स्वय गति करता है। सामान्यत और साधारणत माइक स्थायी रहता है। प्राय पात्र भी अपनी-अपनी जगह से बहुत कम हिलते हैं। अ तर-परिवर्तन का प्रभाव स्टूडियो में गुंजायमान ध्वनि-भार को सकुचित और सीमित करने से, या उसमें वृद्धि करने से प्राप्त किया जाता है। रेडियो परिभाषावली में इस प्रक्रिया को फेड आउट (स्वर-विलयन) और फेड इन (स्वरोदय) कहते है। साधारण स्टूडियो में दो माइक होते हैं। एक निरूपक या मुख्य पात्रो के लिए, और अन्य पात्रो के लिए। ये माइक एक

मिश्रक (Mixer) से सम्बद्ध होते हैं जिसके द्वारा निर्देशक इनमें से प्रसारित होने वाली ध्वनि के विस्तार और स्वरभार को घटा-बढ़ा सकता है। हर माइक का ध्वनि-विस्तार एक Fader नियन्त्रित करता है। फेडर के एक सिरे पर ध्वनि अति क्षीण सुनाई देती है। दूसरे सिरे पर स्पष्ट और पूरे बल और विस्तार से। आवश्यकतानुसार फेडर को पूरा या कम खोलकर माइक का स्वर-सन्तुलन निर्धारित किया जाता है। स्टूडियो-माइक के अतिरिक्त इस Mixer पर और भी कई फेडर होते हैं जिनमें से हरएक का सम्बन्ध अलग-अलग स्टूडियो से होता है। उदाहरणार्थ, ध्वनि प्रभाव स्टूडियो से, या संगीत स्टूडियो से। नाटक के प्रस्तुतीकरण के लिए जो स्टूडियो प्रयुक्त होते हैं उनका नक्शा इस प्रकार होगा ।
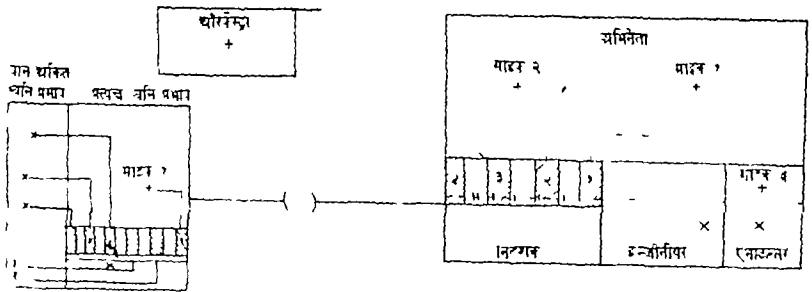
३४ दैशिक प्रतिध्वनि—ध्वनि का रूप उसके स्रोत पर निर्भर है पर उसका स्वभाव मूल रूप से वह देश (Space) निर्धारित करता है जिसमें वह प्रतिध्वनित होकर हमें अपने अस्तित्व का ऐन्द्रिय आभास देती है। ध्वनि के सुनाई देते ही हमारे मन पर दृश्य की दैशिक विशेषताओं का चित्र अंकित हो जाता है। यदि आवाज खूब गूँज रही है तो स्पष्ट है कि वह एक बहुत ऊँचे कमरे में से आ रही है। वह शायद मन्दिर, गिर्जा या पब्लिक हॉल या इसी प्रकार का विशाल भवन है। और इसीलिए आवाज़ दीवारों से टकराकर प्रतिध्वनित हो रही है। स्पेस (दिक्) का अनुभव हमें ध्वनियों के अन्तर से भी हो जाता है। अगर सब की सब ध्वनियाँ एक दूसरे के सन्निकट और संश्लिष्ट हैं तो हमें सीमित दिक् (Space) का अनुभव होगा। इसके विपरीत अगर ध्वनियों का पार्थक्य स्पष्ट किया जाय तो श्रोता एक विस्तृत दिक् का चित्र अपनी कल्पना में बनायेंगे। जैसे माइक के निकट प्रेमियों की बातचीत और दूर से आता हुआ चरवाहे का गीत और अगर कहीं इस गति की ध्वनि को गूँज दे दी जाय तो वह ध्वनि-संयोजना पर्वत-प्रदेश का शब्द-चित्र प्रस्तुत करेगी। साधारणतः ये दोनों तत्त्व मिलकर काम करते हैं। लेकिन अगर इन्हें सरूप न रखकर प्रतिरूप उपस्थित किया जाय तो इस विरोध (Contrast) से रोचक प्रभाव प्राप्त हो सकते हैं।

हम एक दृश्य मे एक से अधिक दिक्‌ो (Spaces) का अनुभव भी कर सकते हैं। एक अभिनेता ऐसे माइक पर है जो ध्वनि को यथार्थ रूप में उपस्थित करता है, लेकिन दूसरा ऐसे माइक पर है जो ध्वनि को विकृत करके उपस्थित करता है। पहले माइक पर नायक अपनी व्याकुलता और उद्‌भ्रान्ति को व्यक्त कर रहा है, दूसरे से उसका अन्तर्मन ग्लानि से भर-भरकर उसे कोस रहा है। अब वाणी एक है, लेकिन विभिन्न माइक्रोफोनो द्वारा दोनो के ध्वनि-प्रभाव में अ तर है।

एक और उदाहरण लीजिये विष्णु प्रभाकर के नाट्य रिपोर्ताज 'शोण के किनारे' में एक दृश्य है, जिसमें मुख्य पात्र आकाश पर शुक्र और वृहस्पति के तर्क-वितर्क को सुनता है ''कल्पना में। इस दृश्य को मैंने इस प्रकार प्रस्तुत किया था—नायक माइक के निकट था और स्टूडियो के एक कोने में शुक्र और वृहस्पति एक दूसरे की ओर पीठ किये स्टूडियो की दीवारो से वार्ता कर रहे थे, इस प्रकार उनकी ध्वनि और नायक की ध्वनि मे स्पष्ट अ तर था, एक ध्वनि स्थूल (Concrete) थी और परिसीमित स्पेस की प्रतीति देती थी। दूसरी सूक्ष्म, वायवी (Abstract and Vague) और सीमाहीन स्पेस में सुनाई दे रही थी। निश्शब्द (Deadened) स्पेस और अनुगुजित (Resonant) स्पेस मे मूल अ तर यह है कि पहली अवस्था में हमे ध्वनि उसी दिक् मे सुनाई देती है, जिसमे कि हम खुद बैठे हुए है। दूसरी अवस्था में हमें एक मानवोपरि दिक् (Foreign space) का आभास होता है। पहली अवस्था में ध्वनि अपनी सब विशेषताएँ अपने वातावरण से ग्रहण करती है। दूसरी मे उसमे एक अदृश्य पर नवीन और अद्‌भुत दिक् की विशेषताओ का समावेश हो जाता है। वास्तव में दैशिक प्रतिध्वनि का उचित प्रयोग रेडियो-नाट्य के लिए उतना आवश्यक है जितना रग-नाट्य के लिए परिपार्श्व (Decor) और आलोक संयोजना (Lighting) का। जैसे कलापूर्ण प्रकाश-व्यवस्था नाटक की भाववस्तु को प्रकाशित करती है, वैसे दैशिक प्रतिध्वनि का सुप्रयोग दृश्य के गर्भित अर्थ (Inner meaning) की अभिव्यक्ति करता है क्योंकि "The spatial resonance characteristics the relationship between the persons made audible through sound and his surroundings"

रगमंच पर अभिनेता के आकार और उसकी महत्ता में सदा एक प्रकार की असगति-सी रहती है। रेडियो मे हमें इस प्रकार की किसी कठिनाई का सामना नही करना पड़ता, क्योंकि अगर हम चाहें तो केवल एक शब्द सारी स्पेस पर छा सकता है। इसी से रेडियो-निर्देशक व्यक्तिगत महत्ता के अनुसार ध्वनियो की महत्ता निर्धारित करता है।

दैशिक प्रतिध्वनि द्वारा उद्‌बुद्ध प्रभाव श्रोता के मानस पर तात्कालिक और

गहरा प्रभाव डाल सकते है इसमे सन्देह नही, लेकिन इसमे भी सन्देह नही कि एक प्रभाव की सफलता, रजकता और रोचकता उसके कलात्मक और सुरुचिपूर्ण प्रयोग पर निर्भर है। दैशिक प्रतिध्वनि का प्रयोग केवल उस समय किया जाना चाहिये जब उसकी वास्तविक आवश्यकता हो, जब उसकी अनुपस्थिति में नाट्य-वस्तु का भाव या अर्थपूर्ण रूप से व्यक्त न हो सके, और उसकी उपस्थिति से दृश्य की विशेषताओ पर प्रकाश पडे, और उनकी भावात्मक व्याख्या हो।

अध्याय दूसरा

श्रव्यकला की विशेषताएँ और परिसीमाएँ

३५. जिन सिद्धान्तो की ऊपर चर्चा की गई है उनसे शायद यह प्रतीत होगा कि श्रव्यकला का क्षेत्र बहुत ही सीमित और सकुचित है, और वह अन्य प्रतिरूपात्मक कलाओ की अपेक्षा इन्द्रियग्राह्यता के आधार पर अधिक अपूर्ण है, क्योकि उस मे सब से अधिक महत्त्वपूर्ण इन्द्रिय, चक्षुरेन्द्रिय का उपयोग नही होता। लेकिन वास्तव में श्रव्य-चित्र को अपूर्ण नही कहा जा सकता, क्योकि वह प्रतिरूपात्मक (Representational) ललित कला के सब उद्देश्यो को पूरा करता है। उसमें जीवन का सच्चा, मर्मस्पर्शी और प्रभावोत्पादक चित्र उपस्थित हो सकता है। और यह चित्र अपनी सजीवता, गत्यात्मकता, रमणीयता और रजकता के कारण उसी प्रकार श्रोता के हृदय मे रसानुभूति जगा सकता है जिस प्रकार अन्य कलाकृतियाँ। बल्कि अनुभव से पता चलता है कि श्रवण पर अवलम्बित, श्रोता की कल्पना से पूरित और शृगारित होने के कारण, उसका भावोद्दीपन और रसोत्पत्ति क्षेत्र बहुत विस्तृत है। श्रव्यकला का वस्तु-वर्णन भी दूसरी कलाओ से कम पूर्ण नही। हाँ, अतर है तो केवल शैली और रचनातत्र में। इस शैली को अपना लेने पर लेखक इस परिसीमित क्षेत्र में भी अधिक से अधिक प्रभावशाली तथा रुचिकर प्रयोग कर सकता है। उसी प्रकार जिस प्रकार एक कुशल चित्रकार बहुत कम रगो से भी अनेक अद्भुत प्रभाव पैदा कर सकता है।

श्रव्य-शैली का सार इसमे है कि श्रव्यकृति में एक वृत्त या घटना का साराश (Essence) अभिव्यक्त किया जाय और यह अभिव्यक्ति अर्थ और भाव का ऐसा ऐन्द्रिय ऐक्य प्रस्तुत करती हो, जिसमें पूर्णता हो, हृदयग्राह्यता हो। आर्नहाईम कहता है "The wireless must develop a mastery of the limitations of the aural." अत श्रव्यकलाकार की सफलता और कार्यकुशलता इसमें है कि इन परिसीमाओ और परिमितियो के होते हुए भी वह केवल श्रव्य के साधनो द्वारा अधिक से अधिक परिपूर्ण प्रभाव की सृष्टि कर सके। उसका उद्देश्य यह नहीं है कि वह ऐसे साधन प्रस्तुत करे जिनकी सहायता से श्रोता वास्तविक ससार का पुनर्निर्माण कर सके। इसके विपरीत उसका उद्देश्य यह होना चाहिए कि ध्वन्यात्मक

सामग्री के आधार पर एक ऐसे ससार का निर्माण, जिसमें श्रोता रम जाय उसका मन आंखो पर पट्टी बांधे हुए व्यक्ति की तरह वाह्य ससार के लिए व्याकुल न हो वल्कि कल्पनात्मक सवेदना द्वारा निर्मित समार से ही तुष्टि और आनन्द प्राप्त कर सके।

३६ **अभिव्यजनात्मक शैली**—परिणामत, नाटक में मन की अन्तर्स्थिति का प्रकाशन वर्णन द्वारा नही नाटकीय अभिव्यक्ति द्वारा होना चाहिए। और श्रोता की तुष्टि तभी होगी जब वह नाटक को देखते या सुनते ही अनुभव करे कि उसके मन में नाटक के चरित्रो के प्रति उत्सुकता और सहानुभूति उद्भूत हो रही है। वह धीरे-धीरे अनुभूति-वेग में इतना खो जाएगा कि एक आभास मात्र में नाटक का अर्थ उसकी समझ में आ जाएगा। प्रसद्धि इटैलियन रसवादी, क्रोचे, हमें यह वतलाता है कि यह प्रक्रिया दर्शक और दृश्य के तादात्म्य से उद्भूत होती है। नाटककार की सफलता इसमें निहित है कि वह भावोद्दीपन इस प्रकार करे कि श्रोता को इस प्रयास का बोध न हो, नही तो उसके आनन्दातिरेक मे अवरोध आ जायगा।

वर्षो के अनुभव के पश्चात् कलाविज्ञ इस परिणाम पर पहुँचे है कि कलात्मक वर्णन और अभिव्यक्ति में अति सरल प्रसाधन अधिक सफल सिद्ध होते हैं। हमारी शैली जितनी उलझी हुई होगी, प्रभाव उसी परिमाण से क्षीण होता चला जायगा। कविता में भी अति सरल उपमाएँ और रूपक हमेशा अधिक हृदय-प्रिय होते हैं। लोक-काव्य की अकृत्रिम तथा सरल उपमाएँ और प्रतीक कितने प्रभाव सम्पन्न होते हैं। सगीत में भी सीधी-सादी धुनें उलझी हुई धुनो से कही अधिक हृदय-स्पर्शी होती है और सुनने वाले के मानस में अधिक स्वाभाविक और तात्कालिक भाव जगाती है। इसी कला-सिद्धान्त के आधार पर आधुनिक-काल में अभिव्यजनात्मक और सकेतात्मक शैली का विकास हुआ है।

रग-नाट्य-शैली के इतिहास का अनुशीलन हमें बताएगा कि नाटक के विकास के प्रारम्भिक-काल में रगमच का सविधान इस प्रकार होता था कि दर्शक का आकर्षण केवल नाटक की महत्त्वपूर्ण वस्तु पर ही केन्द्रित रहे, और शेष वातावरण और परिपार्श्व को सरल सकेतो द्वारा प्रकाशित किया जाय। पुरातन यूनानी नाटक की रगभूषा वहुत ही सरल हुआ करती थी। उस शैली द्वारा कितने प्रभावशाली और गभीर विषयो का नाटकीयकरण हुआ यह इजक्लीज, सोफोक्लीज और यूरिपिडीज के नाटको के अध्ययन से स्पष्ट रूप से प्रमाणित है। जितनी भाव की प्रगाढता उस व्यजना—रूप में थी वह अट्ठारहवी और उन्नीसवीं शताब्दी के उस प्रकृतिवादी Naturalistic नाट्य-शैली मे नही मिलती, जिसका विकास नाट्य वस्तु को वास्तव के अधिक से अधिक सन्निकट लाने की दिशा में हुआ। इस प्रक्रिया में जहाँ रगमच के प्रसाधनो का विकास हुआ वहाँ नाटको के विशुद्ध प्रभावों में दुर्बलता आती गई। यहाँ

तक कि नाटक और फिल्म में कोई अंतर न रह गया। रगमच पर हर उस वस्तु के उपस्थानकी व्यवस्था की जाने लगी, जिसका नाटक मे सकेत होता था। अभिनेताओ की वाणी से अधिक, उनकी वेषभूषा और परिपार्श्व की ओर ध्यान दिया जाने लगा। इस प्रकार एक कृत्रिम अनुकरणात्मक नाट्य-शैलीका आविर्भाव हुआ। इसे आलोचक फोटोग्राफिक यथार्थवाद (Photographic Realism) कहते है। इस शैली का विकास अरस्तु के प्रकृति अनुकरण सिद्धान्त को उपहास्य चरम सीमा तक ले जानेका परिणाम है। चित्रकला में भी इसी प्रवृत्ति का प्रादुर्भाव हुआ। ज्यो-ज्यो चित्रकला में आकृति की महत्ता वढती गई वैसे-वैसे कलाकृति मे मौलिकता कम होती गई। क्योकि कलाकार का प्रथम उद्देश्य जीवन की अनुकृति प्रस्तुत करना रह गया था, इसलिए रचना-क्रिया में स्वच्छन्द कल्पना का कोई स्थान न था। इसमे सन्देह नही कि इस अनुकरणात्मक शैली में भी प्रसिद्ध और प्रतिभावान कलाकारो ने वहुत सुन्दर और उत्कृष्ट रचनाओ का निर्माण किया है, लेकिन सामान्य रूप मे यह प्रवृत्ति चित्रकला के विकास में अवरोधक ही रही है। यही कारण हैकि इस अनुकरणात्मक प्रवृत्ति के विरुद्ध एक क्रान्तिकारी प्रवृत्ति, प्रभाववाद का उदय हुआ, जिसका ध्येय कलाकार की कल्पना को आकृति के वन्धनो से मुक्त कराना था। क्रान्तिकारी कलाकार अपनी आँख से अधिक अपनी कल्पना का प्रयोग करता है, और इस प्रकार जो चित्र वह निर्मित करता है, उसमें सरल सौन्दर्य, स्वप्न का-सा एक विचित्र माधुर्य और स्मृतिसवेद्य अनुभूतियो का रस होता है। प्रभाववादी चित्रकार का उद्देश्य वस्तु और वास्तव की आकृति की अनुकृति प्रस्तुत करना नहीं होता, कलाकार के मानस पर प्रतिविम्वित उसके प्रभाव की छाया को मूर्तिमान करना होता है।

प्रभाववादी शैलीके मूल सत्य को रोमाचवाद, अभिव्यजनावाद, लक्षणावाद और प्रतीकवाद ने अपनाया। इन सव कला-शैलियो में एक प्रवृत्ति सामान्यत पायी जाती है। इनमें विवरण की वारीकियो या क्रूरताओ से अधिक समूचे प्रभाव पर वल दिया जाता है। और इस समूचे प्रभाव को अनुभूतियो के सरलीकरण द्वारा प्रस्तुत किया होता है। रेडियो-नाट्य-शैली का विकास इसी कला-प्रवृत्ति का उत्कर्ष है, क्योकि यह शैली भी प्रधान रूप से और मूलत अभिव्यजनात्मक है।

वास्तव में रेडियो-नाट्य का विकास भी इसी क्रान्ति से प्रभावित हुआ। उसके इतिहास में भी वही क्रम, वही मजिलें मिलती है। प्रारम्भिक काल के रेडियो-नाटक वस्तुत अनुकरणात्मक होते थे। रग-नाट्य के परिपार्श्व के वदले ध्वनि-प्रभाव भरकर लेखक समझता था कि रेडियो-नाटक तैयार हो गया। छोटी से छोटी वात को ध्वनि द्वारा व्यक्त करना आवश्यक वल्कि अनिवार्य समझा जाता था। उद्देश्य यह था कि रेडियो-नाटक को जीवन के इतना निकट लाया जाय कि वह एक कल्पित कृति न रहकर

सकता है कि रेडियो-नाट्य, दृश्य-नाट्य की अपेक्षा नाटक के प्रधान तत्त्व गति पर अधिक आधारित और अधिक अनुकूल है, और उसमें प्रभाव की अधिक प्रगाढता सम्भव है।

३७. रगनाटक और ध्वनिनाटक का विभेद—नाटक घटनाओ का एक क्रम है और घटनाओ की उत्पत्ति देश और काल के तारतम्य या विरोध से होती है। घटना में क्रिया का तत्त्व ही सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। वास्तव मे क्रिया ही है जो घटना को घटना का नाम देती है। घटना वही है जिसमे कुछ होता है। घटना क्रिया-जन्य है। और प्रत्येक नाटकीय घटना अपने मे से और घटनाएँ उत्पन्न करने का गुण रखती है। नाटक में गतिहीन का बहुत कम महत्त्व है। गतिहीन केवल उस समय तक नाटक में रहने दिया जायगा जब तक वह किसी न किसी रूप से क्रिया के लिये सहायक है, उसकी व्याख्या के रूप में या उसके प्रभाव के पोषक के रूप मे।

रगमच पर गौण और द्वैतीयिक या अप्रधान पात्र भी उसी प्रकार विराजमान रहते हैं, जिस प्रकार कि प्रमुख पात्र। अकसर देखा गया है कि महत्त्वपूर्ण दृश्यो में जहाँ बहुत से पात्र एकत्रित होजाते है और नाटक की क्रियाका सचालन केवल महत्त्व-पूर्ण पात्र के हाथो में होता तो दूसरे पात्र बिलकुल मिट्टी के माधो बने इधर-उधर, या अक्सर फर्श की ओर देखते रहते हैं। ऐसा लगता है जैसे चाभी खत्म हो जाते ही ये स्प्रिग से चलने वाले खिलौने गतिहीन हो गये हो। कला की दृष्टि से यह दोष है और इसका प्रभाव बहुत हास्यास्पद होता है। इस विषय में श्रव्य-नाट्य की एक विशेष श्रेष्ठता है, जो वस्तुत उसकी सीमाओ से ही जनित है। रेडियो पर हमे केवल उस पात्र की उपस्थिति का ज्ञान होता है जो शब्दायमान है। इस तरह श्रोता सवादो के साथ-साथ अपना दृष्टिकोण बदलता रहता है। श्रोता का आकर्षण-केन्द्र केवल वही पात्र रहेंगे जो क्रिया-शील हैं। बाकी सब पात्र विस्मृति के धुँधलके में कहीं छिपे रहेंगे। समय आने पर वह अपना वाक्य बोलेंगे और उसी मौन के विस्मृति-पट में छिप जायँगे। और यह क्रिया इतनी चुपचाप हो जायगी कि श्रोता को शायद इसका ध्यान न आयेगा। उदाहरणार्थ जब हम नायिका के सकट से प्रभावित हो रहे होंगे तो हमारा ध्यान कान खुजलाने वाले सेवक की उपस्थिति और क्रिया से नहीं बँटेगा। हमारा ध्यान केवल उसी पात्र की क्रिया पर केन्द्रित रहेगा, जिसका सार्थक अस्तित्त्व है। इस प्रकार दृश्य तत्त्व का अभाव हमारे लिए एक परिमिति न होकर एक वास्तविक लाभ बन जायगा और प्रभाव में ऐक्य और गहराई लाने में सहायक होगा।

यहाँ एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाया जा सकता है। रगमच पर एक से अधिक पात्रो की उपस्थिति से जो चित्र बनता है वह जीवन से अधिक निकट होने के नाते

अधिक सच्चा होता है और रेडियो-नाट्य में वास्तव का वस्तु-वर्णन न होकर वास्तव का सरलीकरण और धनीकरण-सा हो जाता है। इस विषय पर आर्नहाईम का कथन विचार प्रवर्तक है। वह लिखता है।

"The radical restriction to the essential does not result from a stylistic simplification, nor is it a departure from reality the radio-play gives an effortless excerpt of a situation without any feeling of a surgical operation and without any effect of incompleteness and unreality (and) there is no contradiction between the approximation to nature and the unnatural emptiness of the scene of action while on the stage more naturalistic the plot, music and language, the; more disturbing was the effect of the lack of decor."

परिणामत सरलीकृत परिपार्श्व से रेडियो-नाटककार का कृति-क्षेत्र वास्तव में सीमित और संकुचित नही होता, वल्कि इस परिमित से उसे चरित्र विशेष के अधिक आवश्यक पहलुओ को प्रकाशित करने का अवसर मिलता है। श्रव्यचित्र में वैसा वैविध्य न हो जैसा कि रगपट पर होता है, किन्तु प्रभाव की प्रगाढता की दृष्टि से उसके चित्र का मूल्य अधिक है।

३८. कुछ विशेष प्रयोग और सम्भावनाएँ—श्रव्यकलाकार ने अपनी सीमाओ को स्वीकार करते हुए भी भावाभिव्यक्ति के क्षेत्र को क्रमश विस्तृत करने का प्रयत्न किया है। इस खड में हम कुछ ऐसे विशेष प्रयोगों का उल्लेख और मूल्यांकन करेंगे जो श्रव्यकला की मूलभूत परिसीमाओ को सामने रखते हुए प्रसिद्ध कलाकारों ने प्रयुक्त किए हैं, और जिनके परिमाणो के आधार पर अनेक नये प्रयोगो की सम्भावना है।

इस समय नाटक के क्षेत्र में दो प्रवृत्तियाँ स्पष्ट रूप से प्रगति कर रही है। एक है, मनोवैज्ञानिक नाटक का विकास और दूसरी अलकृत अभिनय (Stylised Acting)। हम देख रहे हैं कि नाटककार का ध्यान वाह्य क्रियाओ से हटकर आन्तरिक क्रिया पर केन्द्रित होता जा रहा है। इसका अर्थ यह है कि आधुनिक नाटकों में ऐसे दृश्य अधिक निर्मित हो रहे हे जिनमें पुरानी परिभाषा के अनुसार कोई 'क्रिया' नही होती, वलिक केवल 'वातें' होती हे। उदाहरणार्थ, ऑगस्ट स्ट्रिडवर्ग, यूजीन ओनील आदि के अभिव्यजनावादी (Expressionistic) नाटक। और वर्नार्ड शॉ और ज्यापॉल सार्त्र के समस्यामूलक नाटक। और हिन्दी में भुवनेश्वरप्रसाद, नरेश-कुमार मेहता विष्णु और स्वय मेरे मनोवैज्ञानिक नाटक जिनका उद्देश्य प्राय केवल कहानी मात्र सुनाना न होकर जटिल चरित्रो का मनोविश्लेषण होना है। यह कहना कि इन नाटकों में गति या विकास का आभास नही होता, ग़लत है। इनमें गति होती

है, लेकिन कलाकार का उद्देश्य अपेक्षाकृत सीमित क्षेत्र में जीवन की एक घटना विशेष का अध्ययन और विमर्षण होता है। प्रभाव विविवता (Diversity) का नहीं, गहराई (Depth and Intensity) का होता है। नाटक की गति शारीरिक (Physical) नही बल्कि मानसिक (Psychical) होती है। और यहां भी नाटककार का प्रमुख उद्देश्य चरित्रों के बाह्य व्यवहार की व्याख्या के लिए अतंर्मन की ग्रथियो पर प्रकाश डालना होता है।

प्रतीक नाटक और गीतिनाट्य का विकास और उनकी क्रमश बढती हुई लोकप्रियता भी काव्यात्मकता प्रधान नाटक के विकास की ओर सकेत करती है। इन नाटको की कथावस्तु एक अति सरल घटनाक्रम तक सीमित होती है लेकिन शैलीगत विशेषताओ के आधार पर व्यक्ति और समष्टि की भावनाओ, सस्कारो और चिताधाराओ की अभिव्यक्ति की जाती है।

यह तो हुआ लेखन के विषय में। अभिनय और निर्देशन-शैली की दिशा में भी नई प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर हो रही हैं। साधारण नाटक और गीतिनाट्य की शैलियों के सामजस्य से एक नई और भावानुरूपिणी शैली का विकास किया जा रहा है, जिसमें गद्य को पद्य के आभूषणो से अलकृत करके प्रस्तुत किया जाता है। जैसा कि पहले विवरण सहित बताया गया था भाषा के विकास के साथ-साथ उसकी काव्यात्मकता क्षीण होती चली गई है। यथार्थवाद के प्रभाव के अतर्गत प्रकृतिवादी (Naturalistic) अभिनय को प्रोत्साहन मिला जिसका उद्देश्य नाटक की भाषा को आम बोलचाल की भाषा के अत्यधिक सन्निकट लाना रहा है। प्रतिक्रियास्वरूप अब सवादो को यथार्थवादी (Naturalistic) न रखकर प्रभाववादी और अभिव्यजनावादी बनाया जा रहा है। जैसा कि टी० एस० इलियट और क्रिस्टोफ़रा फई के नाटको मे किया गया है।

श्रव्यशैली इन प्रवृत्तियों के अनुरूप है। फिल्म की अपेक्षा रेडियो-नाट्य में शाब्दिकता Verbal) पर ही सारा बल दिया जाता है, और वाणी द्वारा ही नाटक की वस्तु को व्यक्त किया जाता है। अब हमें यह देखना है कि शाब्दिक कला होने के नाते रेडियो-नाट्य में कौने से पुराने साधनों को नवीन ढग से प्रयुक्त किया जाता है।

३६. स्वगत भाषण—प्रत्येक कला अपने वस्तु सत्य की भावात्मक अभिव्यक्ति के लिए समुचित शैली का आविष्कार करती है। चित्रकला रेखाओ और रगो के साम्य और समन्वय से, और नृत्यकला शरीर के विभिन्न अगों के गतिसाम्य और हावभाव द्वारा, साहित्यिक शब्द सयोजना द्वारा, अपने रचनात्मक उद्देश्य को पूर्ण करता है। अगर एक व्यक्ति के मन में सघर्ष उठ रहा हो तो उसकी अभिव्यक्ति शब्दों में होना प्राकृतिक और स्वाभाविक है। एकमुखी भाषण (Monologue) मन की

।धारण स्थिति की असाधारण भावनाओ को व्यस्त करने का साधारण और उचित धन है। आर्नहाईम के शब्दो में—

In the monologue, a spiritual condition is clothed in the represen-onal material of verbal art seen from the point of view of the world eality it is unnatural, but from that of art it is most natural .to tray not only the momentary psychological conditions of the racter, but all its characteristics

और जहाँ यह प्रसाधन आधुनिक रगनाट्य के निषेधो में से है, वहाँ इसकी लता रेडियो-नाट्य में दिन-प्रतिदिन बढती जा रही है। यह इसलिए है कि स्वगत-ाण पूर्णरूप से श्रव्यकला के कला-सिद्धान्तो के अनुरूप है। रगनाट्य में नाटक का दो विभिन्न विषयो, वाणी और मौखिक संकेत द्वारा अभिनीत होता है। अगर दोनो में साम्य और सामंजस्य है तो प्रभाव सुन्दर और आकर्षक होता है। लेकिन ोष स्थिति में, उदाहरणार्थ, दीर्घ स्वगत-भाषण की स्थिति में, शीघ्र ही शब्द र मौखिक सकेतो का पार्थक्य स्पष्ट होकर दर्शक को अखरने लगता है। वाणी तो ाशील है, उसमें अतर्निहित भाव भी विकासशील है, लेकिन अभिनेता का कृति-तत्र विन्यास कुछ ही क्षणो के पश्चात् जड, यान्त्रिक और इसी कारण निकृष्ट प्रतीत लगते है। इसलिए मनोवैज्ञानिक नाटको में रंगनाट्य-शैली अपने आपको कई ानो और परिमितियो में जकडा हुआ पाती है। इसके विपरीत श्रव्यनाट्य में, जहाँ अर्थ का बोध एक ऐक्य के रूप में होता है, इस पार्थक्य और इससे उद्भूत यास्पद प्रभावो का कोई भय नही रहता। अगर अभिनेता की वाणी अभिव्यजना ान्न है तो एक दीर्घ स्वगत-भाषण के समय अभिनेता के व्यवहार में जडवा ो नही आएगी, और न ही श्रोता का आकर्षण क्षीण होगा। रगमच पर अभिनेता वाक्चपल रोबो (यत्रमानव) से अधिक और कुछ न लगेगा।

साधारण स्वगत-भाषण से अधिक कठिन है उन सवादो का प्रस्तुतीकरण ामें विभक्त व्यक्तित्व के संघर्षो की अभिव्यक्ति अपेक्षित होती है। ऐसे नाटको अभिनय निश्चय ही कई नई-नई समस्याएँ उठाता है।

मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि साधारण मनुष्य के व्यक्तित्व के भी से अधिक पक्ष होते है, और असाधारण रूप से विकसित व्यक्तित्व के तो इतने ोधी पक्ष होते है कि एक का व्यवहार दूसरे के व्यवहार से सर्वथा भिन्न और ारीत होता है। रगमच पर इस मानसिक द्वन्द्व का प्रतिचित्रण इतना सफलता-क सम्भव नही होता जितना कि रेडियो-नाट्य में सम्भव है। आर्नहाईम एक चकोटि के जर्मन रेडियो-नाटक (Johann Heinrich Merck's Last ight) का उदाहरण देते हुए बताता है कि इस श्रव्य-कृति में प्रमुख पात्र 'मैर्क'

पाँच वक्ताओं में विभाजित किया गया है, जो मैर्क के मन के विभिन्न और अन्तर्विरोधी पक्षों और उसके जीवन के विभिन्न कालो के प्रतीक हैं। अभिनेताओ का विधान इस प्रकार किया गया है।

मैर्क—अनुताप की अवस्था में।

मैर्क—अविश्वास की अवस्था में।

मैर्क—युवावस्था में।

मैर्क—बाल्यावस्था में।

और मैफ़िस्टो मैर्क अर्थात् मैर्क का आसुरी रूप।

श्रव्य-नाट्य को छोडकर और कोई ऐसा नाट्य कलारूप (Dramatic art form) नही है जो मन के आन्तरिक सघर्ष को इतनी स्पष्टता और प्रभावोत्पादकता से व्यक्त कर सके। क्योकि श्रोता चरित्र के विभिन्न पक्षो का अनुबोध विभिन्न चरित्रों के रूप में नही करता, उसका आकर्षण और एकाग्रता क्षीण नही होने पाती। उसे यह समझने में कोई आपत्ति नहीं होती कि जब एक अभिनेता विभिन्न अवस्थाओ में दो प्रकार के स्वर प्रयुक्त करता है तो इसका अर्थ दो पात्र नही वल्कि दो विरोधी भावनाएँ हैं, जो मस्थित होते हुए भी एक दूसरे की विरोधी हैं।

बहुत से आधुनिक आलोचको का मत है कि गोइटे (Goethe) के नाटक 'Faust' के दो प्रमुख पात्र मैफिस्टो और फास्ट दो विभिन्न व्यक्ति नही, बल्कि एक ही व्यक्तित्व के दो विरोधी पक्ष है। इस द्विधा व्यक्तित्व (Duality) को स्पष्ट करने के लिए लेखक ने एक पात्र को दो स्वरूप, दो आकार, दो वाणियाँ दे दी है। आज जब कि श्रव्य-नाट्य शैली इतनी विकसित हो चुकी है हम यह सोच सकते हैं कि अगर Goethe अपने नाटक की रचना श्रव्य-नाटक के रूप में करता तो इसे दो पात्र न गढ़ने पडते और 'फास्ट' की मूल भावना और मूल विचार की अभिव्यक्ति अधिक स्वाभाविक और प्रभावजनक रूप में हो सकती।

अन्तर्मुखी या विभक्त व्यक्तित्व के ध्वनि-चित्रण के अतिरिक्त श्रव्य-नाट्य में स्वप्न को बडी सफलता से व्यक्त किया जा सकता है। और इस प्रकार हम व्यक्ति के चेतन, अर्धचेतन और अचेतन का विश्लेषण भी कर सकते हैं। आर्नहाईम एक और जर्मन नाटक का उदाहरण देता है जिसमें मन की अर्ध-सुषुप्त अवस्था का चित्र प्रस्तुत किया गया है। इस स्वप्नमाला (Dream Sequence) में सभी पात्र अपनी साधारण वाणी में सवाद बोलते है, लेकिन उन वाक्यों का न तो कोई घटना के देश से सम्बन्ध है और न ही दृश्य की क्रिया से। प्रत्येक स्वर एक दूसरे से स्वतन्त्र (Isolated) है। हमें कई आवाजें सुनाई पडती है किन्तु कोई एक दूसरे को सम्बोधित नही करता और न ही कोई किसी के प्रश्न का उत्तर

देता है। इस प्रकार वाणियो के भ्रान्त समन्वय (Confused combination) से एक बहुरगी (Kaleidoscopic) प्रभाव पैदा किया गया है। यह गड्डमड्ड, आकार-विहीन शब्द सकेत करते है कि स्वप्न की अवस्था में हमारे अर्धचेतन मानस के सागर में कैसी-कैसी परस्पर विरोधी विचार-तरगें उद्वेलित होती रहती है। इस दृश्य की एक और विशेषता भी थी। उसमें बाह्य जीवन प्रतिबिम्बित था लेकिन इस प्रकार कि जैसे हमारा प्रतिबिम्ब उन आइनो में होता है जो हमें आश्चर्यजनक रूप से विकृत करके दिखलाते है। यथार्थ के चित्र में हर विवरण को प्रस्तुत किया गया था। लेकिन उन विवरणो को अपने प्राकृतिक वातावरण से विच्छिन्न कर दिया गया था। इस प्रकार यथार्थ के प्रति सत्य होते हुए भी वह चित्र भयकर रूप से प्रभावास्पद था।

रेडियो-नाट्य में अरूप कल्पनाओ को रूपायत्त करना सम्भव है। जिस प्रकार दृश्य वस्तुओ को ध्वनि-प्रतिमाओ के रूप में व्यक्त किया जाता है, वैसे ही सूक्ष्म भावनाओ और विचारधाराओ को साधारणीकृत ध्वनि-प्रतीको द्वारा अभिव्यक्त किया जा सकता है। उदाहरणत एकता, सगठन और मैत्री को स्वर, लय और ताल के ऐक्य द्वारा अभिव्यक्त किया जा सकता है। एक जर्मन रेडियो-नाटक में इसी प्रकार का एक अद्भुत प्रयोग किया गया। नाटक का विषय था क्षय रोग, जिसका शिकार बहुत से गुणी और प्रसिद्ध सगीत रचयिता हो गये। इस कथावस्तु को रेडियो-नाटक में एक विचित्र और आकर्षक सगीतात्मक प्रतीक द्वारा प्रस्तुत किया गया। उन सगीतकारों की सुप्रसिद्ध रचनाओ के प्रतिनिधि अंशो के आधार पर निर्मित एक मोन्ताज द्वारा यह स्पष्ट किया गया कि सगीतकार एक ही घातक रोग के शिकार हुए।

४०. अरूप माध्यम और प्रतीक नाटक—यह अभिव्यंजना शैली प्रतीक-नाटको के प्रस्तुतीकरण के लिए बहुत ही उपयुक्त है। रंगमंच पर प्रतीक नाटक उतना प्रभावशाली नही हो सकता, क्योकि दर्शक के लिए अरूप प्रतीको को स्थूल रूप में स्वीकार करना सम्भव नही होता यद्यपि प्रत्येक पात्र को अलग-अलग वेशभूषा (Costume) में, या विशेष प्रकार के मुखौटे (Masks) पहने हुए दिखाया जाता है। उदाहरण के लिए कल्पना कीजिए कि हम सुमित्रानन्दन पन्त के प्रतीक-नाटक 'ज्योत्सना' को रंगमच पर प्रस्तुत करे तो उसका प्रभाव कैसा होगा। हम शीघ्र ही इस परिणाम पर पहुँचेंगे कि 'ज्योत्सना' के सभी पात्र अरूप प्रतीक हैं। रगमंच पर मेकअप इत्यादि से उन भूमिकाओं की वास्तविक सत्ता नष्ट होती जा रही है। इसके अतिरिक्त कुछ चरित्र तो ऐसे है जो मच पर आते ही हास्यास्पद लगने लगते है, उदाहरणार्थ, कीर, पिक, सुग्गा। और कुछ पात्र इतने सूक्ष्म है कि वह मंच पर लाये ही नहीं जा सकते, उदाहरणार्थ, प्राकृतिक शक्तियाँ (Elemental forces)

तारे और इन सबसे सूक्ष्म स्वय ज्योत्सना जो साकार होते ही अपना वास्तविक सौन्दर्य और लालित्य खो बैठती है। अब कल्पना कीजिए कि हम इसी कलाकृति को श्रव्य-नाट्य के रूप में प्रस्तुत करना चाहते हैं। हमें दोनो शैलियो के सैद्धान्तिक और कलात्मक अन्तर का ज्ञान हो जायेगा। और हम अनुभव करेंगे कि जो प्रतीक मच पर आते ही अपनी छायात्मक प्रतीकात्मकता खो बैठते थे, वे ध्वनि-प्रतिमाओ और स्वर-प्रतीको के रूप में अपनी समूची सुन्दरता और प्रभाव के साथ अभिव्यक्त हो रहे हैं। प्रत्येक भूमिका का अपना स्वर वैशिष्ट्य है। साकार पात्रो को घन (Solid) रूप में प्रस्तुत किया गया है, प्राकृतिक शक्तियाँ जो निराकार होने के साथ-साथ समस्त प्रकृति में व्याप्त हैं, अमूर्त और व्यापक रूप में प्रस्तुत कीगई हैं। झीगुर, पिक और सुग्गा जो मच पर अत्यन्त हास्यास्पद लगते थे श्रव्य में अच्छे लगते हैं। यह सब क्यो है ? इसलिए कि हमने अरूप को रूपायत्त प्रस्तुत करने का यत्न नही किया।

एक और उदाहरण पर विचार कीजिए। उदयशकर भट्ट के प्रतीक नाटक 'जवानी' में प्रमुख पात्र के अतिरिक्त व की सब पात्र उसके जीवन की विभिन्न अवस्थाओ के प्रतीक हैं, जिनकी कल्पना वह जीवन के वन्दीगृह मे करता है। नाटक के काल-प्रवाह के साथ-साथ प्रमुख पात्र के चरित्र में परिवर्तन आते चले जाते हैं। और इन्ही परिवर्तनो का प्रतिबिम्ब हमे विभिन्न पात्रो के आविर्भाव और लोप में मिलता है। मच पर इस प्रक्रिया को व्यक्त करना कठिन है। लेकिन वही कारण जो इस सुन्दर नाटक को रगमच के अभिनय के लिए अनुपयुक्त बनाता है, वही इसे प्रभाव-शाली रेडियो-रूपक बनाता है।

४१. अति-कल्पना—अति-कल्पना रूपक (Fantasy) का आधार साकार वस्तु न होकर विशुद्ध कल्पना होता है, जिसमें सब कुछ हो सकता है, सभी कुछ सम्भव और स्वाभाविक है, जहाँ तर्क का कोई स्थान नहीं, क्योकि तार्किक विवेचना अति-कल्पना के अद्भुत वैचित्र्य और स्वप्निल लालित्य को नष्ट कर देती है। इसका पूरा आनन्द ग्रहण करने के लिए हमें अपनी बुद्धि और अपने तर्क-वितर्की विवेक को भुला कर कल्पित वस्तुको वास्तव मानकर उस पर विश्वास करना अनिवार्य है। Fantasy देश और काल के बन्धनो से मुक्त है। उसकी सृष्टि कल्पना की भाँति विशाल और अद्भुत है। इसलिए लेखक उसमें विभिन्न नक्षत्रों के वासियो को आमन्त्रित कर सकता है। इस ससार में विपरीत वस्तुओ का एक साथ होना आश्चर्यजनक या असगत नही है। रगमच पर कल्पना उस स्वच्छन्दता से उडान नही कर सकती जैसी श्रव्य-नाट्य के क्षेत्र में सम्भव है। त्रिलोकचन्द कौसर के रेडियो-नाटक 'तिलिस्मेख्वाब' में एक मजदूर को एक अद्भुत सौन्दर्य-सम्पन्न भवन में दिखाया गया है, जहाँ चारो ओर बहुमूल्य रेशमी पर्दे सरसरा रहे हैं, जहाँ पवन विचित्र सुगन्ध से सुवासित है और

जहाँ ऐसे-ऐसे मुलायम सोफे और तख्त पड़े हुए है कि जिनका स्पर्श-मात्र हृदय में पुलकन भर देता है। अब इन दो विपरीत और विरोधी वस्तुओ का एक समय होना तर्कसगत नही। लेकिन कल्पना में यह सब कुछ सम्भव है। बल्कि हमको विपरीत वस्तुओ का एक साथ होना हमारे सामने अमीरी और गरीबी के विरोध को और भी स्पष्ट कर देता है। मजदूर का राजकुमारी से वार्तालाप करना भी तर्कसगत नही प्रतीत होता, लेकिन नाटक के वातावरण को देखते हुए यह विचित्र मिलन विश्वास-योग्य है। लेखक ने ससार की दो विपरीत और विरोधी सत्ताओं के सघर्ष को राज-कुमारी और मजदूर की वार्ता द्वारा अभिव्यक्त किया है। इस नाटक को यथार्थ परिपार्श्व (Realistic setting) पर प्रस्तुत करना निश्चय ही इसके प्रभाव को कम कर देगा।

विख्यात जर्मन नाटककार Hermann Kaiser के रेडियो-नाटक 'Abstrus' मे एक दृश्य है, जिसमें ग्लेशियर के दरार में दवकर मर जाने वाले पर्वतारोही का ससुर, उसका मित्र, उसकी पत्नी और प्रेयसी, विभिन्न स्थानो पर उससे मिलने आते है, और उससे लेखा चुकाते है। नाटककार ने विभिन्न स्थानो पर होने वाली घटनाओ को एक साथ लाकर एक अद्‌भुत प्रभाव पैदा किया है। इस प्रकार एक अरूप अर्थ रूपायत्त होकर प्रस्तुत हुआ है और आस्थाओ का सघर्ष विरोधी स्वरो के द्वन्द्व द्वारा व्यक्त किया गया है।

४२. सगीत प्रतीकों का प्रयोग—श्रव्य-नाट्य में संगीत का एक वहुत ही महत्त्व-पूर्ण स्थान है। सगीत की सहायता से कुशल कलाकारो ने वहुत से अद्‌भुत और रोमाचक प्रभावो की रचना की है। सगीत वाणी के प्रभाव की पुष्टि करता है, कभी स्वर की सगीति (Accord) से कभी विसगति (Discord) से। Gerhard mensel के रेडियो-नाटक 'John Lackland' में स्थूल और वाह्य व्यक्तित्व तो पात्र की वाणी द्वारा व्यक्त होना है, किन्तु व्यक्ति का आतरिक संघर्ष पार्श्व-सगीत द्वारा। एक स्थान पर प्रमुख पात्र ईश्वरनिन्दा कर रहा है। जैसे-जैसे अविश्वासी का स्वर उभरता है वैसे-वैसे पृष्ठभूमि के सगीत का स्वभाव रुष्ट और भीषण होता चला जाता है। ईश्वरनिन्दक का स्वर और उभरता है, और कुछ समय के लिए वह सगीत को अपनी वाणी की भीषणता से दवा लेता है। सगीत फिर धीरे-धीरे उभरता है, और अन्तत अविश्वासीकी वाणी को डुबो देता है। इस दृश्य में कोई दैशिक (Spatial) घटना वर्णित नही हुई, वल्कि मानसिक और आन्तरिक घटनाओ को संगीत-सवेतो द्वारा अभिव्यक्त किया गया है। इस दृश्य का उद्देश्य तर्कशील वुद्धि और आस्था के सघर्ष का सकेतात्मक भाव-चित्रण है। वाणी अहकारी वुद्धि का प्रतीक है और सगीत आस्था का, जो अविश्वासका विरोध करती है। कुछ क्षणो के लिये

है, लेकिन अन्तिम सघर्ष में अविश्वास का नाश कर देती है। सघर्ष के अन्त होते ही सगीत का स्वभाव बदल जाता है।

सगीत को Leit motif बनाकर भी प्रयोग किया जा सकता है, जैसा कि Wagner की सगीत-रचनाओं में किया गया है। एक विशेष स्वरलहरी बार-बार विभिन्न स्थलो पर आकर प्रभाव की पुष्टि करती है। भाव-विशेष के आवर्तन, प्रत्यावर्तन को इस स्वरलहरी की आवृत्ति से व्यक्त किया जाता है। रेडियो-नाटककार भी इस सगीत प्रसाधन का प्रयोग करता है। आरम्भ में ही प्रमुख चरित्र का एक सगीत प्रतिरूप (Musical Counterpart) निर्धारित कर लिया जाता है। फिर जहाँ भी सगीत-लहरी सुनाई देगी श्रोता उस चरित्र की उपस्थिति को अनुभव करेगा। जैसे Fritz-Lang के विख्यात नाटक 'M' में हत्यारा हमेशा ग्रीग की एक मैलोडी गुनगुनाता रहता है। प्रसिद्ध श्रव्य-निर्देशक एस. एस एम. ठाकुर ने चन्द्रवदन मेहता के नाटक 'विश्वामित्री' को प्रस्तुत करते समय इसी प्रकार के Musical motif का प्रयोग किया, जिससे नाटक में अद्भुत सौन्दर्य आ गया। विश्वामित्री एक नदी है। ठाकुर ने इसे जमजमे और प्यानो पर बजाई गई एक सगीत-लहरी से Identify कर दिया। विश्वामित्री के प्रवाह में जहाँ भी गतिरोध आता है, वहाँ सगीत-प्रवाह में भी अवरोध आ जाता है, और जब महर्षि विश्वामित्र की अनुकम्पा से विश्वामित्री को मनोषित और ईप्सित मार्ग मिल जाता है तो सवादो के साथ साथ प्रवाहित होने वाला सगीत भी एक मुक्त स्वच्छन्द सरिता बनकर बह निकलता है। जिसने भी यह नाटक सुना था वह स्वीकार करेगा कि यह प्रयोग अत्यन्त सफल रहा और इसका प्रभाव हृदयग्राही था। मुशी प्रेमचन्द के उपन्यास 'निर्मला' का रेडियो रूपान्तर (अश्क) का निर्देशन करते समय मुझे इसी प्रकार का (Musical motif) बहुत सहायक सिद्ध हुआ। अन्तरसूचक सगीत के स्थान पर मैने सितार और प्यानो पर बजाए हुए (Musical chines) का प्रयोग किया। पहले जब नाटक में दुख का भाव अधिक नही था तो यह Chines द्रुतगति मे बजाई जाती थी। जैसे-जैसे निर्मला का जीवन दुखमय होता जाता है इनकी गति धीमी पडती जाती है, यहाँ तक कि मंसाराम की मृत्यु के दृश्य के पहले और बाद वे बहुत ही लडखडाती हुई-सी बजाई गईं। इस सगीतात्मक सकेत ने दृश्य-परिवर्तन के अतिरिक्त काल-परिवर्तन को भी अभिव्यक्त किया। फिर 'डाकघर' प्रस्तुत करते समय भी मुझे इसी प्रयोग को आजमाने का अवसर मिला। सगीत-निर्माता प०जीवनलाल मट्टू ने लय-परिवर्तन और वाद्ययन्त्रो के फेर-बदल से नाटक के कथानक की भावात्मक अभिव्यक्ति करने वाला सगीत सयोजित किया। इस सगीतात्मक ध्वनि प्रतीक द्वारा अमल का धीरे-धीरे रोग में घुल जाना अत्यन्त प्रभावास्पद रूप से व्यक्त किया गया।

ऊपर दिये गये उदाहरणोंसे स्पष्ट है कि कुछ परिमितियो के रहते भी रेडियो-नाट्य का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। साहसी कलाकार की मौलिकता-प्रिय कल्पना को आत्माभिव्यक्ति के इतने अवसर शायद ही किसी और कला में प्राप्य होगे। श्रव्य-शैली के उपकरणों, साधनो और प्रसाधनो द्वारा निर्मित ससार हमारे विविध आकर्षणो से पूर्ण ससार से कम वास्तविक नही बल्कि उससे कही अधिक सुन्दर और रोमाचक है। और सूक्ष्म विचार और भाव-परिवर्तनो, आन्तरिक मनस्थितियो और साधारण एव असाधारण व्यक्तित्व के गुप्ततम सघर्षो और मानस की पल-पल बदलती रहने वाली अवस्थाओ का चित्रण केवल ध्वनि के माध्यम द्वारा ही कुशलता से हो सकता है।

तृतीय खण्ड

शिल्प

पहला अध्याय

रेडियो-नाटक का रूप-विधान

४३ परिभाषा का प्रयास—नाटक की परिभाषा सरल भी है और कठिन भी। सरल इसलिये कि यदि एक कलाकृति में कुछ विशेष गुण पाये जायें, तो हम उसे 'नाटक' का नाम दे सकते हैं। और कठिन इस तरह, कि सब कुछ कहकर भी हम उस परिभाषा को सम्पूर्ण नही मान सकते। यह बात नाटक के नही सभी कला-रूपो के विषय में सत्य है। फिर भी हम प्रयत्न करेंगे कि नाटक का इस प्रकार विश्लेषण करे कि हमें उसके अगोपागो (Components) के अध्ययन-परीक्षण से उसका वास्तविक अर्थ प्रकट हो जाय।

सबसे पहले हमें यह स्वीकार करना होगा कि अन्य कलाओ की भाँति नाटक भी मनुष्य की सौन्दर्यानुभूति की अभिव्यक्ति है जिसका उद्देश्य, विशेष स्थितियों में, विशेष चरित्रो के कार्यव्यापार के प्रति हमारी उत्सुकता जगाना, और इस जाग्रत औत्सुक्य की तृप्ति द्वारा हमारे हृदय में रसोद्दीपन करना है। नाटककार नाटक क्यो लिखता है, इसका एक ही उत्तर है, वह नाटक की रचना करता है क्योकि रचना मनुष्य की प्रकृति का एक गुण है। प्रश्न उठता है कि एक कलाकार नाटक ही क्यो लिखता है, कविता क्यो नही लिखता या प्रतिमाएँ क्यो नही बनाता। इस प्रश्न का भी वही उत्तर है। नाटककार नाटक की रचना करता है क्योकि वस्तु जगत के प्रति अपनी आसक्ति और कुतूहल को नाट्य-रचना द्वारा व्यक्त करना उसका स्वभाव है। तभी उसकी कलाप्रवृत्ति नाटकीय रूप धारण करती है। एक डबडबाई आख कवि के लिये कविता के सृजन की प्रेरक हो सकती है, नाटककार के लिये एक दुखान्त नाटक की। कवि और नाटककार में एक और अन्तर भी है। कवि भावना को विशुद्ध रूप में प्रस्तुत करता है, नाटककार उसे अपने चरित्रो द्वारा साकार करता है। कवि की सफलता भावावेश के अतिरेक को वाक्यो का स्थूल वेश देने में है, नाटककार का गुण

भावातिरेक को सयत करके और चरित्रो की क्रिया द्वारा प्रस्तुत करने में है। यही कारण है कि कविता स्वभाव से भावना-प्रधान (Inspirational) है, नाटक निर्माण-प्रधान और स्थापत्य-गुण-युक्त (Architectural)।

वैसे तो नाटककार एक सजग और सवेदनशील कलाकार की हैसियत से सम्पूर्ण वस्तुजगत का बोध प्राप्त करता है पर अपनी रचना के लिये वह केवल वस्तु-जगत के उन पहलुओ पर विचार करता है जिनमें किसी न किसी प्रकार की विशेषता या असाधारणता पाई जाये। इसलिये जीवन की अविरत धारा मे से वह केवल वही घटनाएँ या वृत्त चुनता है जिन्होने उसे विशेष रूप से प्रभावित किया हो, जिनमे किसी प्रकार की असाधारणता हो। नाटकीय वृत्त और स्थितियाँ जीवन के विशेष स्थल होते है जहाँ पहुँचकर जीवन में प्रत्यक्ष और प्रभावास्पद परिवर्तन आता है। इसी कारण ऐसी स्थितियो का भावात्मक और मानवीय महत्त्व होता है। इन्ही स्थलो पर एक चरित्र विशेष की वास्तविक समस्या हमारे सामने प्रकट होती है। अतः अपनी प्रकृति के अनुसार नाटक वास्तव का यथार्थ, हूबहू चित्रण नही है, क्योकि, स्वय जीवन में नाटकत्व नही है, नाटकत्व है जीवन के विविध प्रकार के व्यापारो में से संकलित विशेष और असाधारण घटनाओ में, महत्त्वपूर्ण स्थितियो में। इसलिये—
It is the business of the dramatic to scoop the cream of emotional and significant experience, from the milk of reality
अर्थात् नाटककार का कार्य है जीवन की यथार्थता के पय से भावनात्मक और सार्थक अनुभूति के नवनीत को मन्थन करके निकालना। इन विशेष और महत्त्वपूर्ण अनुभवो की अभिव्यक्ति वह एक या अधिक चरित्रो के कथोपकथन द्वारा करता है। रेडियो-नाट्यकार इस उद्देश्य को केवल ध्वनि के माध्यम द्वारा पूर्ण करता है। इसलिये उसकी रचना श्रुतिका कहलाती है।

इस विश्लेषण के बाद अब हम नाटक की एक सामान्य-सी परिभाषा बना सकते है। नाटक एक ऐसी साहित्यकृति है, जिसमें एक विशेष और महत्त्वपूर्ण स्थिति से प्रभावित होकर, एक कथानक को प्रस्तुत किया जाता है, जिसमें हम अनुभूति जीवन का प्रतिबिम्ब देख सकते है। कथानक एक कहानी है जिसमें हम एक समस्या का उदय, विकास और परिणति देखते है। कथानक महत्त्वपूर्ण घटनाओ का एक क्रम है जिसे सवाद-प्रवाह द्वारा सगठित रखा जाता है। और सवादो की निर्मिति होती है चरित्रो के पारस्परिक सघात से। तो नाटक में जो तत्त्व है, वे है, विषय-वस्तु, कथानक, चरित्र और संवाद।

४४. नाटक का बीज कहानी—'कहानी सृजनात्मक साहित्य का बीज है' (I. A. Richards) इसलिए नाटक का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व, उसकी

कहानी है। हाँ, कहानी के साधारण नाटकीयकरण और नाटक में अन्तर है। यह एक उदाहरण से स्पष्ट हो जायेगा।

अनिल विदेश चला गया था और कुछ वर्ष घूमने के बाद घर लौट आया है। इस कहानी के आधार पर नाटक का निर्माण नही हो सकता। हाँ, अगर इसी स्थिति को यो देखा जाय कि अनिल इसलिये देश त्यागकर चला गया था कि उसने अपनी पत्नी की हत्या की थी, तो इस कथा के आधार पर हम एक नाटक का निर्माण कर सकते हे। इससे यह स्पष्ट हुआ कि जहाँ साधारण कथा में समस्या का तत्त्व नही होता वहाँ इस अनिवार्य तत्त्व के अभाव में नाटक की कल्पना नही की जा सकती। कथानक में जितनी अच्छी तरह से समस्या का विश्लेषण और विकास किया जायेगा और जितना सफलतापूर्वक हम उसका समाधान कर सकेंगे उतना सफल हमारा नाटक होगा। इसलिये समस्याओ का निर्माण और समाधान ही कथानक है।

एक साधारण नाटक में हम एक कथा से परिचित होते हैं। यह सवादो द्वारा प्रस्तुत की जाती है। सवाद शब्दो के क्रम से निर्मित होते हैं और शब्द हमारे विचारो और अनुभूतियो के प्रतीक होते हैं। और इन विचारो और अनुभूतियो का सृजन वस्तुजगत के अध्ययन और इन्द्रियज अनुभवो से होता है। रेडियो-नाट्य में ये सब तत्त्व उपस्थित होते हे किन्तु ये सब ध्वनि के माध्यम द्वारा साकार होते हैं। अगर किसी लेखक से कहा जाये कि तुम्हे रेडियो-नाटक मे एक कहानी सुनानी है तो वह सोचता है कि इसमें क्या है, उसके पास विचार हैं, चरित्र हैं, और एक कथानक है। आखिर कहानी के लिए और क्या चाहिए। पर रेडियो के लिये कहानी कहना सरल नही है, क्योंकि श्रव्य के माध्यम द्वारा प्रस्तुत किये जाने के लिये साधारण कहानी में कुछ ऐसे परिवर्तन अनिवार्य हो जाते हे जिनके बिना कहानी का अर्थ पूर्ण रूप से व्यक्त नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त कुछ कहानियाँ रेडियो के लिये उपयुक्त होती हैं दूसरी नही। कभी-कभी परिवर्तनो से भी काम नही चलता। आम तौर पर रेडियो नाटक की कल्पना इस प्रकार की जाती है कि उसकी वस्तु, जहाँ तक हो सके, ध्वनि द्वारा ही प्रकाशित हो।

कथावस्तु के स्रोत के अनुसार नाटक ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, रहस्यमूलक आदि होते हे। और तत्त्व-विशेष की प्रधानता के अनुसार कथानक-प्रधान, चरित्र प्रधान, वातावरण-प्रधान और शब्द-प्रधान कहलाते हे। अगर नाटक में वास्तविकता पर बल दिया गया हो तो वह वास्तव-प्रधान होगा। अगर कल्पित-कथावस्तु पर बल दिया गया हो तो कल्पना-प्रधान। एक साधारण नाटक में श्रोता इन तीनों तत्त्वो के समन्वय को अनुभव करता है। कथानक, चरित्र और वातावरण के सामजस्य से ही वह साहित्यकृति जन्म लेती है जिसे हम नाटक कहते हैं।

रेडियो-नाटक का रूप-विधान

निश्चित अवधि के लिये श्रोता नाट्यकार द्वारा निर्मित कल्पना-समार
विहार करता है। वहाँ की प्रत्येक विशेषता को ध्यानपूर्वक देखता है, और र
आनन्द ग्रहण करता है। यद्यपि वह इस कल्पना-ससार में उस समय प्रविष्ट होत
जब बहुत-कुछ हो चुका होता है, फिर भी वह चरित्रो से परिचित हो जाने पर
अनुभव करता है जैसे वह सदा से उनके साथ रहता चला आया हो, उन्हे जान
पहचानता हो, उनके दु ख-सुखो में शरीक होता रहा हो, सहानुभूति द्वारा उनकी श्र
वेदना, उनकी समस्याओ, सघर्षों का अनुभव करता है। और इसी प्रकार, यद्यपि
निर्धारित पथ पर चलते हुए नाटक एक ऐसे स्थान पर जाकर समाप्त हो जाता
जिसके पश्चात् अभी बहुत-कुछ होगा, फिर भी उसे ऐसे लगता है जैसे वह एक
विशेष से परिचित होकर उसे कभी नही भूल सकेगा। इस प्रकार श्रोता त्रैका
ऐक्य की अनुभूति करता है। वह वर्तमान में रहता हुआ भी भूत और भविष्य
ज्ञान प्राप्त कर सकता है। यह अनुभूति उस शक्ति का चमत्कार है जिसे हम कल
कहते हैं, कल्पना, जो देश-काल के प्रतिबन्धो से मुक्त है।

नाटककार कभी पूर्ण कथा को प्रस्तुत नही करता क्योकि सीमित अवधि
मे उसके लिये आरम्भ से अन्त तक कथा की सब घटनाओ का वर्णन सम्भव
होता। वैसे भी नाट्य-कला की दृष्टि से ऐसा करना नाटक के आकार और प्रभा
ऐक्य के लिये हितकर नही होता। इसलिये नाटककार कथाक्रम में से एक ऐसे
का पार्थक्य करता है, जिसमें एक समस्या प्रस्फुटित होती दिखाई देती है। फिर व
नक के विकास द्वारा वह उसका समाधान करता है।

नाटक का जन्म एक विचार स्फुलिंग के रूप में होता है। इसी स्फुलिंग
विकास ही नाटक का क्षेत्र है, इसकी जीवन-कथा नाटक की अवधि। अमरीकी श्रव्य-न
विज्ञ काउगिल ने इस समस्या पर एक सुन्दर उपमा द्वारा प्रकाश डाला है। वह क
है कि लेखक पहले अपनी कहानी को एक विचार के रूप में देखता है। यही
आधार है जिस पर वह अपने कल्पना-ससार का निर्माण करेगा। वास्तव मे उ
कल्पित वस्तु-जगत इसी विचार की विस्तारपूर्वक अभिव्यक्ति है। उस अवस्थ
उसका चित्र बहुत ही धुँधला होता है, जैसे वह पर्वत-शिखर से एक स्थान विशे
अवलोकन कर रहा हो। इससे पहले कि वह अपने साथियो (नाटक से आनन्द
करने वाले) को उस आकर्षण-केन्द्र तक ले जा सके, उसे उस पथ का निर्माण क
होता है, जिससे वे वहाँ तक पहुँच सकें। पर्वतशिखर निस्सन्देह एक बहुत ही आ
और मादक स्थान है। वहाँ से दूर-दूर तक का दृश्य दिखाई देता है। कलाकार
हृदय में एक बलवती इच्छा उभरती है कि वह सीधा, एक ही छलांग में, उस
र्षण-केन्द्र तक जा पहुँचे। लेकिन ऐसा करने में वह पथ भूल जाता है, दिशा

बैठता है। और इस प्रकार निर्मित 'कहानी' उस घाटी ऐसी होती है जिसमें कोई पहरो घूमा करे, पर न पथ पाए न दिशा और न ही अपने मननीपित लक्ष्य तक पहुँच सके।

कहानी में बहुत से गुण होते हैं पर एक गुण सबसे प्रधान है और वह है Interest, औत्सुक्य और आकर्षण। अगर नाट्य-कथा में इस गुण का अभाव है तो वह भले ही मौलिक और गम्भीर विचारो से ओत-प्रोत क्यो न हो, श्रोता उससे प्रभावित नही होगा। नाटक के कथानक का निर्माण इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिये होना चाहिए। घटनाओं का सकलन भी इसी दृष्टि से होना चाहिए। आकर्षण सम्बन्धी एक और बात भी विचारणीय है। नाट्य-कथा घटनाओं का एक क्रम है। यह क्रम गति (Movement) द्वारा प्रत्यक्ष होता है। इस गति की एक दिशा होनी चाहिए। इस दिशा का एक लक्ष्य होना चाहिए। इसी लक्ष्य पर श्रोता का ध्यान केन्द्रित कर सकना और वहाँ तक पहुँचने की उत्सुकता और इच्छा उसके मन में जागृत करना और उसे नाटक के अन्त तक प्रबल रखना ही रेडियो-नाट्यकार की सफलता का सबसे बडा प्रमाण है।

४५ नाटक का विचार स्फुलिंग—नाटक का बीज एक विचार या स्थिति होती है। इस विचार या स्थिति में वे तत्त्व उपस्थित होते हैं जो विकसित होने पर नाटक का स्वरूप धारण कर सकते हैं। सामान्यत इसमें चरित्रो, परिपार्श्व और वातावरण के हल्के सकेत भी होते हैं। कथानक का अन्तिम रूप इस में प्रतिबिम्बित न हो, पर इसका आभास हमें मिल जाता है कि इस स्थिति से कौन-कौन सी घटनाएँ आविर्भूत हो सकती हैं।

नाटक के विचार का जन्म अनेक प्रकार से हो सकता है। आपका राह चलते, एक अद्भुत चरित्र से साक्षात हो जाय, उसकी असाधारणता आपको उसके विषय में सोचने पर मजबूर कर दे और आप अपनी कल्पना और सहानुभूति के सहारे धीरे-धीरे उस चरित्र के रहस्य को पाते चले जायें, यहाँ तक कि उस अद्भुत चरित्र का सार प्रकट हो जाय। या एक ऐसी घटना आपके ध्यान को आकृष्ट कर ले, जिसमें कई समस्याएँ उठा देने की सम्भावना हो। जैसे विवाह की रात एक नव-विवाहिता को पता चलता है कि उस का वर मानसिक विकार का रोगी है। या कभी एक अद्-भुत वस्तु, उदाहरणार्थ, एक पुराने खडहर को देखते ही आपके मन में एक विचार क्रम उभर उठे और इसके आधार पर आप एक कल्पित कथावस्तु का निर्माण कर लें।

यह कहना बहुत कठिन है कि विचार का जन्म मस्तिष्क में होता है या हृदय में। शायद इन दो शक्तियो के परस्पर सघात से ही विचार का जन्म होता है। कोई विचार ऐसा नहीं जिसके पीछे एक अनुभूति नही है, और कोई अनुभूति ऐसी नहीं

जो एक विचारधारा को प्रवाहित न कर दे। नाटक के विचार का प्रस्फुटन और विकास बिलकुल उषा के उदय की तरह होता है। जैसे पहले हम देखते है कि चारों ओर अन्धकार है, फिर सहसा आंखो को प्रकाश का भ्रम होता है, हम ध्यानपूर्वक देखते हैं; फिर वही अन्वकार, कुछ समय के पश्चात् एक स्थान पर प्रकाश की एक सूक्ष्म छटा मात्र दिखाई देती है, और इससे पहले कि हम उसके अस्तित्व के विषय में अपना मत निर्धारित कर सके वह एक आलोक-किरण के रूप में फूट निकलती है। फिर इसी किरण के साथ-साथ और किरणें फूट निकलती है। अन्धकार मिटता चला जाता है और प्रकाश की रेखाएँ उज्ज्वलतर होती चली जाती है। और हम कह उठते है सवेरा हो गया। ताजमहल को देखते ही नाट्यकार उस कल्पनालोक में खो जाता है, जिसमें शाहजहा और मुमताजमहल एक दूसरे को देखकर हर्षित और उन्मत्त हो रहे हैं। फिर उसकी अन्तर्दृष्टि देखती है मुमताज आखिरी हिचकियां ले रही है। शाहजहा शोकातुर होकर ताजमहल का निर्माण शुरू करवाता है। हजारो मजदूर पत्थर ला रहे हैं, उन्हें काट-तराशकर ऊपर चढ़ा रहे है। और इस प्रकार धीरे-धीरे नाट्यकार के मानस पर पूरे ताज का चित्र अकित हो जाता है। ताज को देखकर लेखक के मन में ये सबकी सब घटनाएँ कहां से प्रकाश में आ जाती है ? वह कौन सी शक्ति है जो इन घटनाओ को एक क्रम के रूप में सयोजित करके उपस्थित करती है ? इन क्रमवद्ध चित्रो का निर्माण कल्पना करती है, वही इन खाको में रग भरती है। इनका आधार लेखक का अनुभव होता है, पर इनका रूप-रग वह शक्ति निर्धारित करती है जो एक कलाकार को कलाकार बनाता है। जितनी ही उसकी कल्पना विकसित होगी उतने ही उसके चित्र आकर्षक और मौलिक होगे। साधारण कल्पना, जिसका क्षेत्र अत्यन्त परिमित होता है और जिसकी उडान बहुत नीची होती है, शायद उन सब विविध छवियो की रचना नही कर सकती जो एक विकसित कल्पना द्वारा कलाकार कर सकता है।

विचार-वस्तु कब कथावस्तु बनना शुरू हो जाती है, यह हमें मालूम नही होता। रचना-प्रक्रिया के ये दो स्थल निस्सदेह ही भिन्न है, पर इन दो के बीच रेखा खीचना प्राय. असम्भव होता है। जैसे उदयाचल का प्रकाश स्फुलिंग हमारे देखते-देखते ही प्रकाश-प्रवाह के रूप में विकसित होने लगता है, उसी प्रकार एक विचार या अनुभूति प्राकृतिक रूप से विकासोन्मुख घटनाक्रम (Evolutionary Sequence) के रूप में परिणत हो जाती है। कविता में, भाव कब शब्द बनते है इस क्रिया का विश्लेषण नही किया जा सकता, यद्यपि कविता को लेकर हम उस निराकार भावना या अनुभूति की कल्पना कर सकते है जो कि कविता का आधार या प्राण है। नाटक के आधार का आभास हमें कविता की अपेक्षा अधिक सरलता और स्पष्टता से होता है, क्योकि नाट्य-कला, कविता की अपेक्षा अधिक सृजनात्मक और निर्माणात्मक (Constructional)

है। एक मनुष्य से परिचित होते ही हम उसके बारे में सोचने लग जाते हैं। सोचने के साथ ही हमारे मन में उस व्यक्ति की समस्याओं का बोध होने लगता है। हम उसके प्रति आकृष्ट होने लगते हैं। उसी प्रकार एक विचार से उद्वेलित होते ही कल्पना उस निराकार भाव को रूपायत्त करना आरम्भ कर देती है। नाटककार की कल्पना यह कार्य एक घटनाक्रम द्वारा करती है। कहानी का एक परिलेख हमारे मस्तिष्क में स्थिर होने लगता है। लेकिन हमें यह न भूलना चाहिए कि यह एक परिलेख, एक रेखाचित्र ही होता है, एक आधारमात्र, जिस पर हम एक सफल नाटक खडा कर सकते हैं। रचना मे प्रेरणा और कला (रचना-शिल्प के अर्थ में) दो स्थल हैं। एक आरम्भ है दूसरा अन्त। इसी स्थल पर हमें परख लेना चाहिए कि हमारा यह आधार वास्तव में सुदृढ और विश्वसनीय है या नहीं। हमें विश्वास होना चाहिए कि यह आधार आगे चलकर बनने वाली इमारत का बोझ सहार लेगा। यह निश्चित होना चाहिए कि यह विचारवस्तु वास्तव में महत्त्वपूर्ण है, और इसमें नाटक के अन्त तक श्रोता का ध्यान आकृष्ट किये रखने की सामर्थ्य है। अगर यह विचार श्रोता की उत्सुकता को नहीं जगा सकता, या उसके आकर्षण को केन्द्रित नही कर सकता, तो समझना चाहिए कि या तो विचार इतना सीमित और जड है कि उसका विस्तार और विकास नहीं हो सकता, या नाटककार उसमें अन्तर्निहित सघर्षो को स्पष्ट रूप से अनुभव नही कर सका। सघर्ष या विस्फोट का तत्त्व ही नाट्य-क्रिया की (Driving Force) है और इस सघर्ष का प्रत्यक्षीकरण नाटककार का मुख्य कार्य।

४६. सघर्ष—नाटक की कथावस्तु में समस्या के अश का अभाव, नाटक को सर्वथा आकर्षणहीन बना देगा, क्योकि जब तक श्रोता समस्या से परिचित न होगा उसकी उत्सुकता नही जागेगी। अगर नाटक में सघर्ष का अभाव है, तो नाटक में क्रिया का तत्त्व विकसित नही हो सकेगा। प्रत्येक नाटक प्रश्न से उत्तर की ओर बढता है, अनिश्चित से निश्चित की ओर प्रगति करता है। प्रश्न से समस्या उठती है, और उत्तर इस समस्या के समाधान से प्राप्त होता है। समस्यामूलक विचारवस्तु सघर्ष द्वारा प्रकाशित होती है। इसलिये नाटककार को विषय-वस्तु को कथानक में बदलने से पहले यह देख लेना आवश्यक है कि एक विचार-विशेष में कितने संघर्ष गर्भित हैं। सघर्ष के कई कारण होते हैं, पर मूलत उसमें हम दो शक्तियो का विरोध और द्वन्द्व देखते हैं। यह विरोध विचार का विचार से, आदर्श का आदर्श से, एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से या व्यक्ति का अपने आप से हो सकता है।

कथानक का निर्माण करने से पहले यह आवश्यक है कि लेखक एक विचार या स्थिति में अन्तर्निहित सघर्ष का परीक्षण और स्पष्टीकरण करे और उसे अपेक्षाकृत अनावश्यक समस्याओ से अलग कर ले, क्योकि केवल एक ही क्रम ऐसा होगा जो

कथा को अपेक्षित चरम सीमा तक पहुँचा सकेगा। हो सकता है कि एक लक्ष्य तक पहुँचने के कई मार्ग हो, लेकिन सुविधापूर्ण और संक्षिप्त मार्ग एक ही होता है। नाटककार का प्रथम उद्देश्य इसी मार्ग को निर्धारित करना है। एक विचार को लेकर अनेक कथानको का निर्माण हो सकता है, पर सब कथानक एक से महत्त्वपूर्ण नही हो सकते। एक विचार पूर्ण रूप से उस समय सजीव होगा जब उसे स्वानुरूप कथानक और पात्रो द्वारा अभिव्यक्त किया जायेगा।

साराशत स्थिति, जिसमें समस्या और सघर्ष का तत्त्व वर्तमान है, नाटक के रूप का स्रोत है, किन्तु केवल इसी पर बल देना उचित नही, क्योकि नाटक को स्थायी महत्त्व प्रदान करने वाला तत्त्व है उसका विषय (Theme)। चरित्र भी कम महत्त्वपूर्ण नही। अगर स्थिति (Situation) पर अधिक बल देते हुए चरित्र की उपेक्षा की जाय तो उसका परिणाम अप्राकृतिक और निकृष्ट नाटक होता है। अगर स्थिति पर बल देते हुए वास्तविकता की उपेक्षा की जाय तो परिणाम होता है अतिरजित नाटक, मैलोड्रामा या फार्स।

प्रभावजनक स्थिति का निर्माण उसमें अन्तर्निहित सघर्ष के विकास के बिना सम्भव नही, और किसी भी संघर्ष का प्रकटीकरण उचित और ठोस चरित्रो की रचना के बगैर नही हो सकता, क्योकि एक नाटक की विविध घटनाएँ, उसकी महत्त्वपूर्ण स्थितियाँ, चरित्रो की समस्याओ से आविर्भूत होती है।

समस्या के समाधान (नाटक का अन्त) से परिचित होना इस बात का आश्वासन नही दिला सकता कि नाटककार सचमुच प्रधान और मूल सघर्ष को पा गया है। अकसर देखा गया है कि नाटककार कथा का विकास करते हुए पूर्व-अनुमित परिणति (Denoument) से दूर ही दूर होता चला गया। उलझनें बढती गईं, लेकिन उससे नाटक को कोई लाभ नही पहुँचा। इसका कारण यह होता है कि नाटककार ने रचना-प्रवाह में मुख्य सघर्ष (Main Conflict) पर नही, बल्कि गौण सघर्ष (Minor Conflict) पर ध्यान दिया और इस प्रकार वह सही दिशा को खोकर व्यर्थ की उलझनो में फँस गया, या इसका कारण यह था कि उसकी अनुमति-परिणति वास्तव में किसी गौण समस्या का समाधान थी।

इसके विपरीत एक और सम्भावना भी है। नाटककार कथा की मूल और प्रधान समस्या का समाधान अत्यन्त शीघ्रता से कर लेता है। और नाटक के शेष भाग में गौण संघर्षों (Minor Conflicts) का विकास करता रहता है। परिणाम यह होता है कि प्रमुख समस्या का समाधान होते ही श्रोता की उत्सुकता और कुतूहल का अन्त हो जाता है और श्रोता आगे किसी भी समस्या में ध्यान देने को प्रस्तुत नही होता।

एक कुशल नाटककार अपनी वथावस्तु को ऐसी कथा द्वारा व्यक्त करता है जिसमें नाटक के अन्त तक श्रोता की उत्सुकता बनी रहे। कथा का प्रत्येक डग श्रोता के कतूहल को जगाता है, और उसके आकर्षण को तीव्र से तीव्रतर करता है। प्रश्न यह उठता है कि नाटककार किस प्रकार निर्णय करे कि अमुक समस्या प्रधान और इसी कारण नाटक के लिए महत्वपूर्ण है, और अमुक नही। काउगिल हमें परामर्श देता है कि सबसे पहले हमें कथा को सचालित करने वाले चरित्रो का अध्ययन-परीक्षण करना चाहिए, इस प्रश्न का उत्तर खोजते हुए, कि उनकी सबसे वडी समस्या क्या है, कौन न किस का विरोध कर रहा है, और इस विरोध का हेतु (Motvie) क्या है ? कथानक के विकास के लिये सही रास्ता ढूंढने के लिये एक और तरीका भी है। हमें स्थिति को सव दृष्टिकोणों से देखते हुए यह निर्णय करना चाहिए कि हम किस दृष्टिकोण से समस्या के सभी पहलुओ पर विचार कर सकते हैं। फिर हमें यह देखना होगा कि स्थिति में अन्तर्निहित समस्याओ में कौन सी ऐसी हैं जो सव से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं, और जिनका विकास हमें नाटक की परिणति के अधिक निकट ले जायगा। सबसे सफल विधि नाटक के निर्माण से पहले उसका एक खाका या परिलेख वना लेना है। क्योकि परिलेख में विवरण की उलझनें कम होने के कारण समस्याओ को अधिक सरलता और सुगमता से जाँचा-परखा जा सकता है और दिशाभ्रम का भय नहीं रहता। अगले परिच्छेद में हम कथानक और इसके लिय वनाये जाने वाले परिलेख (Scenario Sketch) की चर्चा करेंगे।

४७. कथानक—कथानक का अस्तित्व चरित्रो और स्थितियो पर अवलबित है क्योकि चरित्रो की क्रियाएँ और प्रतिक्रियाएँ ही कथानक का निर्माण करती हैं। एक विचार-वस्तु की अभिव्यक्ति के लिये कभी कहानी पहले सूझती है और चरित्र वाद में गढ़े जाते हैं। कभी एक चरित्र की कल्पना हमारे मानस में उदित होती है और इसी के अनुरूप कहानी का निर्माण किया जाता है। इन दोनो स्थितियो में हमारा उद्देश्य एक ही होता है चरित्रो और घटनाओ द्वारा एक समस्या का विकास करना और समाधान खोजना। यही क्रिया नाटक का कथानक है।

मूलरूप में कथानक वह होता है जिसमें एक घटनाक्रम द्वारा एक सघर्षमूलक समस्या का समाधान किया जाता है। इस प्रकार नाटक का प्रत्येक स्थल, उसका प्रत्येक दृश्य इसी समाधान की ओर वढता हुआ कदम होता है। चरम सीमा की ओर प्रगति नाटक की उत्कर्षोन्मुख क्रिया (Ascending Action) और उत्कर्ष-बिन्दु से परिणति की ओर गति को नाटक की अपकर्षोन्मुख क्रिया (Descending Action) या (Denoument) कहते है। कई बार तार्किक दृष्टि से समस्या का पूर्ण समाधान नही होता, लेकिन श्रोता नाटक के अन्त से सन्तुष्ट हो जाता है,

क्योकि उस स्थान तक पूरी कथा सुनाई जा चुकी होती है।

ऊपर कहा था कि नाटक घटनाओ का एक सुनिश्चित क्रम है जिसमें हम एक समस्या का उदय, विकास और समाधान देखते है। अकसर नाटक एक ऐसे स्थान से शुरू होता है जब समस्या पहले ही से उपस्थित होती है। नाटक के अवधिक्षेत्र में उसका विकास किया जाता है। कथानक का निर्माण करते समय सबसे पहला और शायद सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न नाटक के आरम्भ का होता है। नाटककार की शैलीगत विशेषताएँ नाटक के प्रारम्भ से बहुत-कुछ स्पष्ट हो जाती है। अनुभव से एक बात सिद्ध होती है। रेडियो-नाटक के लिये कहानी को उस स्थल से उठाना अच्छा होता है जहाँ से बहुत समय या शब्द नष्ट किये बिना ही श्रोता मुख्य समस्या और उसमें अन्तर्निहित सघर्षो का परिचय पा सके। यह स्थान घटनाक्रम मे कही भी मिल सकता है, कथा के आरम्भ में, उसके मध्य में या कहानी के उत्कर्ष-बिन्दु के पास ही जहाँ से पिछली घटनाओ को एक Flash Back में प्रस्तुत किया जाता है।

आरम्भ निश्चित हो जाने पर कहानी के अन्त की ओर ध्यान देना होगा। आरम्भ और अन्त नाटक के दो छोर है। इन दोनो की सगति बैठाना ही सबसे कठिन काम है, क्योकि नाटक को इसी मध्य श्रेणी पर ही उसकी यथार्थता और सफलता निर्भर होती है। अकसर देखने में आया है कि एक नाटक अच्छी तरह शुरू होकर भी श्रोता की उत्सुकता और आकर्षण को केन्द्रीभूत नही कर सकता। या तो नाटककार ने उसके मध्य को इतना उलझा दिया होता है कि अनावश्यक और उद्भ्रान्तिजनक रचना से श्रोता का मन उकताहट से भरकर नाटक की समस्या से विरक्त हो जाता है, और अन्त प्रभावास्पद होने पर भी वह समूचे नाटक के विषय में अच्छी राय कायम नही कर पाता। या फिर उसने नाटक के मध्यस्थल पर इतना कम ध्यान दिया होगा कि नाटक का आकार बौने का-सा होकर रह गया है। नाटक के कथानक में मेंढक उछाल-क्रिया (Hop step and jump) बहुत बुरा प्रभाव पैदा करती है। कथानक का विकास इस प्रकार होना चाहिए जैसे एक निर्माता एक इमारत का निर्माण करता है। - उसके लिये एक सुदृढ नीव तो अनिवार्य है ही, लेकिन इमारत की सुन्दरता और दृढता के लिये मध्यस्थलो की ओर भी उतना ही ध्यान देने की आवश्यकता होती है। नही तो उत्तम कथावस्तु होने पर भी नाटक बहुत ही भद्दा होगा, उसी प्रकार जैसे पूरा ध्यान न मिलने पर एक अच्छे बीज से भी एक अच्छा पेड नही बन सकता। नाटक के मध्य भाग में कहानी के सभी पहलुओ पर प्रकाश डाला जाता है, इसी में हमें चरित्रो की भावात्मक पृष्ठभूमि का परिचय मिलता है, इसी के आधार पर भविष्य में उदित होने वाली घटनाओ का निर्माण होता है, इसी की सहायता से नाटक के अन्त को मनोवैज्ञानिक सत्यता (Psychological

truth) प्राप्त होती है। मध्यभाग के पहले अश में नाटक के आरम्भ में प्रस्तुत की गई समस्याओ को उभारा जाता है, ताकि श्रोता का ध्यान उन पर केन्द्रित हो सके—The questions which have been suggested to the audience are brought into sharp and brilliant focus, (P Wilde) दूसरे में समस्याएँ अत्यन्त गम्भीर हो जाती है, लेकिन इसी के साथ उनके समाधान की सम्भावनाएँ भी स्पष्ट रूप से प्रकाश में आनी शुरू हो जातीहै। इस अश मे कथानक प्रवाही किन्तु आकारहीन होता है। लेकिन इसी में से परिणति क्रिया का उद्भव होता है, उलझनें इतनी बढती है कि उनका सुलझना निश्चित हो जाता है।

कथानक के मध्य भाग में प्राय गौण (Minor) और द्वैतीयिक (Secondary) सघर्षों का विकास किया जाता है। इसका उद्देश्य मुख्य समस्या को अन्य दृष्टिकोणो से देखना अथवा उसमें एक सम्वद्ध उपसमस्या को जोडना होता है। असफल और अपरिपक्व कथानक में ये अश नाटक की प्रधान क्रिया से सश्लिष्ट नही होते, सफल और कलापूर्ण कथानक में ये उपाग नाटक की प्रधान समस्या में से ही आविर्भूत होना है, और उनका विकास तर्कसगत, मनोवैज्ञानिक और कलात्मक दृष्टि से वस्तु क अनुरूप होता है।

अकसर नाटक के मध्य भाग में बहुत सी घटनाओ का सग्रह कर दिया जाता है और यह आशा की जाती है कि इस प्रकार नाटक की क्रिया में गति आ जायगी। घटनाओ की भरमार करने से नाटक में गति नही आती, हाँ, उसकी स्वाभाविक गति का अवरोध निश्चय ही हो जाता है। जब तक ये घटनाएँ निश्चित रूप से समस्या की सघर्षरत द्वन्द्वात्मक सत्ताओ के सन्तुलन में परिवर्तन पैदा करें उनका परिणाम केवल गति मात्र (Activity) होता है, क्रिया (Action) नही। क्योकि वे केवल समय के तल पर कथानक को आगे बढाती हैं समस्या के तल पर नही। कथानक को वेग और गत्यात्मकता उन घटनाओ द्वारा प्राप्त होगी जिनसे कहानी को दिशा में कोई न कोई परिवर्तन आये, चरित्रो के विविध पक्षो पर प्रकाश पडे और उनका विकास हो, और कहानी परिणति की ओर निश्चित प्रगति करे। इसलिए नाटक के मध्य भाग की व्यवस्था कथा को आगे बढाने की व्यवस्था होगी।

नाटक के मध्य भाग में उपकथानक की रचना होती है। उपकथानक वास्तव म सहायक कथानक होता है। उत्तम कथानक में, मूलकथा और उपकथा आपस में इस प्रकार से गुम्फित होते हैं कि एक का आधार दूसरे पर होता है। जो सम्बन्ध मूल धारा के साथ अन्तरधारा का है, वही सम्बन्ध मूल कथा और उपकथानक का है। एक अच्छे उपकथानक में दो गुण अपेक्षित हैं। एक, वह कुछ समय के लिये श्रोता का ध्यान केन्द्रीय समस्या से हल्का-सा हटाकर उसे ऊब-उकताहट से बचा लेता है। इस

प्रकार उपकथानक नाटक में विविधता पैदा करता है। दूसरा, उसकी समस्याओं का समाधान प्रधान कथानक की समस्याओ के समाधान मे सहायक होता है। इस तरह उसका प्रभाव मूल कथानक के प्रभाव की पुष्टि करता है। इसका सबसे उत्तम उदाहरण, शेक्सपियर के नाटक 'King Lear' में मिलता है, जहाँ उपकथानक मूल कथानक के प्रभाव की पुष्टि के साथ-साथ नाटक की कथावस्तु की व्यापकता का सूचक है। हम देखते है कि ग्लॉस्टर के साथ भी वही बीतती है जो लियर के साथ बीती, अत उपकथानक में मूल कथानक का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। जो समवन्ध लियर का गॉनरेल और कॉर्डीलिया के साथ है, वही सम्बन्ध एडमड और एडगर का ग्लॉस्टर के साथ है। दुखान्त में घटनाक्रम की आवृत्ति एक कलात्मक युक्ति है, जिसकी सहायता से शेक्सपियर अपने नाटक का scale व्यापक बना पाया है। शेक्सपियर की सफलता की प्रशसा करते हुए सुप्रसिद्ध आलोचक ब्रेडले ने लिखा है—"This repetition does not simply double the pain with which the tragedy is witnessed it startles and terrifils by suggesting that the folly of Lear and the ingratitude of his daughters are no more aberrations, but in that dark cold world some fateful malignat influence is abroad freezing the springs of pity, except the nerves of angusih and the dull lust of eye" इस तरह दर्शक और पाठक के मन में यह धारणा स्थान प्राप्त करने लगती है कि किंग लियर' में व्यक्तियो का सघर्ष प्रदर्शित नही किया गया बल्कि, ससार की दो महान् सत्ताओ का द्वन्द्व प्रकट किया गया है। नाटक का प्रभावक्षेत्र बहुत ही विस्तृत हो जाता है, और ट्रैजिडी में व्यापकता आ जाती है।

४८. कथानक में गति और दिशा—एक उत्तम कथानक नाट्य-कथा को वेग और गति प्रदान करता है, लेकिन एक सुनिश्चित दिशा में। नाटक में गति-मात्र ही काफ़ी नही है; उसमें प्रगति होनी चाहिए। विकास और प्रगति का अश एक सफल और हृदयग्राह्य नाटक के लिये अनिवार्य है। गति और वेग के विषय में भी एक बात ध्यान देने योग्य है। द्वैतीयिक सघर्ष नाटक में विविधता और आकर्षण लाने के लिये प्रयुक्त होते है। अब अगर ये द्वैतीयिक संघर्ष, स्थिति में एक ही लय मे परिवर्तन पैदा करें; तो श्रोता शीघ्र ही कथान्त के विषय में अनुमान लगा लेगा। उसकी उत्सुकता कम होती जायगी। इसका परिणाम नाटक के प्रधान कथानक के लिये अच्छा न होगा। अगर स्थिति परिवर्तन की लय को एक-सा न रखकर घटाया-बढ़ाया जाय, तो इससे उत्सुकता बढेगी और आकर्षण की पुष्टि होगी।

हास्यनाट्य में प्राय बहुत-सी द्वैतीयिक समस्याएँ प्रयुक्त होती है। उनमें से प्रत्येक, स्थिति को अधिक गठीला और संकटमय बनाती है। लेकिन इससे पूर्व कि

नाटक की दिशा में कोई महान् परिवर्तन आये उसका समाधान हो जाता है। कभी समस्याओं का एक क्रम बन जाता है और अन्त में नाटककार कहानी को एक ऐसा मोड़ देता है कि वे सब ग्रन्थियाँ आप से आप सुलझती चली जाती हैं और एक आश्चर्यमय अन्त (Surprise ending) सारी समस्याओं का समाधान कर देता है। दुखान्त नाटक में यदि ऐसी कथानक सयोजना (Plot structure) हो, तो वह मैलोड्रामा का रूप धारण कर लेगा। एक शुद्ध दुखान्त में उपसमस्याएँ एक दूसरे में से निकलती हैं। और इन सबका स्रोत नाटक की प्रधान और मूल समस्या होता है। कभी उपसमस्याएँ समाधान की सम्भावनाएँ उपस्थित करती हैं। लेकिन वास्तव में उनके कारण मूल-समस्या का समाधान कठिनतर होता चला जाता है।

कथानक में उतनी ही समस्याएँ वाछनीय हैं, जिनसे कि नाटक के वेग और उसमें प्रस्तुत विचार के विकास को सहायता मिलती हो। कथानक में उतने वृत्तों का सयोजन किया जाना चाहिए जिनसे श्रोता के आकर्षण में वृद्धि हो। फलतः रेडियो-नाटक के कथानक में साधारणत इस प्रकार की सयोजना होनी चाहिए, प्रत्येक स्थिति-परिवतन के साथ क्रिया की गति, और प्रभाव की प्रगाढता बढती चली जाय। जैसा कि काउगिल ने लिखा है—

"The pattern of the radio-drama is one of constantly rising interest, with the story conflict revealed and foreshadowed in the first scene, and each scene ending at a high pitch of story action, which is carried forward in the next scene, which again ends at a high point, until the final scene of climax and resolution"

अध्याय दूसरा

रेडियो-नाटक का निर्माण

"A play needs to have a theme, this theme must be interpreted by a story, and the story must be stiffened into a plot"—Mathews

४६. कथा सामान्य रूप से सभी आख्यान-साहित्य का मूल आधार है। उपन्यास, कहानी, नाटक, इन सब में कथानक का तत्त्व सामान्य रूप से वर्तमान है। लेकिन इन सबका स्वरूप भिन्न है, क्योंकि प्रत्येक का स्थापत्य भिन्न है। रेडियो-नाटक का आधार है श्रुति, इसलिये उसका आकार और स्वरूप साधारण नाटक से भिन्न रहता है। उसकी शैली और शिल्प श्रव्यकला के सिद्धान्तो के अनुरूप होना चाहिए। रेडियो-नाटक का निर्माण श्रव्यकला की परिसीमाओ और विशेषताओ को सामने रखकर होगा, ताकि हम इस नये सृजनात्मक माध्यम का पूरा-पूरा प्रयोग कर सकें। रगनाटक का निर्माण मच को सामने रखकर किया जाता है। उसी तरह से रेडियो-नाटक का निर्माण श्रव्यमच की विशेषताओ को ध्यान मे रखते हुए होना चाहिए। दूसरे शब्दो मे रेडियो-के लिये कथा को इस रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए, जिसकी पूर्ण अभिव्यक्ति, ध्वनि, शब्द और श्रव्यकला के मुख्य उपकरण, सगीत द्वारा हो सकती हो। अगर किसी कारण कथा के कुछ पहलू केवल ध्वनि या शब्द द्वारा व्यक्त नही हो सकते, और क्रिया का पूर्ण अर्थ एव भाव पूर्णता से अभिव्यक्त नही हो सकता, तो रचना प्रभावरहित और नीरस होगी। इसके अतिरिक्त रेडियो-नाटक का निर्माण इस महत्त्व-पूर्ण बात को मन में रखकर होना चाहिए कि रगशाला के प्रेक्षक की अपेक्षा, रेडियो-नाटक का श्रोता आकर्षण और रोचकता की अधिक माँग करता है।

रेडियो-नाटक के शिल्प के विषय में जो भी कहा जाता है वह अनेक रेडियो-नाट्यकारो के अनुभव के आधार पर निर्मित स्थापनाओ के रूप में है। और स्थापना कभी एक सिद्धान्त या फॉरमूला नही बन सकती। इन स्थापनाओ को जिनकी चर्चा इस परिच्छेद में होगी अलीबाबा चालीसचोर की कहानी के मंत्र खुलसिमसिम की तरह न समझा जाना चाहिए जिसे याद रखने से सभी मुश्किलें आसान हो जायेंगी।

अलजब्रा के फॉरमूला और कला के विधान मे यही मूल अन्तर है। दोनो अपने आप में सत्य है, लेकिन जहाँ अलजब्रा के फॉरमूला की सहायता से समस्याविशेष का समाधान हो सकता है, वहाँ कला के विधान को रट लेने पर यह सम्भव नही होगा कि कोई भी व्यक्ति एक कलाकृति का निर्माण कर ले। कला के विधान की व्यवस्था कला के अस्तित्व के पश्चात् की गई है, इसलिए कलाकृति में कला श्रेष्ठ है। विधान कला का उपकरण मात्र है। जीवन को व्यवस्थित और मानव की महान् शक्तियो को सयत करने के लिए समाज की रचना हुई, वैसे ही कलाकार की उच्छल कल्पना को अनुशासित करने के लिए कला-विधान बना। कला में कोरी बुद्धि का काम नही। जब तक बुद्धि और कल्पना का सहयोग और सामजस्य नही होता कला-विधान व्यर्थ, बल्कि निरर्थक है। एक और अन्तर भी है। अलजब्रा के फॉरमूला में किसी प्रकार के परिवर्तन की गुंजायश नही, कला-विधान में कलाकार की प्रतिभा, उसके व्यक्तित्व और सुरुचि के अनुसार उचित परिवर्तन किये जा सकते है। इन परिवर्तनो से (जो कभी-कभी क्रान्तिकारी होती है) बहुत सुन्दर परिणाम निकलते है, और कला-विधान समृद्ध होता है। चित्रकला की क्रिया बहुत सरल है। कुछ रग है जिन्हे कलाकार ब्रुश की सहायता से कागज़ या कैनवास पर उतारेगा। मगर एक साधारण व्यक्ति को ये दोनो वस्तुएँ दे दी जायें और उसे इस क्रिया से भी परिचित करा दिया जाय, तो क्या वह एक चित्र की रचना कर सकेगा, और क्या उस रचना का कला की दृष्टि से कोई महत्त्व होगा ?

रेडियो-नाटक को सफल कलाकृति बनाने के लिये कई शर्तें जरूरी है। कुछ तो नाटककार के मन में आकारहीन रूप में होती है, जिनकी परिभाषा सम्भव नहीं। परन्तु कुछ शर्तें वाह्य और वस्तुनिष्ठ है, जिनकी चर्चा एक-एक करके आगे की जाती है।

५० **निश्चित अवधि**—रेडियो-नाटक के निर्माण में सबसे पहला प्रश्न नाटक के परिमित क्षेत्र का है। साधारण नाटक आध घटे से एक घटे का होता है। नाटक शुरू करने से पहले लेखक के लिये यह देखना आवश्यक होता है कि नाटक की कथा को निश्चित समय में समाप्त किया जा सकेगा या नही। अकसर एक नाटक में कई घटना-क्रम होते है जिनके पश्चात् उत्कर्ष-बिंदु आता है। कभी-कभी ऐसा होता है कि लिखते-लिखते नाटक इतना विस्तृत हो जाता है कि अन्त के दृश्यो को, जो शायद सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण होते है, पूरी तरह से विकसित नही किया जा सकता। ऐसी स्थिति में अपेक्षाकृत कम महत्त्व के घटनाक्रमो को या तो छोड देना चाहिए या एक छोटे से दृश्य मे उन सब बातो को कहना चाहिए जो कई दृश्य ले रही थीं। घटना-क्रम और दृश्यो के महत्त्व का निर्णय नाट्य-रचना शुरू करने से पहले-पहल होना चाहिए। समय और अवधि की दृष्टि से नाटककार को प्राय नाटक के बहुत से

अगो को दुबारा लिखना पडता है और फिर भी कथा का कोई-न-कोई अश रह जाता है। लेकिन धीरे-धीरे उसे निश्चित समय में पूरी कहानी करने का ढग आ जाता है।

५१. ध्वनिमाध्यम का सुप्रयोग—दूसरी बात यह है कि हमारी कथा ध्वनि के माध्यम द्वारा व्यक्त हो सकनी चाहिए। यह माध्यम कई स्थितियो में परिसीमित होते हुए भी नाटककार के रचना कौशल को अनेक अद्भुत प्रयोगो का अवसर देता है। नाटक मे घटनाओ और क्रियाओ से अधिक महत्त्वपूर्ण उनका चरित्रो पर प्रभाव है। वास्तव में एक नाटकीय क्रिया का अर्थ पात्रो की प्रतिक्रियाओ द्वारा स्पष्ट होता है। कुछ घटनाएँ और वृत्त ऐसे होते है जिनका प्रभाव सुनने की अपेक्षा देखने में ज्यादा होता है। जहाँ तक हो सके रेडियो-नाट्यकार को अपनी कथावस्तु को व्यक्त करने के लिए ऐसी घटनाओ का सकलन करना अनिवार्य है, जो ध्वनि के माध्यम द्वारा प्रत्यक्ष हो सकें। चरित्रो का निर्माण करते समय भी उन्हे ऐसी विशेषताएँ देनी अनिवार्य है जिनका प्रभाव ध्वनि और श्रुति पर आधारित हो। उदाहरणार्थ, रेडियो-नाटक में आँख झपकने वाले विदूषक से जबान ढीली छोडकर बोलने वाला विदूषक अधिक प्रभावास्पद होगा, क्योकि जहाँ पहले चरित्र की विशेषता का सम्बन्ध देखने से है, दूसरे का सम्बन्ध केवल सुनने से है। प्राय दृश्यात्मक घटनाओ को भी रूपान्तरित करके प्रस्तुत किया जा सकता है। लेकिन प्रभाव की परिपूर्णता की दृष्टि से केवल ध्वनि-सगत घटनाओ तथा सकेतो का सकलन ही वाछनीय है।

५२ श्रोता—हमारे देश में आर्थिक कारणो से रेडियो का क्षेत्र अभी तक सीमित है। भारत में ज्यो-ज्यो ब्रॉडकास्टिंग का विस्तार होता जायगा त्यो-त्यो रेडियो के प्रेमी बढते जायेंगे। इन अदृश्य श्रोताओ की उपस्थिति की कल्पना श्रव्य-नाट्यकार का उत्साह बढाती है। कैसे वह श्रोता से मीलो दूर है, पर ईथर की अद्भुत शक्ति के सौजन्य से वह अपने श्रोता से उतना निकट है जितना एक प्रिय मित्र अथवा स्वजन उससे होता है। वह हरेक श्रोता से व्यक्तिगत रूप में बात-चीत कर सकता है। उसे अपने भावो और विचारो से परिचित करा सकता है और अपना आत्मीय बना सकता है। दूसरी ओर जहाँ श्रोता श्रव्य द्वारा प्राप्त प्रत्येक आनन्द के लिए श्रव्यकार का आभारी है वहाँ उसके पास अद्वितीय स्वतन्त्रता भी है उसे कोई भी शक्ति उसकी इच्छा के विरुद्ध एक रेडियो-कार्यक्रम सुनने पर मजबूर नही कर सकती। न नाटक के सचालक उससे अनुरोध कर सकते हैं और न 'थियेटर एटिकेट' उसे जमाहियाँ लेते हुए भी अपनी कुर्सी से चिपके रहने पर बाध्य कर सकता है। वह जब भी चाहे बुरे और निकृष्ट नाटक के अत्याचार से तुरन्त मुक्त हो सकता है।

एक बात और। थियेटर-हाल में सब दर्शक चुपचाप बैठे रहते है। हाल की बत्तियाँ भी बुझा दी जाती है, ताकि दर्शक का ध्यान इधर-उधर न जा सके। लें

रेडियो सुनते वक्त इस तरह का एकान्त (Isolation) या शान्त वातावरण उपलब्ध नही होता। एक कमरे में नाटक का प्रेमी रेडियो-सेट से कान लगाये नाटक सुन रहा होता है, तो दूसरे कमरे में उसके घर वाले खाना खाते हुए गपशप कर रहे होते हैं। अकसर एक ही कमरे में और भी बहुत से ऐसे आकर्पण होते हैं जो श्रोता का ध्यान बँटते है। श्रव्य-नाटककार का नाटक इन विशेष परिस्थितियों में सुना जाता है।

दुर्भाग्यवश, इन धारणाओ के परिणामस्वरूप एक विकृत तर्क का जन्म हुआ है, कि श्रोता हमेशा उपेक्षा भाव रखने वाला, बल्कि विरोधी (Hostile) होता है। वह किसी कार्यक्रम को इस नीयत से नहीं सुनने बैठता कि वह इससे सचमुच आनन्द प्राप्त कर सकेगा। यह सरासर गलत है। मै स्वय एक बहुत पुराना और बाकायदा प्रोग्राम सुनने वाला हूँ, और एक श्रव्यनाट्यकार की हैसियत से अनेक श्रोताओ से परिचित होने का अवसर भी मुझे मिला है। मैं विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि प्रत्येक श्रोता रेडियो-कार्यक्रम को सुनने की इच्छा से बैठता है। पर जब उसे कार्यक्रम आकर्षक नही जान पडता तो वह दूसरे स्टेशन के लिये सूई घुमाता है। अगर उसे दो-तीन जगह मायूसी होती है तो वह ऊबकर रेडियो बन्द कर देता है। एक स्टेशन के बाद दूसरे की खोज ही बताती है कि वह सचमुच एक सुन्दर और आकर्षक कार्य-क्रम का इच्छुक है। हाँ, उसे अपनी स्वतन्त्रता और शक्ति का भी ज्ञान है। वह जब चाहे एक नीरस कार्यक्रम का अन्त कर सकता है। श्रोता की उत्साहहीनता का दायित्व वस्तुत नाटककार पर है।

अब हमें यह सोचना है कि श्रोता क्या चाहता है। वह नाटककार से किस वस्तु की आशा रखता है। अकसर, वह एक रोचक और मनोरजक कहानी चाहता है जो न तो इतनी सरल हो कि तोता-मैना की कहानी जैसी प्रतीत हो और न ऐसी उनझी हुई कि वह उसके लिए एक रहस्यपूर्ण पहेली बनकर रह जाय। कभी-कभी पहेली का अर्थ ढूंढने में बडा आनन्द मिलता है और हर सफल नाटक में पहेली का तत्त्व जरूर छिपा रहता है लेकिन साधारण श्रोता बहुत उलझी हुई और शैतान की आँत की तरह फैली हुई, और दर्जनों घटनाओ-दुर्घटनाओ से भरी कहानी पसन्द नही करता, क्योंकि उसे मनोरजन चाहिए बौद्धिक व्यायाम नही।

श्रव्य का रगमच श्रोता की कल्पना है जो मनुष्य के सूक्ष्म-से-सूक्ष्म भावो और विचारों से भी अधिक प्रभावग्राह्य (Sensitive) है। जहाँ कल्पना का क्षेत्र निस्सीम है वहाँ उस पर आधारित रगमच का क्षेत्र परिसीमित है। यहाँ अन्य प्रकार के पात्रो की भीड लग जाय ऐसा श्रोता स्वीकार नही करता। अगर हम वहाँ बहुत से आवश्यक पात्र ला खडे करें, तो श्रोता का मन इस भूल-भुलैयाँ में उलझकर ही रह जायगा। रेडियो-नाटक में जहाँ दृष्टि का सहारा नही होता, कम से कम पात्र लाये जायें तो

अच्छा रहता है। हाँ, इन चुने हुए पात्रो का विकास पूर्ण रूप से होना चाहिए, ताकि श्रोता न केवल उनकी वस्तु से परिचित हो जाये, वल्कि उनके द्वारा नाटक की मूल-स्थिति, उसके मूल सघर्ष का सजग अनुभव भी कर सके। इन पात्रो में से हरएक की अपनी स्पप्ट और प्रत्यक्ष व्यक्तिगत विशेषता होनी चाहिए नही तो सब पात्र एक अरूपात्मक कोलाहलमात्र होकर रह जायेंगे। अगर एक कथानक में वहुत से छोटे-वडे चरित्रो की आवश्यकता पडती हो तो दो वाते हो सकती हैं। या तो वह कथा नाटकीय दृष्टि से रेडियो-नाटक के लिये उपयुक्त नही है। या कथानक का निर्माण इस प्रकार हुआ है कि उसमे अनावश्यक और गौण चरित्र भी चले आये हैं। ऐसे पात्रो का अकसर कोई न कोई सूचना लाने-ले जाने के लिये प्रयोग में लाया जाता है। एक कुशल नाटककार उन्हें विना किसी विशेष असुविधा के हटा सकता है, और सूचना का कार्य किसी मुख्य पात्र या महत्त्वपूर्ण सहायक पात्र से सम्पन्न करा सकता है। श्रव्य नाटक में गहराई (Depth) का अधिक महत्त्व है। उतना महत्त्व विस्तार (Diversity) का नही। श्रव्य-नाटक का उद्देश्य जीवन का विराट (Panoramic) चित्र प्रस्तुत करना नही, वल्कि विशेप व्यक्तियो के जीवन के कुछ ऐसे असाधारण और महत्त्वपूर्ण अशो पर प्रकाश डालना है, जिनके अध्ययन और विश्लेषण से हमें समूचे जीवन को समझने, उसे अनुभव करने में सहायता मिल सके।

आम तौर पर वह रेडियो-नाटक विशेष रूप से सफल रहता है जिसमें श्रोता एक या दो पात्रो से अपने आपको सम्वन्धित करले, और इस तरह नाट्य-क्रिया का परीक्षण मात्र न करते हुए, अपने आपको उसमे सम्मिलित अनुभव करे।

सर्वप्रथम नाटक का सुन्दर शीर्षक श्रोता का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करता है। लेकिन यह आकर्षण वहुत ही अल्पकालिक होता है। अगर नाटक का आरम्भ श्रोता की आशाओ के अनुकूल न हो तो वह नाटक के विपय में उदासीन हो जायेगा, और हमें मानना होगा कि इसमें उसका कोई दोष नही है। नाटक के पहले कुछ मिनट ऐसे प्रभावजनक होने चाहिएँ कि श्रोता का कौतूहल, उसकी उत्सुकता सजग हो उठे, और वह सोचने लगे कि देखें आगे क्या होता है। रगनाटक में पहला अक अकसर वहुत धीमी गति से उठता है। एकाकी रगनाटक रेडियो-नाटक के अधिक निकट है, क्योकि उसमें प्राथमिक भाग वहुत तेजी से उठता है, और कथानक वडे वेग से विकसित होने लगता है। इसे सुनते ही श्रोता समस्या के समाधान के विषय में उत्सुकतापूर्वक अनुमान लगाना शुरू कर देता है।

रेडियो-नाटक की सफलता इस पर निर्भर है कि श्रोता का आकर्षण कहीं भी क्षीण न होने दिया जाय। नाटक के प्रत्येक नये दृश्य में ऐसे उत्कृष्ट विवरण सामने आते रहने चाहिएँ, जिनसे श्रोता की उत्सुकता क्रमश वढती जाय। इसके अतिरिक्त

प्रत्येक दृश्य की वस्तु में तो भेद होता है, लेकिन इसके साथ-साथ उनमें लय (Tempo) और स्वभाव (Temper) का भी अन्तर होना चाहिए। उदाहरणार्थ, एक गम्भीर दृश्य से पहले अगर एक Light दृश्य आ चुका हो तो उसकी गम्भीरता का प्रभाव और भी बढ जाता है। एक लम्बे दृश्य के बाद द्रुत लय में चलने वाले छोटे-छोटे दृश्य रख दिये जायें, तो इस लय के अन्तर से नाटक के प्रभाव में काफी वृद्धि होगी। रेडियो-नाटक में सब छोटे-बडे, द्रुत और मन्थर दृश्यो का मिला-जुला प्रभाव उत्थान और प्रगति का होना चाहिए न कि गिरती लय का। श्रोता का आकर्षण स्थिर रखने के लिये यह अति आवश्यक है।

इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिये अकसर घटनाओं के क्रम मे परिवर्तन कर दिया जाता है। इससे नाटक के प्रवाह में गतिरोध और उसकी निर्माण-व्यवस्था में कोई बाधा नही पडती, बल्कि घटना-प्रवाह का वेग बढ जाता है और श्रोता का आकर्षण अन्त तक समस्या पर केन्द्रित रहता है। बहुत से नाटक उत्कर्ष-बिन्दु से शुरू होते हैं और क्रम की दृष्टि से पहले आने वाली घटनाएँ बाद में प्रकाश में लाई जाती हैं। कभी नाटक को कथा के मध्य में से उठा लिया जाता है और मध्य के भाग में प्रारम्भिक भाग की घटनाओ की चर्चा की जाती है। रहस्य-प्रधान नाटको में प्राय इसी शिल्प का प्रयोग होता है। कभी छोटे-छोटे दृश्यो से एक क्रम (Montage Sequence) द्वारा प्रमुख समस्या के विभिन्न पहलुओ पर प्रकाश डालते हुए चरित्रो की प्रकृति और नाटक की (Situation) वस्तु-स्थिति से श्रोता का परिचय करा दिया जाता है, और फिर नाटक क्रमिक-विकास के चरणो द्वारा विकसित होता है। ऐसी प्रारम्भिक सीक्वेन्सिज़ का उद्देश्य वही होता है जो रगनाटक के पहले अक का होता है, लेकिन इसमें वेग अधिक होता है और समय कम लगता है।

५३ **नाटक का परिलेख**—नाटक के निर्माण की ओर पहला कदम उसके सीनेरियो स्केच या परिलेख की रचना है, जिसमें हम नाटकके प्रकार, आकार और स्वरूप की परिकल्पना करते है। हम यह तय कर लेते है कि एक कथा किस प्रकार नाटक बनेगी। परिलेख में यह निश्चित कर लिया जाता है कि हमारे मनोवाछित प्रभाव किस रीति और विधि से मिलेंगे। अगर हम पहले से ही निश्चित कर सकें कि कहानी किस प्रकार विकसित होगी तो हमारे लिये दृश्यो और घटना-क्रमो (Sequences) का निर्माण सरल हो जाता है और अनावश्यक क्रम निर्मित करने में समय नष्ट नही होता। हम देखेंगे कि परिलेख की सहायता से हमारी कथा अधिक प्राकृतिक और स्वाभाविक ढग से विकसित होगी और हमारा नाटक ढीलाढाला न होकर सुगठित बनेगा।

परिलेख का नाट्य-रचना में वही स्थान है जो एक चित्र में रेखाचित्र

(Drawing) का है, और एक इमारत में उसके बुनियादी नक्शे (Blueprint) का। पर, परिलेख नाट्य-रचना का उपकरण है उपादान नही। बहुत से कलाकार ऐसे है जो यह रेखाचित्र अपने मन में स्थिर कर लेते है, और उन्हे पैन्सिल-कागज़ लेकर लिखने की आवश्यकता नही होती। वास्तव में यह प्रश्न रुचि का है या सुविधा का। लेकिन इस पर सब लेखक सहमत होगे कि किसी न किसी प्रकार का परिलेख न केवल लाभकारी है बल्कि रेडियो-नाटक के सुनिश्चित और सीमित अवधिक्षेत्र को देखते हुए आवश्यक भी। सृजनात्मक साहित्य के क्षेत्र में नाटक सब से अधिक स्थापत्यात्मक प्रक्रिया (Architectural process) है। अत उसके लिये वैसा ही निर्माण-शिल्प अपेक्षणीय है जो भवन-निर्माण में प्रयुक्त होता है। अगर नाटक की रचना कविता की तरह की जाय तो इसका परिणाम होता है एक शिथिल नाटक। यद्यपि प्रत्येक कविता में भी निर्माण का अश बहुत महत्त्वपूर्ण होता है लेकिन जहाँ कविता में स्वतन्त्र, स्वच्छन्द मानस को पूर्ण अभिव्यक्ति के अवसर मिलते है, नाटक मे उद्गारो का कोई स्थान नही। उसमें कडे संयम और गम्भीर व्यवस्था की आवश्यकता है।

परिलेख रेडियो-नाट्यकार का निर्देशक है। उसमे जिन सकेतो का सग्रह किया गया हो उन्हीं के अनुसार नाटक का निर्माण होना चाहिए। परिलेख निश्चय ही नाट्य-निर्माण के कार्य में सबसे महत्त्वपूर्ण कदम है। यह कार्य नीरस तो है क्योंकि उसमें न वह (Excitement) सुख है जो मौलिक विचार के मस्तिष्क में जन्म लेने पर हमारे मन में पैदा होती है और न ही वह सृजनात्मक आनन्द है जो इस विचार को पात्रो द्वारा अभिव्यक्त करने में अनुभव होता है। परिलेख एक कडुवा घूंट ही सही, लेकिन यह नाटक के स्वास्थ्य के लिये बहुत ही लाभकारी है, और रेडियो पर जहाँ मिनटो-सैकिंडो के हिसाब से नपा-तुला नाटक लिखना पडता है। यह और भी आवश्यक है कि हम नाट्य-रचना पूर्णरूप से निश्चित और निर्णीत योजना के अनुसार और व्यवस्थित और अनुशासित रूप में करें।

एक अच्छे परिलेख की विशेषता यह है कि उसे देखते ही न केवल लेखक बल्कि दूसरा व्यक्ति भी समझ जाय कि नाटक का कथानक क्या रूप धारण कर रहा है। अगर हम अपनी रचना-योजना कुछ ही स्पष्ट सकेतों में क्रमबद्ध नही कर सकते तो हमें यह सोचना होगा कि जो चित्र हमारे मन में उदित हुआ है वह बहुत धुंधला है, और इसका कारण यह है कि अभी नाटक का मूल विचार परिपक्व नही हुआ था।

यह परिलेख लेखक की व्यक्तिगत अभिरुचि और शैली-कौशल के अनुरूप कई प्रकार का हो सकता है। वह एक परिच्छेद के रूप में हो सकता है जिसमें समूची नाट्य-क्रिया का विवरण दिया गया हो। वह नाटक के क्रमिक सार के रूप में भी हो सकता है। व्यक्तिगत रूप से मैं पहले की अपेक्षा दूसरे प्रकार के परिलेख को अधिक अच्छा

समझता हूँ। अगर शुरू से ही निश्चित कर लिया जाय कि दृश्यो का क्रम क्या होगा और प्रत्येक का विवरण क्या होगा, तो नाटक लिखते समय किसी भी स्थल पर असुविधा न होगी और न ही नाट्य-क्रिया की दिशा सम्बन्धी कोई सन्देह नाटककार के मन में उत्पन्न होगा। इसके साथ, क्योकि रेडियो-नाटक का सौन्दर्य, गति और बल प्रधानतः स्थित्यन्तरो (Transitions) पर निर्भर है इसलिए प्रत्येक दृश्य का आरम्भ और अन्त पूर्व-निर्णीत होना चाहिए।

परिलेख बन जाने पर उसमें इन बातो का देख लेना आवश्यक है। प्रत्येक दृश्य कितना कितना समय लेते हैं। अधिक महत्व वाले दृश्य कितना समय लेते हैं और अल्प महत्व वाले कितना। कुल नाटक निश्चित अवधि में समाप्त होता है या नही। कथा के विकास में उन स्थलो पर उचित बल दिया जा रहा है जो वास्तव में कथानक के मूल आधार हैं। कौन-कौन से पात्र किस-किस दृश्य में प्रविष्ट होते हैं। कही ऐसा तो नही होता कि अनावश्यक या अल्प महत्त्व के पात्रो को देर तक माइक पर रहने से अधिक महत्त्व मिल गया है, और केन्द्रीय पात्रो की ओर यथेष्ट और पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया। मुख्य पात्र अगर पहले दृश्य में आये है तो फिर उनका प्रवेश कही जाकर तीसरे या चौथे दृश्य में हो तो नही रहा। यहाँ इस बात पर जोर देना गलत नही होगा कि रेडियो-नाटक में मुख्य पात्रो को माइक पर रहने का अधिक अवसर और समय मिलना चाहिए। अगर किसी विशेष स्थिति में मुख्य पात्र अधिक नहीं बोल सकता तो भी उसे अधिक से अधिक समय के लिए नाटक में उपस्थित रहना चाहिए और श्रोता को उसकी उपस्थिति का बोध होता रहना चाहिए। नही तो उसका रस कम हो जायगा। परिलेख में पात्रो की सयोजना का भी ध्यान रखना होगा। यानि हमें देखना होगा कि सामूहिक दृश्यो को छोडकर जहाँ पात्रो का अस्तित्व प्रभावमात्र के लिये होता है, और कितने दृश्य ऐसे है जहाँ इतने पात्र जमा हो जाते हैं कि श्रोता के लिये दृश्य की क्रिया के अर्थ को समझना तक कठिन हो जाय। मुख्यत पात्रो और घटनाओ के उचित संयोजन पर ही नाटक का आकार और सौन्दर्य निर्भर है।

चित्रकार अपनी कलाकृति का रेखाचित्र कैनवास पर अंकित करने के पश्चात् देर तक उसे दूर बैठा देखता रहता है। वह यह देखता है कि समूची रचना (Composition) क्या प्रभाव रखती है। यह देखने के लिये कि कही उसने तालमान (Proportion) या परिप्रेक्षण (Perspective) में गलती तो नही कर दी वह रेखाचित्र को विभिन्न दृष्टिकोणों से निहारता है। इस निरीक्षण का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य रचना के आकर्षण-केन्द्र (Central Point of Interest) को सुव्यवस्थित करना है, ताकि कलाकृति के विभिन्न अगो का सम्मिलित प्रभाव मूलभूत विचार का स्पष्टीकरण और उसकी पुष्टि करे।

रेडियो-नाटककार को भी इसी प्रकार का निरीक्षण करना होगा। परिलेख में ही वह नाटक के भावी आकार और स्वरूप की परिकल्पना करता है। इसलिए परिलेख में नाटक का पूर्ण विकसित रूप प्रतिविम्बित होना चाहिए। यहाँ नाटक में यथोचित परिवर्तन करना सरल होता है, नाटक का निर्माण हो चुकने पर बहुत कठिन।

रेडियो-नाटक के परिलेख में देखना चाहिए कि कहानी का विकास किस प्रकार होता है, श्रोता का औत्सुक्य किस प्रकार जाग्रत होता है और उसकी तुष्टि किस प्रकार होती है। परिलेख में निश्चित किया जा सकता है कि नाटक का उत्कर्ष-विन्दु कहाँ पर आयेगा। उसका नाटक के समूची क्रिया मे क्या स्थान होगा। यह निश्चित हो सकता है कि नाटक का अन्त कहानी के क्रम मे किस स्थान पर आयेगा और वह किस सीमा तक श्रोता में उद्दीप्त हुए औत्सुक्य और कौतूहल को किस प्रकार शान्त करेगा।

५४. परिलेख के तीन चरण—एक साधारण परिलेख के तीन चरण होते है। पहले चरण में नाटककार अपने श्रोताओ को मुख्य समस्या से परिचित कराता है। इसे नाटकीय परिभाषा में (Exposition) अर्थात् रहस्योद्घाटन कहा जाता है। कुछ पुराने ढग के रंगनाटको में यह प्रस्तावना नौकर-नौकरानी को दृश्य पर लाकर प्रस्तुत की जाती थी। उनके सवादो से हमें नाटक के 'प्रमुख पात्रो की समस्याओ का ज्ञान होता था। उन्ही के मुख से हम केन्द्रीय घटना की पृष्ठभूमि से परिचित होते थे। जैसे ही ये व्याख्याता प्रस्तावना समाप्त करते वैसे ही प्रमुख पात्रो का प्रवेश हो जाता, और दर्शक पहले प्राप्त की हुई सूचना के आधार पर स्थिति का मूल्याकन करने का प्रयास करता। और चूँकि दर्शक के कौतूहल और उत्सुकता को पहले मे जगाया जा चुका है इसलिए वह कहानी के साथ-साथ चल सकता है।

आधुनिक नाटककार इस कृत्रिम और भद्दी युक्ति का प्रयोग नही करता। जहाँ तक हो सके वह यह उद्देश्य मुख्य पात्रो के ही सवादो द्वारा पूरा करता है। रेडियो-नाटक में जहाँ प्रभावशाली आरम्भ और वेग का अपेक्षाकृत और भी अधिक महत्व है पुराने नाटक के रहस्योद्घाटन उपकरणो का प्रयोग निषिद्ध है।

परिलेख के पहले चरण में इन आवश्यक वातो का पूरा होना अपेक्षणीय है।

इसमें पहले घट चुकी घटनाओ की समीक्षा प्रस्तुत होनी चाहिए जिनका नाटक की केन्द्रीय स्थिति से कार्य-कारण (Cause and effect) का सम्बन्ध है।

इसमें नाटक के प्रमुख पात्रो का परिचय श्रोता मे कराना चाहिए। उन्हें स्वय दृश्य में लाकर या उनके विषय में अन्य पात्रो की वातो मे इसे श्रोता के औत्सुक्य को जगाकर उसे प्रमुख पात्रो की समस्याओ के प्रति आकृष्ट कराना चाहिए और इस नवजागृत कौतूहल को नाटक के अवधि-क्षेत्र तक सजग रखने के लिये इसमें कहानी के

बहुत कम भाग का रहस्योद्घाटन किया जाना चाहिए।

दूसरे चरण में स्थिति में बहुत सी उलझनें और पेचीदगियाँ पैदा हो जाने के कारण कथानक का विकास होने लगता है। कहानी प्रगति करती चली जाती है और स्थिति विशेष में परिवर्तन होने के कारण पात्रों का चरित्र-विकास भी होता चला जाता है। पात्रो के मार्ग की रुकावटें बढती जाती हैं। श्रोता की उत्सुकता तीव्र से तीव्रतर होती जाती है। इसे नाटक का (Rising action) या उत्थानोन्मुख-क्रिया कहा जाता है। इसी में नाटक अपनी चरम सीमा या उत्कर्ष को पहुँचता है। कहानी कई मोड लेती है। हमें समस्या के समाधान का हल्का-सा आभास तो मिलने लगता है पर ऐसा स्थान नही आता जब हम यह समझने लगें कि अब पात्रो की समस्याओ का अन्त हो जायगा। प्राय देखा गया है कि यहाँ तक पहुँचकर कहानी की लय गिरने लगती है और श्रोता का कौतूहल मन्द पडने लगता है। परिलेख यदि हमें इसकी सूचना देता है तो हमें यह समझ लेना चाहिए कि नाटक के निर्माण में जरूर कही कोई न कोई दुर्बलता रह गई है। या तो पहले चरण में स्थिति को इतना प्रकट कर डाला गया है कि उसमें से रहस्य के तत्त्व का प्राय अन्त ही हो गया है, या हमने जो घटनाएँ कथानक के विकास के लिए सयोजित की हैं उनमें सघर्ष के तत्त्व का अभाव था। दूसरे चरण के अन्त का विशेष ध्यान से परीक्षण होना चाहिए।

तीसरे चरण में कथानक और अधिक विकसित हो जाता है। कहानी और प्रगति कर जाती है और श्रोता अनुभव करने लगता है कि नाटक का अन्त निकट है। नाटक के इस खण्ड में घटनाएँ अत्यन्त वेग से घटने लगती हैं और क्रिया एक ऐसी सीमा तक पहुँचती है जहाँ से एक कदम आगे नाटक को परिणति तक जा पहुँचायेगा। तीसरा चरण साधारण स्थिति में पहले चरणों से छोटा होता है। उसकी लय और गति भी पहले के चरणो से अत्यधिक तेज होती है। वास्तव में यदि समस्याओ और सघर्षो का प्रस्फुटन पहले के भागो में होता है तो उनका पूर्णरूपेण विकास तीसरे चरण में जाकर होता है। इस भाग की सफलता पर ही नाटक की सफलता निर्भर होती है। प्रतिभाशाली नाटककार की कला-कुशलता इसी से परखी जाती है कि वह अपने नाटक का अन्त किस प्रकार करता है। इसी से पता चलेगा कि उसे नाटक में अन्तर्भूत सघर्षो पर पूरा अधिकार था या नही।

नाटक की परिणति का विधान इस निपुणता किन्तु स्वाभाविकता से होना चाहिए कि श्रोता को यह सन्देह न होने पाये कि उसे नाटककार की चतुर बुद्धि ने Engineer किया है। पुराने यूनानी नाटक में यह परिणति देवी-देवताओ के मानवीय क्षेत्र में उतारने से सम्पन्न की जाती थी। यान्त्रिक युक्तियों (Deux et machina) का आज के नाटक में कोई स्थान नहीं है, क्योंकि ये साधन न केवल कृत्रिम हैं बल्कि
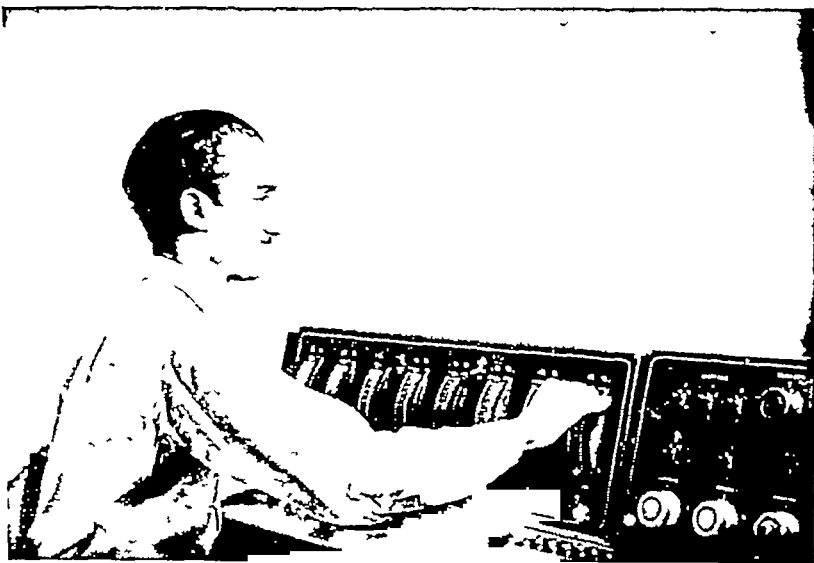
लेखक फेड बोर्ड पर

इनसे नाटक के पात्रो की प्रतिष्ठा (Dignity) भी कम होती है। नाटक की परिणति पात्रो की समस्याओ के तर्कसगत समाधान और स्वाभाविक ढग से होनी चाहिए प्रत्येक समस्या का समाधान उसके भीतर निहित रहता है, हाँ नाटककार मे उसे पहचानने की क्षमता होनी चाहिए। परिलेख के तीसरे चरण का निर्माण करते समय उसे यह देखना होगा कि उसमें ये उद्देश्य पूरे होते है या नही।

परिलेख के तीन चरण वास्तव में नाट्य-क्रिया के विकास के तीन स्थल हैं। इनमें से प्रत्येक प्रकरणमें अनेक दृश्य हो सकते है। रेडियो-नाटक मे हमें फिल्म की तरह दृश्यो के निर्माण की वहुत स्वतन्त्रता प्राप्त है। रेडियो-नाट्यकार किन अतरसूचक साधनो और स्थित्यन्तरण उपकरणो का प्रयोग करता है इसकी चर्चा अगले परिच्छेद में होगी।

"It represents a triumph of the mind that it has succeeded in creating new worlds of the senses, in which actual space and time relations are of no value, but where associations of thought, of the directing mind decide what, not only in thought, but also in the senses, belongs together" (Rudolf Arnheim)

५०. रंग-नाटक, फिल्म और रेडियो-नाटक—रंग-नाटक का निर्माण, इस शैलीभूत परिमिति को सामने रखकर किया जाता है, कि वहाँ सवेग दृश्य-परिवर्तन के लिए नये परिपार्श्व का निर्माण करना पड़ता है। कालान्तर केवल पर्दा गिराकर, या आधुनिक रगमच पर, वत्तियाँ वुझाकर और स्थानातर नया सेट लगाकर व्यक्त किया जाता है। इसमें सन्देह नही कि इन परिमितियो के होते हुए भी कुशल नाटककारो ने अपने रचनातत्र द्वारा सुन्दर और सफल नाटक लिखे हैं, लेकिन यह कल्पना नितात रोमाचक है कि अगर किसी प्रकार नाटककार की कल्पना की तरह उसका रचनातत्र भी वाधारहित होता तो वह न जाने कितने नये-नये प्रयोग कर सकता। पुराना यूनानी नाटक, एलिजाबिथ-कालीन अंग्रेजी नाटक और हमारा सस्कृत नाटक अपेक्षाकृत कम परिसीमित थे। दृश्य-परिवर्तन के लिए दृश्य-सकेतो से अधिक दर्शक की कल्पना का आश्रय लिया जाता था। इन लचीले माध्यम के वहुत से लाभ थे। रगमच की रिवाल्विग स्टेज इन प्रतिबन्धो का सामना करने का एक काफी सफल उपाय था। लेकिन इस युक्ति में भी हमे एक प्रकार की जकडन या यत्रवत्ता का अनुभव होता था। फिल्म-निर्माता एक गत्यात्मक और मुक्त कलारूप का प्रयोग करता है और रग-नाटक में गतिमयता की कमी को पूरा करता है।

प्रारम्भिक काल की फिल्मे रगमचीय परिमितियो के प्रभाव से मुक्त न थी। प्रारम्भिक काल के रेडियो-नाटक भी प्राय रगमच के ढग पर ही लिखे जाते थे। लेकिन जब फिल्म-निर्माता ग्रिफिथ ने एक दृश्य में दो विभिन्न स्थानो पर वर्तमान घटनाओ

को एक काल में समोकर प्रस्तुत किया तो दर्शक सचमुच चकित रह गये । उन्होने देखा अभी नायिका सहायता के लिए पुकार रही है और अभी नायक इस सूचना को पाते ही अपने तेज़-रफ्तार घोडे पर चल निकला है । कभी कैमरा नायिका का चित्र दिखाता है, कभी नायक का । इस प्रकार एक सयुक्त चित्रक्रम में दो विभिन्न स्थानो की घटनाओं को कलात्मक ऐक्य द्वारा एकात्म कर दिया गया था । हुआ यह था कि ग्रिफिथ ने पहले नायिका के सब चित्र (Shots) तैयार कर लिये, फिर नायक के । फिर सपादन के समय दोनो को इस प्रकार क्रास-कट (Cross-cut) किया कि दर्शक को वह एक ही चलचित्र दिखाई दिया । इस उपाय से सिनेमा ने अपनी जडवत्ता खोकर गत्यात्मकता पाप्त की, जो आधुनिक फिल्म-शिल्प की प्रमुख विशेषता है ।

रेडियो-नाटक को भी प्राय इसी प्रकार की स्वतन्त्रता प्राप्त है, यद्यपि फिल्म में रेडियो से कही अधिक वेग की सम्भावना है। फिल्म का दृश्य अत्यधिक तरल (Fluid) होता है । कारण यह कि सिने-शिल्प का मुख्य उद्देश्य छोटे-छोटे चित्रों को एक क्रमबद्ध प्रवाह में समोना है, ताकि दर्शक अलग अलग चित्रो का अनुभव न करे बल्कि एक सयुक्त गत्यात्मक चलचित्र का । यही कारण है कि एक स्थिर (Static) सवाद कई कैमरो से शू किया जाता है ताकि दृश्य में गति और सजीवता आ जाय । देखने वाला एक सीधा सपाट चित्र न पाए बल्कि एक पारिमाणिक चित्र । रेडियो-नाटक में इतने (Fluid Scene) मुक्त दृश्य की आवश्यकता नही है ।

फिल्म-निर्माता की तरह श्रव्य-निर्माता भी देश और काल सम्बन्धी प्रतिबन्धों से मुक्त है । शिल्प की दृष्टि से आधुनिक नाटक का इतिहास देश और काल के प्रतिबन्धो से मुक्ति पाने के प्रयत्नो का इतिहास है । जहाँ शास्त्रीय प्रथाओ के अनुसार नाट्य-रचना करने वाला कलाकार अपने नाटक की क्रिया का निर्माण, त्रिसधियो के सिद्धान्त के अनुसार करता था वहाँ आधुनिक नाट्यकार इनकी सर्वथा उपेक्षा करता है और अपनी कला को स्वतन्त्र अभिव्यक्ति का अवसर देता है । उसकी कल्पना निस्सीम है, फिर उसकी कला इतनी सीमित क्यो हो, उसके नाटक का क्षेत्र इतना सकुचित क्यो रहे । रेडियो-नाट्यकार भी प्राय यही उद्देश्य सामने रखते हुए अपने रचना-कौशल, अपने निर्माण-शिल्प का विकास करता है । अवधि की दृष्टि से रेडियो-नाटक का क्षेत्र बहुत ही सकुचित है । इसलिए यह अनिवार्य हो जाता है कि रेडियो-नाट्यकार एक ऐसे रचना शिल्प को अपनी कला का माध्यम बनाये जो कम-से-कम में अधिक-से-अधिक जीवन की परिकल्पना कर सके । वह चाहता है कि रेडियो-नाटक में सभी महत्त्वपूर्ण और आवश्यक घटनाएँ स्थान पा सकें, परिसीमित क्षेत्र में भी चरित्रो की अधिक-से-अधिक विशेषताओ पर प्रकाश डाला जा सके, उनका विकास हो सके । इसलिए उसके नाटक का निर्माण एक नये विधान के अन्तर्गत होता है ।

कभी वह कहानी की बहुत सी घटनाओ को एक घटना में सगठित (Compress) करेगा, तो कभी एक समस्या को अनेक दृष्टिकोणो से देखने के लिए एक घटना को छोटी-छोटी घटनाओ में बाँट देगा। कभी वह कालक्रम (Time-sequence) में परिवर्तन द्वारा अपने प्रभाव की पुष्टि करेगा तो कभी घटनाओ को आगे-पीछे करके उनमें से महत्त्वपूर्ण वृत्तो की आवृत्ति द्वारा केवल सकेतमात्र से वह कर दिखायेगा जो रगनाट्य में लम्बे-लम्बे दृश्यो, दृश्य-क्रमो से भी नही हो सकता।

५१. स्थ्यितरण और अंतरसूचक उपकरण—फिल्मो की तरह रेडियो-नाटक में देश के ऐक्य से अधिक महत्त्व काल के ऐक्य का है। देश और काल के ऐक्य के स्थान पर वहाँ वस्तु के ऐक्य (Unity of idea) पर अधिक बल दिया जाता है। माइक्रोफोन का कार्यक्षेत्र कैमेरा की अपेक्षा सीमित है, लेकिन फिर भी उसे पर्याप्त सफलता प्राप्त है। श्रव्यकार के शिल्प के महत्त्वपूर्ण उपकरण हैं दृश्यान्तर, स्वरोदय (Fade in), स्वरविलयन (Fade out), क्रॉस फेड (Cross-fade), सयुक्त दृश्य-क्रम (Montage sequence) और विगताख्यान (Flashback)। अब एक-एक करके उनकी चर्चा की जा सकती है।

५२. दृश्य-परिवर्तन—सामान्यतः अंतरसूचक उपकरणो में सबसे अधिक प्रचुर, दृश्य-परिवर्तन का उपकरण है। अगर घटना-प्रवाह कुछ सैकडो के लिए बन्द हो जाय, तो श्रोता समझेगा कि दृश्य-परिवर्तन हो गया। प्राय इस अवकाश को सगीत-लहरी से पूर्ण किया जाता है। अतरसूचक संगीत दृश्यान्तर का सूचक होने के साथ-साथ हमें एक दृश्य से दूसरे में प्रविष्ट होने के लिए एक पुल (Bridge) का काम देता है। लेकिन कुछ अवस्थाएँ ऐसी होती हैं जिनमें अतराल संगीत का उपयोग नाटक के लिए हानिकारक होता है। उदाहरणार्थ, अगर एक दृश्य को सुविधा के लिए दो भागो में विभाजित कर दिया गया हो तो ऐसी अवस्था में सगीत का आ जाना अकलात्मक होगा। श्रोता यह नही समझ पायगा कि यह अतराल सगीत क्यो आया, क्योकि दृश्य की मूलभूत एकात्मकता भग हो चुकी है। एक और स्थिति है· घटना-प्रवाह द्रुतगति से हो रहा है। अतराल सगीत से उसकी गति मन्द पड जायगी, और श्रोता का आकर्षण क्षीण हो जायेगा। ऐसी अवस्थाओ में एक अल्पकालिक मौन या पहले दृश्य का विलयन (फेड आउट) और दूसरे दृश्य का उदय (फेड इन), या दोनो का क्रॉस-फेड, या दो दृश्यो का ध्वन्यात्मक विभेद (Aural Contrast) अपक्षेणीय होगा।

५३. क्षणिक मौन—प्राय दो दृश्यो के मध्य में एक छोटा-सा अवकाश यह स्पष्ट करने के लिए काफी होगा कि एक दृश्य समाप्त हो गया, और दूसरा शुरू हो रहा है। लेकिन एक बात जरूरी है। यह अवकाश एक ऐसे स्थान पर आना चाहिए

जहाँ उसकी आशा की जा सकती हो। पहला दृश्य किस प्रकार सम्पात और दूसरा किस प्रकार आरम्भ होता है, इन बातो पर इस उपकरण की सफलता निर्भर है। सबसे अच्छा तो यह होगा कि दृश्यान्तर का संकेत संवादो मे प्रस्तुत किया जाय, जैसे ''

पहला दृश्य इन शब्दो पर अन्त होता है—

रमा—मैंने सब बातें सुन ली है विमला, मै आज रात ही मोहन से मिलने वाली हूँ। मेरा विचार है मै उसे सही रास्ते पर ला सकूँगी।

[क्षणिक अवकाश]

और दूसरा दृश्य यूँ आरम्भ होता है—

रमा—हल्लो मोहन, शायद तुम मुझे इस समय यहाँ देखकर हैरान हो रहे हो लेकिन मै एक बहुत जरूरी बात करने आई हूँ। आदि-आदि

५४. **फेड इन तथा फेड आउट अर्थात् स्वरोदय और स्वर-विलयन**—एक जगह पहले 'फेड आउट फेड इन सम्बन्धी ध्वनि-सिद्धान्त की चर्चा की जा चुकी है। इसलिए उसे दोहराने की कोई आवश्यकता नही। इतना समझ लें कि अगर स्वर-भार क्रमश बढ़ता जाय तो इसका अर्थ यह होगा कि अभिनता दूर से निकट आ रहा है। और इसके विपरीत स्वर-भार कम होता चला जाय तो इसका यह अर्थ होगा कि अभिनेता दृश्य से प्रस्थान कर रहा है, क्योकि रेडियो-नाट्य मे पात्रो की गतिविधि का चित्र माइक के ध्वन्यान्तर के परिवर्तन से ही स्पष्ट कर पाते हैं। माइक्रोफोन रेडियो-नाटक में कैमरा का काम करता है। इस सिद्धान्त पर दृश्य-परिवर्तन का 'फेड इन-फेड आउट' टेकनीक आधारित है। एक साधारण उदाहरण इस बात को स्पष्ट कर देगा। एक दृश्य में यह दिखाया जा रहा है कि कुछ मित्र बैठ गपशप कर रहे ह। अब अगर निश्चित स्थान से सम्मिलित अट्टहास को धीरे-धीरे विलीन होने दिया जाय तो यह क्रिया सूचक होगी दृश्यान्तर की। एक क्षणिक अवकाश के पश्चात् हम दूसरे दृश्य के आरम्भ का आभास इस प्रकार पाते हैं कि पति और पत्नी के तेज-तुर्श बातें करने का शब्द धीरे-धीरे मौन में से उभरता है। और हम स्पष्ट रूप से सुन रहे होते हैं कि पत्नी इस बात पर अपने पति से नाराज हो रही है कि वह दिन भर मित्रो से गपशप में मस्त रहा और उसे घर-बार की सुध नहीं रही इत्यादि इत्यादि '

यह अंतर-सूचक उपकरण एक दूसरे ढग से भी प्रयुक्त हो सकता है, यानि बिना परिवर्तन के एक ही स्थान पर कालान्तर की सूचना दी जाती है, जैसे कि इस उदाहरण में। नाटककार यह दिखाना चाहता है कि बड़ी काकी ने नीलिमा को परियों की कहानी सुनाई और फिर दृश्य की अन्य घटनाएँ उसी प्रकार से चलती रही। अब एक तरीका तो यह है कि सारी कहानी सुनाई जाय। लेकिन सीमित अवधि को देखते हुए यह कहाँ तक सम्भव होगा, और शायद ऐसा करने से नाटक की गति भी

थम जाए, इसलिए हमें यहाँ पर 'फेड इन, फेड आउट' टेकनीक की सहायता से अपेक्षाकृत गौण घटनाओ को छोड देना होगा। यह दृश्य इस प्रकार लिखा जायगा—

बूढी काकी देखो नीलिमा, अगर तुम आराम से लेट जाओ तो हम तुम्हे नीलम परी की कहानी सुनाएँगे।

नीलिमा—अच्छा काकी यह लो, मै अपने बिस्तर पर लेट गई।

बूढ़ी काकी—हां,तो सुनो। एक समय की बात है कि एक आकाश-चुम्बी पहाड पर एक नन्ही-सी परी रहती थी। उसका नाम था नीलम परी। एक दिन वह स्नान के बाद झील के किनारे बैठी अपने सुनहरी बाल सुखा रही थी कि (धीरे-धीरे स्वर-विलयन) (क्षणिक मौन के पश्चात् काकी का स्वर पुन उभरता है) और इस इस प्रकार नीलम परी और बर्फीले प्रदेश का राजकुमार दोनो सुख से रहने लगे।

इस प्रकार, कालान्तर, सफल रूप मे एक दृश्य की अनावश्यक घटनाओ को सुन्दर और कलापूर्ण ढग से सक्षिप्त कर सकता है और कथानक का प्रवाह, या दृश्य का ऐक्य भी भग नही होने पाता। रगमच पर इस प्रकार की जोड-तोड (Manipulation) बिलकुल सम्भव नही क्योंकि रगनाट्य में नाटककार को वास्तविक समय से बँधा रहना पडता है। जैसे एक पात्र प्रस्थान कर जाता है और करीब बीस मिनट में लौटता है। हमारे लिए यह स्वीकार करना कठिन नही होगा कि वह बीस मिनट नही बल्कि आध घटा बाहर रहा है। लेकिन यह नही माना जा सकता कि वह तीन दिन के बाद लौटा है। रेडियो-नाट्य में जब एक दृश्य विलीन होता है और दूसरा शुरू, तो इन दोनो दृश्यो के बीच आने वाला क्षणिक अवकाश, कई घटो, हफ्तो या सालो के अतर का सूचक हो सकता है। इन अतर-सूचक उपकरणो से हम काल-मूल्यो (Time-values) को पूर्ण स्वतन्त्रता से परिवर्तित कर सकते है। अभी मुसाफिर पगडडी पर चला ही है कि मीलो दूर की सराय उसके पास आगई। Pud ov kin इस प्रभाव को 'Bunching the effective action' कहता है।

एक बात का ख्याल रखना जरूरी है। दृश्यान्तर हमेशा स्वाभाविक होना चाहिए। दो दृश्यो में परिवर्तन ऐसा होना चाहिए जैसे एक शान्त धारा दूसरी से जा मिली हो। वह इतना स्वाभाविक होना चाहिए जितनी नीद की एक झोक। और अगर एक दृश्य और दूसरे के बीच समय का अतर काफ़ी हो तो फेड-आउट और फेड-इन के बीच एक हलका-सा अवकाश जरूर दिया जाना चाहिए।

५५. क्रॉस फेड—राजर मैन्विल क्रॉस फेड की परिभाषा इन शब्दों में प्रस्तुत करता है—

"The gradual change from one scene to another by superimposition of the images, the end of the first shot being carefully timed in relation to the emergence of the next the two shots momentarily married on the scene"

यानि पहले दृश्य को विलीन करते हुए उसे दूसरे में समाविष्ट करना ही क्रॉस फेड प्रक्रिया है। अगर एक दृश्य-प्रतीक (Visual symbol) का प्रयोग किया जाय तो हम यह कहेगे कि दो धारायें विभिन्न दिशाओ से आकर एक दूसरे से मिली और अन्तर्समाविष्ट होते ही एक धारा बनकर बहने लगीं। क्रॉस फेड से बहुत से प्रभावस्पद प्रयोग किये जा सकते हैं। हाँ, एक बात का ध्यान रखना आवश्यक है। दो ध्वनि-चित्रो के समावेश में दोनो का कुछ-कुछ अश नही सुना जा सकता। इसलिए नाटक लिखते समय इस बात का ध्यान रखना होगा कि पहले दृश्य के अन्त और दूसरे के आरम्भ के वाक्य इस प्रकार लिखे होने चाहिएँ, कि उनका कुछ भाग अस्पष्ट हो जाने पर भी कथा-प्रवाह में कोई बाधा न आने पाये। प्राय वाक्यो की अपेक्षा ध्वनि-प्रभावो को क्रॉस फेड किया जाता है। जैसे पहला दृश्य फैक्टरी के शोरो-गुल की पृष्ठभूमि पर निर्मित हुआ है, तो दूसरा नदी के शान्त कलकल पर किया जायगा। और इस प्रकार जब एक ध्वनि से दूसरी ध्वनि आविर्भूत होगी तो यह न केवल स्थान-परिवर्तन का सूचक होगा, बल्कि भाव-परिवर्तन का भी।

दो विभिन्न प्रकार की ध्वनियो का क्रॉस फेड अधिक स्पष्ट और प्रभावकर होता है। एक कुशल कलाकार दृश्य-निर्माण में इस बात का विशेष ध्यान रखता है कि विलीन होने वाले दृश्य को बदलने के लिए एक ऐसे दृश्य की रचना की जाय जो उससे अधिक प्रभावशाली हो, और दोनो के स्वरूप और स्वभाव (Mood and Complexion) का अतर स्पष्ट हो। यदि एक दृश्य में दो व्यक्ति धीरे-धीरे वार्तालाप करते सुने जायें और दूसरे में भीषण जनरव कर्णगोचर हो, तो दोनो का विभेद इतना स्पष्ट होगा कि श्रोता बडी सरलता से स्थिति-परिवर्तन के प्रभाव को ग्रहण कर सकेगा। इसी प्रकार यदि एक दृश्य के कार्यकलाप को गुजायमान (Resonent) पृष्ठभूमि पर अकित किया जाय और दूसरे का गूंजविहीन (Non-resonent) पृष्ठभूमि पर, तो श्रोता को स्थानातर को समझने में देर न लगेगी। जैसे पहला दृश्य एक पब्लिक हॉल में है, जहाँ पात्रो की वाणी प्रतिध्वनित हो रही है, और दूसरा एक साधारण कमरे में जहाँ वाणी में गूंज पैदा नही होती। या एक दृश्य शान्त पृष्ठभूमि पर अकित है और दूसरा उत्तेजित पृष्ठभूमि पर, एक लयमय (Rhythmic) पृष्ठभूमि पर, दूसरा लयशून्य (Unrhythmic) पृष्ठभूमि पर, एक (High pitched) तारस्वर की, दूसरा (Aowlpitched) मद्र स्वर की पृष्ठभूमि पर, या एक दृश्य में वातो की गति मन्द है और दूसरे में द्रुत। इन

आधारो पर अनेक प्रकार के रोचक और आकर्षक समन्वय प्रयोग में लाये जा सकते हैं, जिनसे श्रव्य-नाट्य में भी वही सौन्दर्य और विविधता आ जाती है जो रगनाट्य में परिपार्श्व परिवर्तन द्वारा प्राप्त होती है, क्योकि प्रत्येक शब्द, हल्की से हल्की ध्वनि, अपने भीतर भाव-व्यजना की इतनी सामर्थ्य रखती है जो लम्बे-लम्बे सवादो में नही। पर इसके लिए आवश्यक है कि ध्वनियो के सयोजन में विशेष सूझ-बूझ से काम लिया जाय। दृश्य की भावात्मक अभिव्यक्ति के लिए ऐसी ध्वनि या शब्द का प्रयोग होना चाहिए जिनके साथ निश्चित स्मृति-सवेदनायें (Unequivocal association) सम्बद्ध हो और उनके कर्णगोचर होते ही श्रोता पर दृश्य का वास्तविक और सूक्ष्म अर्थ स्पष्ट हो जाय। श्रव्य-शैली मूलत इस सिद्धान्त पर निर्धारित है कि प्रत्येक ध्वनि एक विशेष भाव को जगाती है, एक विशेष अर्थ का बोध कराती है। अत प्रत्येक दृश्य के परिपार्श्व को उसका नादपर्याय (Sound counterpart) देना नाटक की व्यजना (Expressiveness) को निश्चय ही बढा देगा। दिक् को ध्वन्यात्मक विशेषता (Aural character) दिये जाने का एक सुन्दर उदाहरण रूडाल्फ आर्नहाईम अपनी पुस्तक में देता है।

पहले दृश्य में एक बालक दूसरे से कहता है—"गुड बाई फिट्ज, मैं अब माँ के पास जा रहा हूँ।"

और दूसरे दृश्यो में उभरता है—"गुड ईविनिंग माँ, मैं आ गया।"

पर इस साधारण स्थानातर को ध्वनि-विभेद (Aural contrast) से स्पष्ट किया गया और उसके प्रभाव की पुष्टि की गई। पहले दृश्य की पृष्ठभूमि में गली का शोरोगुल रखा गया था, और जैसे ही इसके मन्द पडने के साथ दूसरा दृश्य आरम्भ हुआ, तो हमें केवल क्लॉक की गम्भीर टिकटिक सुनने को मिली। इस प्रकार ध्वनियो के विभेद ने स्थानातर को तो स्पष्ट किया ही, इसके साथ-साथ दो वातावरणो के विभेद को भी स्पष्ट कर दिया। इसी सम्बन्ध में वह लिखता है.

Such a scenic background, consisting of a uniform rhythm and sound delineates the general character of a scene in much more concentrated and unequivocal form than any visual decoration which can never attain the simple, clearly stylized form of the ticking of a clock

श्रव्य-कला की इन सब खूबियो (Advantages) का पूरा-पूरा लाभ उठाने के लिए हमे नाटक की कल्पना और व्यवस्था करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जहाँ तक सम्भव हो घटना-प्रवाह में ध्वनि-मूल्यो (Aural values) का समन्वय किया जाय। ध्वनि-प्रभावों के बिना भी सफल नाटक सम्भव है, पर यदि नाटक का निर्माण करते समय उसके प्रसार रूप (Broadcast form) की परिकल्पना की जाय तो नाटक वास्तव में श्रव्य-नाटक बन सकेगा।

५६. दृश्य क्रम—रंग-नाटक के विधान में छोटे-छोटे दृश्य अच्छे नहीं समझे जाते। जहाँ तक सम्भव हो कथाक्रम को कम से कम दृश्यों में उपस्थित किया जाता है। इस कला-प्रवृत्ति का कारण स्पष्ट है। मंच-विधान में दृश्य-परिवर्तन हमेशा एक समस्या ही रहा है। जहाँ कहीं कहानी प्रगति करती हुई उत्कर्ष तक पहुँची, कि 'घनश्याम' ने परदा गिराया। देखने वाले ऊबकर रह गये। लेकिन दूसरा दृश्य तैयार हो तो बेचारा 'घनश्याम' परदा उठाए। इस शिल्पगत परिमिति के कारण रंग-नाटक के विधान में अधिक स्वतन्त्रता सम्भव नहीं है। इसके विपरीत रेडियो-नाटककार कथाक्रम को अनेक दृश्यों में प्रस्तुत कर सकता है। कारण, रेडियो स्टूडियो के घनश्याम को 'परदा गिराओ परदा उठाओ' की मुसीबत नहीं उठानी पड़ती। रंग-नाटक की कालान्तर इकाई दृश्य (Scene) है, रेडियो-नाटक की क्रम, (Sequence), अर्थात् एक बड़े दृश्य के स्थान पर वहाँ छोटे-छोटे दृश्यों से निर्मित दृश्य-क्रम (Sequence) होते हैं। इनका सामूहिक प्रभाव कदाचित् वही होता है जो रंग-नाटक के एक बड़े दृश्य या अंक का।

काल के प्रवाह को छोटी-छोटी लहरों में काटने की क्या आवश्यकता है? श्रव्य-नाट्य की सफलता संक्षेप और तीव्रानुभूति (Intensity of Impression) पर निर्भर है। इसी कारण यह अनिवार्य हो जाता है कि रेडियो-नाटककार एक लम्बे घटनाक्रम में से अत्यधिक आवश्यक और आकर्षक घटनाओं का चयन और संयोजन कर सके, और अपेक्षाकृत अनावश्यक और अनाकर्षक घटनाओं का त्यजन। इस प्रकार वह कथाक्रम में से महत्त्वपूर्ण अंशों को चुनकर उन्हें एक नये क्रम में संजोकर कहानी प्रस्तुत करता है। इसके अतिरिक्त दृश्यों का देश या काल की दृष्टि से स्वतन्त्रतापूर्वक और संवेग परिवर्तन करते हुए नाट्यकार को अपने पात्रों को विभिन्न स्थितियों में, विभिन्न रूप से व्यवहार करते हुए दिखाने का अवसर मिलता है। पृथक्-पृथक् चित्रों का मिला-जुला प्रभाव एक बहुबिम्ब चित्र (multiple image) की तरह अधिक भावसम्पन्न और अधिक प्रभावस्पद होता। विभिन्न परिस्थितियों में एक चरित्र विभिन्न व्यवहार करता है। अगर श्रव्य नाट्यकार उसे विभिन्न परिपार्श्व और वातावरण में उपस्थित करते हुए उसके व्यक्तित्व का विविध रूप-रंग वाला (Kaleidoscopic) प्रति-चित्रण कर सके तो चरित्र में रंजकता, सचाई और बल आ जायगा। जितने नये दृष्टिकोणों से एक व्यक्ति को देखा जायगा उतना उसके निरूपण में रस और प्रभाव अधिक पैदा होगा। रंग-नाटक में एक अंक में अनेक दृश्यों की व्यवस्था की जाती है, और पात्रों को विभिन्न वातावरणों में दिखाकर, उनके बहुमुखी जीवन पर प्रकाश डाला जाता है। उसी प्रकार लेकिन उससे बहुत कम समय में और बहुत अधिक प्रभाव से यह उद्देश्य रेडियो नाटक के दृश्य-क्रम (Sequence) टैक्नीक से पूरा होता है।

इसी टैक्नीक के आधार पर एक अद्भुत प्रयोग की व्यवस्था की जा सकती है। क्रियाओ को एक साथ दिखाने (Simultaneity of action) का रंग-शैली में कोई प्रबन्ध नही । फिल्म की तरह रेडियो-नाटक में भी एक के बाद दूसरे (Alternating) दृश्यो के प्रयोग से ऐसा प्रभाव पैदा किया जा सकता है, कि देश-परिवर्तन करते हुए भी काल-प्रवाह को अक्षुण्ण रखा जाय । एक घटना या विचार एक ही समय विभिन्न परिस्थितियो में विभिन्न व्यक्तियो पर कैसा प्रभाव डाल रही है, यह इन बदलते-बदलते दृश्यो के क्रम द्वारा स्पष्ट रूप से व्यक्त किया जा सकता है । उदाहरणार्थ, युद्ध छिड जाने के समाचार का एक अनाज-चोर पर, एक साधारण क्लर्क पर, एक शान्तिवादी दार्शनिक पर, या एक माँ पर, जो अपना पति पिछले युद्ध में खो चुकी है, और जिसका इकलौता लडका सैनिक है अलग-अलग प्रभाव होगा इन व्यक्तियो की प्रतिक्रियाएँ विभिन्न होगी और यह चित्र (Cross-section) होगा । जन-भावना का रूपक में विशेषकर आलेखरूपक में इस कलात्मक उपकरण का बहुत प्रयोग किया जाता है । इसका प्रभाव 'सार' अलकार ऐसा होता है ।

इस प्रकार की कटिंग से कथाक्रम (Action) में उच्छृखलता नही आती, बल्कि ऐक्य आता है, क्योकि विभिन्न दृश्यो को एक ही कालक्रम में समो देने से विभिन्न स्थानो पर घटने वाली घटनाओ में ऐसा घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो जाता है, कि वे हमें अलग-अलग चित्र नही बल्कि एक ही चित्र के विभिन्न पहलू जान पडते है ।

५७ मोन्ताज अर्थात् संयुक्त दृश्यक्रम—मोन्ताज, फ्रासीसी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ दूसरी भाषाओ में सरलता से रूपान्तरित नही हो सकता । और इस शब्द का प्रयोग फिल्म में अधिक होता है । किन्तु फिल्मी परिभाषावली का यह शब्द रेडियो-परिभाषावली में आ गया है । आधुनिक रेडियो-नाटक की चर्चा इस सफल उपकरण की चर्चा के बिना अधूरी रहेगी ।

मोन्ताज का सिद्धान्त वही है जो Sequence का है । अर्थात् विभिन्न चित्रो (Shots) को एक क्रम में इस तरह सजोना कि वे अपना व्यक्तिगत अस्तित्व खोकर समरूपेण और सभाव हो जायें । इस चित्र-साम्य का प्रयोग रूसी फिल्म मे इस सफलता से हुआ कि यूरोप और दूसरे देशो के फिल्म-निर्माता उसे अपनाने लगे । इस विषय में पुडोफकिन, कूलेशॉफ और ग्रिफिथ के नाम बहुत प्रसिद्ध है । एक घटना को अभिव्यक्त करने के लिये उससे सम्बद्ध वृत्तो का इस प्रकार सामजस्य किया जाता है, कि प्रत्येक चित्र घटना के विभिन्न पहलुओ पर प्रकाश डाले और सम्मिलित प्रभाव घटना के सार को अभिव्यक्त करे । दृश्य सकलन के विषय

में पुदोफकिन कहता है Only these scenes must be assembled that most vividly emphasise visually the essence of the event represented

रेडियो-नाटककार भी इसी प्रकार अपनी कहानी की कल्पना ध्वनि-चित्रो के रूप में करता है, और विभिन्न ध्वनि-चित्रो के सामजस्य से घटनाओं की नाटकीय अभिव्यक्ति करता है। क्योकि रेडियो दूसरी कलाओ की अपेक्षा अधिक प्रभावात्मक और अभिव्यजनात्मक कला है, इसलिये मोन्ताज का प्रयोग रेडियो में बहुत सफल रहा है। रेडियो पर हम विभिन्न स्थानो और विभिन्न कालो में घटित होने वाली घटनाओं को एक ऐक्य के रूप में उपस्थित कर सकना कठिन नही।

मोन्ताज नाटक की अपेक्षा रूपक में अधिक प्रयुक्त होता है। काडगिल के शब्दो में मोन्ताज का उद्देश्य है

Wireless directly juxtaposes, what is farthest removed in space, time and thought with amazing vividness और sensory coincidence suggests a relation of content (Arnheim)

इस तरह मोन्ताज में एक भाव को क्रॉस सैक्शन किया जा सकता है, सालो और मीलो के अन्तर को कुछ ही सैकिण्डो में व्यक्त किया जा सकता है, वर्णनमात्र से कहीं अधिक प्रभाव सहित। और क्योकि मोन्ताज दृश्य-क्रम के दृश्यो की लय प्राय द्रुत होती है, इससे नाटक या रूपक का वेग भी बढता है।

आम तौर पर दो प्रकार के मोन्ताज रेडियो-नाटक में प्रयुक्त होते हैं—विभाजक (Cross-section montage) और प्रगत (Progressive montage)। एक समस्या से सम्बद्ध घटनाओ को एक एकात्मक क्रम में सयोजित किया जाता है ताकि, सक्षिप्त रूप में समस्या के विभिन्न पहलू प्रकाशित हो सकें। उदाहरणार्थ हमें यह दिखाना है कि एक सेना छोटे से गाँव में से गुजरी और उसे बरबाद कर गई। इस कहानी के प्रस्तुत करने का एक तरीका तो यह है कि नाट्यकार उन सब घटनाओ का चित्रण करे जो इस अवधि में घटित हुई हों। पर यह प्रस्तुतीकरण एक तो बहुत समय लेगा, दूसरे इसका प्रभाव भी उतना तीव्र और प्रबल न होगा जितना इस कहानी के अभिव्यजनात्मक चित्रण का होगा। इसलिये फिल्म-निर्माता पहले चित्र में लहलहाते हुए खेतो और मुस्कराते चेहरे दिखायेगा, दूसरे में भारी-भरकम जूतो का, तीसरे में एक के बाद एक कई डरे और सहमे हुए चेहरो का, और अन्त में रौदे हुए खेतो और उदास चेहरो का चित्र दिखायेगा। अलग-अलग शॉट से निर्मित यह अनुक्रम दर्शक पर एक रोमाचक और शक्तिशाली प्रभाव छोड जाता है। स्पष्ट है कि इस साधन का उद्देश्य घटना-प्रवाह में वेग लाना, और नाट्य-क्रिया के सक्षेपण द्वारा प्रभाव मे

तीव्रता पैदा करना है। मोन्ताज का एक और उद्देश्य भी है, ग्रन्थिमयी मानसिक अवस्थाओ (Complex mental states) का विश्लेषण। एक व्यक्ति से अपराध हो गया है। उसके मन में तरह-तरह के विचार उठ रहे है। वह अपराध पर परदा डालने की कोशिश करेगा पर ··अगर किसी ने देख लिया हो तो · अगर उसके व्यवहार से कुछ स्पष्ट हो जाय पर, अगर वह यहाँ से कही दूर भाग जाय तो कम से कम उसके पास मुक्ति का एक रास्ता तो रहेगा इत्यादि। इस प्रकार उसके संशय-ग्रस्त मन के स्वरो का मानवीयकरण (Personification) करके एक सयुक्त दृश्य-क्रम का निर्माण किया जायगा। एक स्वर के विलीन होते ही दूसरा उभर आयेगा और इस प्रकार भाव के विश्लेषण के साथ-साथ क्रिया की गति भी बढती जायगी। क्रॉस-सैक्शन मोन्ताज में प्रयुक्त होने वाले स्वर (Voices) नाटक के विभिन्न पात्रो की वाणियाँ हो सकते है, या सम्पूर्णतया अमूर्त्त या भावात्मक (Abstracts) ध्वनि प्रतीक। अकसर इन वाणियो के स्वर-वर्ण मे असाधारणता पैदा कर दी जाती है। स्वर को 'Filtre' करके या, उसमें किसी और प्रकार का ध्वन्यात्मक वैचित्र्य लाकर, उनके प्रभाव की वृद्धि की जाती है।

ऐसा क्रॉस-सैक्शन मोन्ताज न काल की दृष्टि से प्रगति करता है, न स्थान की दृष्टि से। लेकिन फिर भी स्थायित्व में भी वह श्रोता की गवि को गति का अनुभव कराता है। क्रॉस-सैक्शन मोन्ताज प्राय आत्म-परक होता है। और जैसा कि ऊपर कहा गया है, इसका मूल उद्देश्य चारित्रिक विश्लेषण होता है। गम्भीर स्थिति में मानसिक सघर्ष का इससे सफल चित्रण और किसी नाटकीय उपकरण द्वारा नही हो सकता। इसके अतिरिक्त क्रॉस सैक्शन मोन्ताज में किसी न किसी प्रकार का उत्कर्ष अवश्य होता है। मोन्ताज की प्रगति के साथ-साथ वाक्य छोटे होते जाते है और वार्त्ता की लय भी द्रुततर होती जाती है।

प्रगत सयुक्त दृश्य-क्रम (प्रोग्रैसिव मोन्ताज) स्थान और काल दोनो के अन्तर का सूचक है, और इसका मुख्य उद्देश्य विश्लेषण न होकर सक्षेपण है। The progressive montage covers a period of time or space or both, by telescoping the action into a series of brief scenes (Rome Cowgill)

वहुत लम्बे समय मे फैले हुए घटनाक्रम को एक मोन्ताज की सहायता से सकुचित क्षेत्र में परिसीमित किया जा सकता है। अगर हम यह दिखाना चाहे कि चीनी यात्री ह्यूनसाग ने भारत के प्रसिद्ध वौद्ध तीर्थस्थानो की यात्रा की, और फिर ताम्रलिप्ति के नौकाश्रय में पहुँचा, तो हम इस लम्बे घटनाक्रम को एक मोन्ताज क्रम द्वारा वहुत कम समय में व्यक्त कर सकते है। एक और रूपक में मैंने सम्राट अशोक के आध्यात्मिक विकास का चित्रण एक मोन्ताज द्वारा किया था जो अशोक के आदेशों,

शिलालेखो आदि के आधार पर निर्मित किया गया था। एक के बाद एक, कई स्तम्भ, आलेख और आदेश भावारूप (Abstract) स्वरो में मुखर होने गये। कलिंग युद्ध से लेकर अशोक के जीवनान्त तक के मानसिक और आध्यात्मिक विकास को मौलिक और आकर्षक ढग से प्रकाशित किया जा सका।

रेडियो-मोन्ताज के आकार में और कई प्रकार के परिवर्तन सम्भव हैं। आर्नहाईम तो यहाँ तक कहता है कि रेडियो-नाटक का आदर्श रूप एक (Montage sequence) ही होगा। रेडियो-नाटक का निर्देशक भी फिल्म-निर्माता की तरह नाटक को छोटे-छोट दृश्यो में बाँटकर तैयार करेगा, जैसे फिल्म में किया जाता है। वह लिखता है

"So long as radio-drama fails to take advantage forms and fails to use the most natural technical procedure for producing them, no real or imagination will carry broadcasting beyond the first stages . careful montage work, which is finished before the play—begins is the right policy of the future."

आर्नहाईम ने यह कई बरस पहले कहा था। रेडियो-नाटक में तो मोन्ताज का प्रयोग इस सीमा तक नही पहुँचा। हाँ, आलेखरूपक प्राय मोन्ताज टैकनीक पर प्रस्तुत किये जाते हैं। ऐसे नाटकों में जहाँ स्वर और ध्वनि के आधार पर विशेष प्रभावों का निर्माण आवश्यक हो उनमें प्राय निर्देशक मोन्ताज को पहले ही रिकार्ड कर लेता है। और मिश्रको (Mixers) द्वारा उसे नाटक की सरचना में सश्लिष्ट कर देता है। मनोवैज्ञानिक और विशपकर विश्लेषण-प्रधान नाटको के प्रस्तुतीकरण में इस टैकनीक का प्रयोग सफलता से होता है। निर्देशक मोन्ताज में प्रयुक्त होने वाले सब स्वरों को अलग-अलग रिकार्ड कर लेता है। फिर वह रुचि और चातुर्य से उन्हे अनेक सम्मिलित रूपो में रिकार्ड कर लेता है। श्रोता जब नाटक सुनता है और उसे एक ही ध्वनिचित्र मिलता है तो वह शायद कभी नही सोच सकता कि इसके निर्माण में कितना सोच-विचार या कितनी मेहनत लगी है। यह मोन्ताज हूबहू उस फिल्म मोन्ताज की तरह होता है। जब आप रजतपट पर एक ही चित्र में अनेक चित्र देखते हैं, जैसे सोने वाले के मन की गुप्त बातो का चित्र, जिसमें एक खुर्राटे मारता हुआ व्यक्ति दिखाया जाता है और उसी के ऊपर उसके अवचेतन में से उदित होने वाले विचारो का चित्र मढ दिया जाता है। उदयशकर भट्ट के नाटक 'शशिरेखा' में इसी प्रकार के (Single frame montage) का प्रयोग, निर्देशक ठाकुर ने किया था। अन्तिम दृश्य मे शशिलेखा बौद्धभिक्षु कौन्डिन्यायण का सिर लेने के लिए खडी है, कि उसके मन में से ग्लानि का स्वर उभरता है, एक गभीर चेतावनी के रूप में ""रूप नश्वर है, रूप नश्वर है 'अब जब सम्राट और

शशिलेखा के संवाद चल रहे थे तो धीरे-धीरे यह चेतावनी का स्वर भी उभरता चला आ रहा था। इसी नाटक में आगे चलकर जब भिक्षु शशिलेखा को रूप की नश्वरता का ज्ञान कराता है तो साधारण संवाद की पृष्ठभूमि पर भिक्षु की चेतावनी अनेक वैचित्र्यपूर्ण तथा विकृत रूपो में सुनाई देती है ""यह है तुम्हारा रूप ' कंकाल-मात्र ...यह है तुम्हारा रूप ''यह है तुम्हारा रूप...'' इन भीषण स्वरो का वेग और क्रूरता बढती जाती है, यहाँ तक कि शशिलेखा मूर्छित होकर गिर पडती है ''। कुशल निर्देशक ने इन सब वाणियो को पहले अलग-अलग रिकार्ड किया, और नाटक के प्रसार के समय उन्हें एक दूसरे पर चढा (Mount) दिया। इसका प्रभाव बहुत ही हृदयस्पर्शी था।

५८. विगताख्यान (Flashback)—ऊपर जिन अंतरसूचक उपकरणो (Transitions) की चर्चा की गई है, वह अधिकतर स्थानांतरिक परिवर्तन के सूचक हैं या एसे कालान्तरिक स्थित्यन्तरण के जिन में नाट्य-क्रिया का प्रवाह आगे की ओर होता है यानी अतीत से वर्तमान की ओर। पर अक्सर ऐसा भी होता है कि हमें एक अद्भुत घटना से आरम्भ करने के पश्चात् नाट्य-क्रिया का प्रवाह पीछे की ओर मोडना पडता है। कहानी का विकास, वर्तमान पर स्थित होकर, भूत को प्रकाश में लाने से होता है। इस क्रिया को 'फ्लैशबैक' या विगताख्यान कहते हैं। फ्लैशबैक-दृश्य-क्रम उन घटनाओं का नाटकीयकरण करता है, जो बीत चुकी हैं पर जिनका प्रकाश में आना नाटक की वस्तुस्थिति के प्रकटीकरण के लिए आवश्यक है। ये घटनाएँ कुछ घटे, या कई साल पुरानी हो सकती हैं। प्राय फ्लैशबैक उस समय प्रयुक्त होता है, जब एक पात्र दूसरे पात्रो को अपनी कहानी सुनाने लगता है। माइक पर एक ही पात्र का देर तक बोलते रहना अखरता है। इसलिए नाटककार उसकी कहानी के प्रमुख और महत्त्वपूर्ण खडो को नाट्य-रूपान्तरित करके अपनी रचना में प्रभाव और रोचकता भर देता है। एक विगताख्यान-दृश्य-क्रम मे एक दृश्य भी हो सकता है, और अनेक भी। नाटककार यह स्पष्ट करने के लिए कि अब वर्तमान से भूत की ओर प्रवेश हुआ है, व्याख्याता के अन्तिम वाक्यो को इस प्रकार लिखता है जैसे कहानी चलते-चलते एक रहस्यपूर्ण मोड़ से निकलकर एक नये संसार में आ निकली हो। जहाँ व्याख्याता के अन्तिम वाक्यों को ध्यान से लिखना आवश्यक है, वहाँ अतीत के दृश्यो के प्रारम्भिक वाक्यो को कम ध्यान से नही लिखना होगा। वर्तमान और अतीत के छोर यो मिलने चाहिएँ जैसे अम्बरान्त पर सन्ध्या और निशा मिलते है, दोनों का क्रमिक सम्बन्ध ऐसा होना चाहिए कि नाटक का प्रवाह कही पर रुकने न पाये। वैसे तो यह दायित्व प्रधानत निर्देशक का है कि वह व्याख्याता के संवादो का विलयन करने और फ्लैशबैक दृश्य के प्रारम्भिक वाक्यो को प्रकट करने से ही श्रोता को बतला दे कि स्थान एवं

शिलालेखो आदि के आधार पर निर्मित किया गया था। एक के बाद एक, कई स्तम्भ, आलेख और आदेश भावारूप (Abstract) स्वरो में मुखर होने गये। कलिंग युद्ध से लेकर अशोक के जीवनान्त तक के मानसिक और आध्यात्मिक विकास को मौलिक और आकर्षक ढग से प्रकाशित किया जा सका।

रेडियो-मोन्ताज के आकार में और कई प्रकार के परिवर्तन सम्भव हैं। आर्नहाईम तो यहाँ तक कहता है कि रेडियो-नाटक का आदर्श रूप एक (Montage sequence) ही होगा। रेडियो-नाटक का निर्देशक भी फिल्म-निर्माता की तरह नाटक को छोटे-छोटे दृश्यो में बाँटकर तैयार करेगा, जैसे फिल्म में किया जाता है। वह लिखता है

"So long as radio-drama fails to take advantage forms and fails to use the most natural technical procedure for producing them, no real or imagination will carry broadcasting beyond the first stages . careful montage work, which is finished before the play—begins is the right policy of the future"

आर्नहाईम ने यह कई बरस पहले कहा था। रेडियो नाटक में तो मोन्ताज का प्रयोग इस सीमा तक नही पहुँचा। हाँ, आलेखरूपक प्राय मोन्ताज टैकनीक पर प्रस्तुत किये जाते हैं। ऐसे नाटको में जहाँ स्वर और ध्वनि के आधार पर विशेष प्रभावो का निर्माण आवश्यक हो उनमें प्राय निर्देशक मोन्ताज को पहले ही रिकार्ड कर लेता है। और मिश्रको (Mixers) द्वारा उसे नाटक की सरचना में सश्लिष्ट कर देता है। मनोवैज्ञानिक और विशपकर विश्लेषण-प्रधान नाटको के प्रस्तुतीकरण में इस टैकनीक का प्रयोग सफलता से होता है। निर्देशक मोन्ताज में प्रयुक्त होने वाले सब स्वरो को अलग-अलग रिकार्ड कर लेता है। फिर वह रुचि और चातुर्य से उन्हे अनेक सम्मिलित रूपो में रिकार्ड कर लेता है। श्रोता जब नाटक सुनता है और उसे एक ही ध्वनिचित्र मिलता है तो वह शायद कभी नही सोच सकता कि इसके निर्माण में कितना सोच-विचार या कितनी मेहनत लगी है। यह मोन्ताज हूबहू उस फिल्म मोन्ताज की तरह होता है। जब आप रजतपट पर एक ही चित्र में अनेक चित्र देखते हैं, जैसे सोने वाले के मन की गुप्त बातो का चित्र, जिसमें एक खुर्राटे मारता हुआ व्यक्ति दिखाया जाता है और उसी के ऊपर उसके अर्धचेतन में से उदित होने वाले विचारो का चित्र मढ दिया जाता है। उदयशकर भट्ट के नाटक 'शशिलेखा' में इसी प्रकार के (Single frame montage) का प्रयोग, निर्देशक ठाकुर ने किया था। अन्तिम दृश्य मे शशिलखा बौद्धभिक्षु कौन्डिन्यायण का सिर लेने के लिए खडी है, कि उसके मन में से ग्लानि का स्वर उभरता है, एक गभीर चेतावनी के रूप में "रूप नश्वर है, रूप नश्वर है अब जब सम्राट् और

शशिलेखा के संवाद चल रहे थे तो धीरे-धीरे यह चेतावनी का स्वर भी उभरता चला आ रहा था। इसी नाटक में आगे चलकर जब भिक्षु शशिलेखा को रूप की नश्वरता का ज्ञान कराता है तो साधारण सवाद की पृष्ठभूमि पर भिक्षु की चेतावनी अनेक वैचित्र्यपूर्ण तथा विकृत रूपो में सुनाई देती है····"यह है तुम्हारा रूप · कंकाल-मात्र ···यह है तुम्हारा रूप ··यह है तुम्हारा रूप ··" इन भीषण स्वरो का वेग और क्रूरता बढती जाती है, यहाँ तक कि शशिलेखा मूर्छित होकर गिर पडती है ··। कुशल निर्देशक ने इन सब वाणियो को पहले अलग-अलग रिकार्ड किया, और नाटक के प्रसार के समय उन्हे एक दूसरे पर चढा (Mount) दिया। इसका प्रभाव बहुत ही हृदयस्पर्शी था।

५८. विगताख्यान (Flashback)—ऊपर जिन अंतरसूचक उपकरणो (Transitions) की चर्चा की गई है, वह अधिकतर स्थानांतरिक परिवर्तन के सूचक है या ऐसे कालान्तरिक स्थित्यन्तरण के जिन में नाट्य-क्रिया का प्रवाह आगे की ओर होता है यानी अतीत से वर्तमान की ओर। पर अक्सर ऐसा भी होता है कि हमें एक अद्भुत घटना से आरम्भ करने के पश्चात् नाट्य-क्रिया का प्रवाह पीछे की ओर मोडना पडता है। कहानी का विकास, वर्तमान पर स्थित होकर, भूत को प्रकाश में लाने से होता है। इस क्रिया को 'फ्लैशबैक' या विगताख्यान कहते है। फ्लैशबैक-दृश्य-क्रम उन घटनाओ का नाटकीयकरण करता है, जो बीत चुकी है पर जिनका प्रकाश में आना नाटक की वस्तुस्थिति के प्रकटीकरण के लिए आवश्यक है। ये घटनाएँ कुछ घटे, या कई साल पुरानी हो सकती है। प्राय फ्लैशबैक उस समय प्रयुक्त होता है, जब एक पात्र दूसरे पात्रों को अपनी कहानी सुनाने लगता है। माइक पर एक ही पात्र का देर तक बोलते रहना अखरता है। इसलिए नाटककार उसकी कहानी के प्रमुख और महत्त्वपूर्ण खडो को नाट्य-रूपान्तरित करके अपनी रचना में प्रभाव और रोचकता भर देता है। एक विगताख्यान-दृश्य-क्रम में एक दृश्य भी हो सकता है, और अनेक भी। नाटककार यह स्पष्ट करने के लिए कि अब वर्तमान से भूत की ओर प्रवेश हुआ है, व्याख्याता के अन्तिम वाक्यो को इस प्रकार लिखता है जैसे कहानी चलते-चलते एक रहस्यपूर्ण मोड़ से निकलकर एक नये ससार मे आ निकली हो। जहाँ व्याख्याता के अन्तिम वाक्यो को ध्यान से लिखना आवश्यक है, वहाँ अतीत के दृश्यो के प्रारम्भिक वाक्यो को कम ध्यान से नही लिखना होगा। वर्तमान और अतीत के छोर यो मिलने चाहिएँ जैसे अम्बरान्त पर सन्ध्या और निशा मिलते है, दोनो का क्रमिक सम्बन्ध ऐसा होना चाहिए कि नाटक का प्रवाह कही पर रुकने न पाये। वैसे तो यह दायित्व प्रधानत निर्देशक का है कि वह व्याख्याता के सवादो का विलयन करने और फ्लैशबैक दृश्य के प्रारम्भिक वाक्यो को प्रकट करने से ही श्रोता को बतला दे कि स्थान एवं

कालान्तर हुआ है, फिर भी लेखक को इसका ध्यान रखना जरूरी है।

ऐसे बहुत से सफल नाटकों का निर्माण किया गया है जिनमें प्राय सारी-की-सारी कहानी विगताख्यान द्वारा प्रस्तुत की जाती है। नाटक का आरम्भ उत्कर्ष से या उत्कर्ष के कुछ पहले एक महत्त्वपूर्ण स्थल से होता है। श्रोता के आकर्षण और औत्सुक्य को जगाकर इस पहले दृश्य के पात्रों में से एक क्रिया में भाग लेने वाला सूत्रधार (Participant Narrator) बन जाता है। यह व्याख्याता कहानी शुरू करता है और कहानी यकायक पीछे की ओर भागने लगती है। अतीत की विभिन्न घटनाएँ,जिनका धुँधला-सा सकेत हम प्रारम्भिक दृश्य के सवादो में पा चुके थे, स्पष्ट होती चली जाती है, यहाँ तक कि हम सघर्ष के वास्तविक कारण तथा समस्या के मूल स्रोत से परिचित हो जाते हैं। रहस्य के समाधान के पश्चात् कहानी फिर उसी स्थल पर जा पहुँचती है, जहाँ से कि फ्लैशबैक का आरम्भ हुआ था। ऐसे नाटको में एक समस्या उठती है कि वर्तमान दृश्य और विगत दृश्यो के स्थित्यतर को कैसे स्पष्ट किया जाए ? इसके लिए कोई विशेष विधान नही है। कभी-कभी सगीत के प्रयोग से फ्लैशबैक के विभिन्न दृश्यो का पार्थक्य किया जाता है, तो कभी केवल 'फेड ऑफ, फेड आन' ही पर्याप्त होता है। एक बात जरूरी है अगर सगीत का प्रयोग किया जा रहा हो तो मूल दृश्य का विलयन करने के लिए जो सगीत प्रयुक्त हो उसे फ्लैशबैक के अन्तराल सगीत से बिलकुल भिन्न रखना चाहिए। विगताख्यान स्थित्यतरण का एक मात्र उद्देश्य यह होना चाहिए कि कहानी में सक्षेप और प्रगाढता आ जाय, और कथा के क्रमिक विकास को अधिक स्वाभाविक और प्रभावस्पद बनाया जा सके। फ्लैशबैक एक अच्छा उपकरण है, पर जैसा कि अन्य कला उपकरणो के विषय में सत्य है, अधिक और अनुपयुक्त प्रयोग सफल के सफल उपकरण की उपयोगिता और प्रभाव को कम कर देता है। इसलिये अपेक्षित है कि इसका प्रयोग कम-से-कम हो। फ्लैशबैक दृश्य-क्रम का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

बूढी स्त्री—तू मुझे नही पहिचानता, पर मैं तो तेरे माथे पर इस निशान को देखते ही पहिचान गई कि तू मेरा सुरेन्द्र है। हाय उस दिन तेरी सौतेली माँ ने तुझे कैसा धक्का दिया था। उसने तो तुझे अपनी तरफ से मार दिया था,पर जाको राम राखा वाको किसने चाखा।

सुरेन्द्र—तुम, क्या कह रही हो ? मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा।

बूढी स्त्री—तेरी समझ में क्या आयेगा बेटा, तू तो तीन साल ही का था जब तेरे बाप ने मुझे हटा दिया था। तुझे क्या याद होगा ? जो मैं अपने बेटे के पास इस शहर में न आई होती तो भला तू आज मुझे कैसे जान पाता। न तेरी दुखियारी माँ पर विपदा पडती न मैं तेरी धाय-माँ बनती।

सुरेन्द्र—(गमगीन होकर) वह मुझे बहुत छोटा छोडकर चल बसी थी ?

बूढ़ी स्त्री—चल बसी थी। यो क्यो नही कहता उसे तेरे दुष्ट बाप ने मार डाला था।

सुरेन्द्र—मेरे बाप ने मार डाला! क्या कहती हो ?

बूढ़ी स्त्री—उसने नही मारा तो वह उस दिन के बाद फिर क्यो नही आई ?

सुरेन्द्र—किस दिन के बाद।

बूढ़ी स्त्री—जिस दिन तेरे बाप ने उसे जीने से नीचे धकेल दिया था, और उसका सिर फट गया था।

सुरेन्द्र—यह सब कुछ तुम क्या कह रही हो। तुम पागल तो नही हो ?

बूढ़ी स्त्री—मुझे कौन पागल बनायेगा, मैंने तो सब कुछ अपनी इन आंखो से देखा है।

सुरेन्द्र—तुमने क्या देखा है ?

बूढी स्त्री—तेरा बाप उसे मोटर में डालकर ले गया।

सुरेन्द्र—कहां ?

बूढी स्त्री—कही ले गया होगा। नदी पर ले गया होगा। उन दिनो नदी में कुछ कम बाढ रही थी। उसी में फेंक दिया होगा।

सुरेन्द्र—(विकम्पित स्वर मे) क्या यह सच है ? धाय-मां। वहां आजाओ पेडो के तले। वहां बैठकर मुझे बताओ मेरी मां पर क्या बीती? (माइक से दूर हटना और फिर धीरे-धीरे बातें करते हुए निकट आना।)

सुरेन्द्र—हां, यहां बैठ जाओ। अब मुझे बताओ। सब कुछ बताओ।

बूढी स्त्री—तेरे बाप ने मुझे तेरे पालने के लिए रक्खा। उसने मुझे बताया कि तेरी मां तुझे छ महीने का छोडकर मर गई है, और तेरे बाप ने दूसरी शादी कर ली थी। मैं तुझे पालती थी। तेरी सौतेली मां आंख उठाकर भी तुझे न देखती थी। तू मेरे ही पास सोता था। एक रात मै कमरे में अकेली सो रही थी (धीरे-धीरे सगीत उभरता है) कि यकायक किसी ने आकर मेरा गला दबोच···(सगीत चरमोत्कर्ष तक पहुँचकर मद पडता है फिर फ्लैशबैक का दृश्य उभरता है।) कौन है, कौन हो तुम ?

सुरेन्द्र की मां—तेरी मौत।

बूढी स्त्री—मेरा गला छोडो, मेरा दम घुटा जा रहा है।

सुरेन्द्र की मां—मै तेरा दम घोटकर ही रहूँगी। नागिन, बता मेरा बच्चा कहां है ?

बूढ़ी स्त्री—तुम्हारा बच्चा?

बूढी स्त्री—तेरी माँ खूबसूरत न थी। उसके माँ बाप भी मर गये थे। तेरे बाप को एक अमीर और खूबसूरत वेश्या चाहने लगी। उसने कहा कि तुम अपनी बीवी को छोड दो, मै तुम से शादी कर लूंगी। रुपये के लोभ में आकर तेरे बाप ने उससे शादी कर ली और तेरी माँ को छोडकर शहर चला आया।

सुरेन्द्र—उन्होने मुझे माँ से क्यो छीन लिया, मुझे अपने साथ क्यो ले आये ?

बूढ़ी स्त्री—कोई छ महीने तक वह इस तरह छुपकर तुझसे मिलती रही पर धीरे-धीरे उसका प्यार इतना बढ गया कि वह रात को भी तुझसे अलग न रहना चाहती थी। मैने कोठी के माली को भी अपने साथ मिला लिया था और अब तेरी माँ चुपचाप रात को भी मेरे कमरे में आ जाती और सुबह तक तेरे पास ही रहती। लेकिन एक दिन तेरे बाप को पता चल गया। उसने तेरी माँ को कमरे में देख लिया।

(सगीत की एक तीव्र स्वरलहरी उभरती है और दूसरा विगताख्यान दृश्य सामने आता है।)

सुरेन्द्र का बाप—तू यहाँ भी आ मरी।

सुरेन्द्र की माँ—हाँ, तुमने मुझे धोखा क्यो दिया ?

सुरेन्द्र का बाप—तुझे धोखा क्यो दिया, मैं तो तुझे ज़हर भी दे देता, शुक्र कर कि जिन्दा छोड दिया।

सुरेन्द्र की माँ—ज़हर दे देते तो अच्छा करते। मेरे बच्चे को मुझ से छीनकर तुमने मुझे जीते जी मार दिया।

सुरेन्द्र का बाप—बकवास बन्द कर और निकल जा यहाँ से।

सुरेन्द्र की माँ—मै अब यहाँ से नही निकलूंगी, मैं यहाँ से नही जाऊँगी।

सुरेन्द्र का बाप—तू नही जायगी ?

सुरेन्द्र की माँ—नहीं, नही, तू मेरा बच्चा मुझे दे दे, अपने बच्चे को पाकर फिर मै यहाँ नही आऊँगी।

सुरेन्द्र का बाप—तेरा बच्चा, यह तेरा बच्चा नहीं है।

सुरेन्द्र की माँ—नहीं, नहीं, नहीं (रो पडती है) मैं तुम से ज़बरदस्ती नही करती, विनती करती हूँ। तुम्हारे पाँव पडती हूँ। मुझ से तुमने सब कुछ छीना, मैं तुम से कुछ वापस नहीं माँगती, पर मेरा बच्चा मुझ से मत छीनो। यह मेरी आत्मा है, इसके बिना मैं तडप-तडपकर मर जाऊँगी। एक माँ से उसका आखिरी सुख मत छीनो।

सुरेन्द्र का बाप—तो तू यहाँ से जाएगी नही ?

सुरेन्द्र की माँ—मैं पुलिस के पास जाऊँगी, मैं चिल्ला-चिल्लाकर कहूँगी कि इस आदमी ने मेरा बच्चा मुझ से छीन लिया।

सुरेन्द्र की मां—हां, मैं सरकार में आवाज उठाऊंगी, मै इन्साफ कराऊंगी।

सुरेन्द्र का वाप—तो जा, लेकिन याद रख, जब तक पुलिस आयेगी, तव तक इस वच्चे की लाश...

सुरेन्द्र की मां—लाश! क्या तुम मेरे वच्चे को मार डालोगे। नही नही, मेरे जीते जी मेरे वच्चे का वाल वांका नही होगा। मैं तुम्हारे पांव पडती हूं मेरे लाल को कुछ न कहना, तुम मेरे टुकडे-टुकडे कर डालो, मुझे जिन्दा धरती में गडवा दो, पर मेरे वच्चे का वुरा न करो, मुझ पर रहम खाओ।

सुरेन्द्र का वाप—सिर्फ एक शर्त पर।

सुरेन्द्र की मां—क्या, क्या ?

सुरेन्द्र का वाप—आज से यहां न आना। वच्चा मेरे पास रहेगा, और हर तरह ठीक रहेगा लेकिन अगर तुम यहां आईं तो फिर इस वच्चे की खैर नही।

सुरेन्द्र की मां—नही, नही, ऐसा न करना।

सुरेन्द्र का वाप—तो तुम इस वक्त यहां से चली जाओ और फिर कभी इधर न आना। मजूर है यह शर्त ?

सुरेन्द्र की मां—(रोते हुए) मजूर है। अपने लाल के लिए मे जन्म भर का वनवास मांग लूंगी, देश-निकाला सह लूंगी, मे फिर कभी नही आऊंगी, पर मेरे वच्चे को प्यार से रखना, उसका वुरा न होने देना।

(वही सगीत उभरकर विलीन होता है)

सुरेन्द्र—इसके वाद मां नही आई।

बूढ़ी स्त्री—तेरे वाप को वचन देने के कई महीने वाद तक वह नही आई, उसने शहर से दूर कस्वे में झोपडी डाल ली थी और हर आठवे दिन मै जाती और तुम्हारी खैर-खवर दे आती। वह रो-रोकर तुम्हारे वारे में एक-एक वात पूछती और सैकडो चीजें देती। लेकिन वरसात आई और तुमको भीगने की वजह से जोर का वुखार चढ आया। मै पन्द्रह दिन तक उसके पास न जा सकी। उससे न रहा गया और एक रात जव वहुत वारिश हो रही थी तो वह चोरी से घर में घुस आई।

सुरेन्द्र—फिर ?

बूढी स्त्री—वह जीने पर चढी ही थी कि तेरे वाप ने उसे देख लिया। उसने एक जोर का धक्का दिया और तेरी मां लुढकती हुई नीचे जा गिरी।

सुरेन्द्र—(चीखकर) मां!

—अंधेरा-उजाला : रेवतीसरन शर्मा

अध्याय तीसरा

चरित्र चित्रण

"The radio-theatre is purely a product of the listener's imagination The studio performers bear little resemblance to the actors he visualizes It is the listener, who, hearing an old Man's voice sees white hair and wrinkles " (Cowgill)

× × ×

"It is contrasting people with contrasting purposes that make a dramatic situation" (Lawten)

५६. **महत्त्व**—नाटक के कथावस्तु को नाटक का रूप देने के लिए कथानक के निर्माण की आवश्यकता होती है, लेकिन कथानक की कल्पना, चरित्रों के बिना असम्भव है क्योंकि, श्रोता तक पहुँचने के लिए कथानक चरित्रो का सहारा लेता है। चरित्र ही ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा नाटककार अपनी वस्तु को अभिव्यक्त करता है।

एक अच्छे नाटक में कथानक और चरित्रों का पूर्ण साम्य होना चाहिये। प्रत्येक घटना जो कथा को आगे बढाती है, और नाटक के कथावस्तु को क्रियात्मक रूप देती है, किसी न किसी चरित्र के गुण अवगुण विशेष का परिणाम होती है। और प्रत्येक चरित्र-परिवर्तन किसी न किसी घटना के कारण होता है। इसलिए जैसे कथानक की कल्पना चरित्रो के बिना नही हो सकती वैसे चरित्रो की कल्पना भी कथानक (घटनाक्रम) के बिना नही की जा सकती। दोनो एक दूसरे के लिए कार्य और कारण की हैसियत रखते है। एक विशेष चरित्र एक प्रकार का व्यवहार क्यो करता है, उसका स्वभाव ऐसा क्यो है, वैसा क्यों नही, यह जानने के लिए हमें इस कार्य-कलाप के पीछे काम कर रही शक्तियो का अध्ययन करना होगा। यह उन घटनाओ पर प्रकाश डालने से होगा जो समय-समय पर किसी व्यक्ति का निर्माण करती रही है। व्यक्तित्व जो प्रत्येक चरित्र का मूलभूत आधार है, घटनाओ (परिस्थितियों) की क्रिया-प्रतिक्रिया (Action-interaction) के परिणामस्वरूप विकसित होता है। घटना में प्रगति होगी तो चरित्र का विकास होगा। चरित्र के विकास से नई घटनाएँ जन्म लेंगी और फिर ये नई घटनाएँ अन्य चारित्रिक उलझनें पैदा करेंगी और इसी तरह नाटक के क्रिया-प्रवाह के साथ साथ चरित्रो का निर्माण होता जायगा।

नाटक में या तो घटना पर बल दिया जाता है, या चरित्रो पर। घटना-प्रधान नाटक में चरित्रो को घटनाओ के आधीन रखा जायेगा, चरित्र-प्रधान नाटक में घटनाओ

को चरित्र के। नाटक किसी भी प्रकार का हो उसमें चरित्रो का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। क्योंकि किसी भी नाटकीय सघर्ष की कल्पना चरित्रो के सघर्ष तथा द्वन्द्व के अभाव में नहीं की जा सकती। नाटक की प्रत्येक परिस्थिति चरित्रो के द्वन्द्व से उत्पन्न होती है, और उसका विकास, चरित्रो के विकास के साथ-साथ होना है। ऐसे नाटक जिनमें उच्चकोटि का चरित्र-चित्रण किया गया हो हमारी स्मृति मे अधिक समय तक रहते हैं। उनके सस्मरणो के साथ कथानक की रूपरेखा भी सजीव हो उठती है।

६०. **प्रमुख और गौण पात्र**—किसी नाटक मे प्राय दो प्रकार के पात्र होते हैं—प्रमुख और गौण। ऐसे पात्र, जिनके हाथ में नाटक का सचालन हो, बहुत कम होते हैं। गौण पात्र नाटक की पृष्ठभूमि का काम देते हैं। उनके अस्तित्व से नाटक में एक प्रकार की सजीवता आ जाती है। रेडियो नाटक का क्षेत्र समय की क्रूरता के कारण बहुत ही सीमित होता है। इसलिये सब चरित्रो का समान विकास सम्भव नही। वैसे भी कला की दृष्टि से नाटक मे छाया-प्रकाश का प्रभाव पैदा करने के लिए सब चरित्रो का एक-सा विकास नही होना चाहिये। केवल उन चरित्रो पर बल दिया जाएगा जितना कथा की प्रगति और समूचे नाटक के विकास से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

गौण चरित्र भी नाटक के निर्माण में अपना स्थान रखते हैं, क्योंकि अगर हम हमेशा 'आकाश' पर ही रहे और 'धरती' पर कदम न रखें, तो हमारे नाटक में एक प्रकार की अयथार्थता आ जाएगी। प्रधान और मुख्य पात्र हमेशा आदर्श-कृत (Idealised) और किसी हद तक अतिरजित होते हैं। विशेषकर दु खान्त नाटक मे प्रधान पात्र बिलकुल असाधारण, बिलकुल अमानवी होने हैं। ऐसी अवस्था में गौण चरित्र बहुत महत्त्वपूर्ण काम करते हैं। उनकी रचना का उद्देश्य नाटक को जीवन के सन्निकट रखना होता है। गौण चरित्र मुख्य चरित्रो पर प्रकाश डालते हैं, लेकिन एक अच्छे नाटक में स्वयम् मुख्य पात्र भी यह उद्देश्य पूरा कर सकते हैं। इसके लिए यह आवश्यक है कि मुख्य पात्रो मे स्पष्ट रूप से व्यक्तिगत अंतर हो। क्योंकि—विभेद द्वारा सब चरित्र निखर उठते हैं। जैसे कि पर्सी वाइल्ड ने लिखा है—
"In it light focusses become sharp, differences pronounced, issues clear cut, and most important sympathies become natural and acute" (Wilde)

असफल नाटक में प्राय यह अवगुण होता है कि उसमें श्रोता की सहानुभूति का समान विभाजन किया जाता है। इस प्रकार दोनों का प्रभाव क्षीण हो जाता है। चरित्रो में पारस्परिक द्वन्द्व (Opposition) का होना आवश्यक है। गौण चरित्रों को भी इसी प्रकार इन दो धुराओ (Axes) की परिक्रमा करते रहना

चाहिये ताकि श्रोता स्पष्ट रूप से समस्या को समझ सके।

ऐसे मुख्य पात्रो का अधिक सख्या में होना भी नाटक के लिए बुरा है क्योकि न तो रेडियो-नाटक के सीमित अवधि-क्षेत्र में उनका पर्याप्त विकास हो सकता है, और न ही वे अपना मूल और सबसे महत्त्वपूर्ण उद्देश्य, श्रोता के औत्सुक्य का केन्द्रीयकरण, पूरा कर सकते हैं। अगर आध दर्जन 'मुख्य पात्र' श्रोता के औत्सुक्य, उसकी सवेदना के लिए इच्छुक रहें तो नाटक का ऐक्य निश्चय ही भग हो जायेगा। सगठन और गुफन के स्थान पर वहाँ उच्छृखलता आ जायेगी।

नाटक में केवल उतने मुख्य और गौण पात्र होने चाहियें जितने नाटक क वास्तव की प्रभावशाली अभिव्यक्ति के लिए अनिवार्य हो। इसके अतिरिक्त, उनका सयोजन और विभाजन इस दृष्टि से किया जाना चाहिये कि कलाकृति का ऐक्य भग न होने पाए। एक सतुलित चरित्र-योजना में मुख्य पात्र तीव्रता और एकाग्रता के प्रभाव की पुष्टि करेंगे, और गौण पात्र नाटक में विस्तार और व्यापकता लायेंगे। वे प्रतिनिधि और प्रतीक होगे उस स्थायी धरती के जिसके रगमच पर अनेकों परिवर्तन और क्रान्तियाँ आती रही लेकिन उसका स्थायित्व अब भी अभग है। वे नाटक में चौथे परिमाण को उपस्थित करते हुए नाटक में ठोसपन (Rotundity) लाते हैं।

६१. **चरित्र-निरूपण का आधार**—नाटककार एक सीमित क्षेत्र में एक पूरे ससार का निर्माण करता है। इस ससार के सब वासी और इसकी सब घटनायें उसकी सृजनात्मक कल्पना के आधीन होती है। यह प्रश्न स्वाभाविक है कि इस कल्पित ससार का आधार क्या है ? उत्तर सरल है कल्पना जगत उस अनुभव पर अवलम्बित है, जो लेखक बाह्य ससार से प्राप्त करता है। प्रत्येक चरित्र की रचना-सामग्री वह उन व्यक्तियो से प्राप्त करता है जो उसके जीवन में आये हो, परिचितो के रूप में, मित्रों के रूप में, या मात्र अपरिचित सहचरो के रूप में। जब एक चरित्र विशेष उसके मस्तिष्क में जन्म लेता है तो वह एक निराकार अनुभूति के रूप में होता है। इस सूक्ष्म तथा छायावी मानस-चित्र को एक जीते-जागते इन्सान का आकार और प्रकृति देना ही चरित्र-चित्रण का चमत्कार है। यह कल्पित चरित्र जीवन से कितना समीप है, और उसमें कितनी सच्चाई है, यह परखने के लिए हमें यह देखना होगा कि चरित्र में वास्तविकता और स्वाभाविकता है या नही, वह हमें एक अद्भुत प्रदेश के विचित्र प्राणी-सा लगता है या हमारे चारो ओर घूमने-फिरने वाले साधारण प्राणियो जैसा। चरित्र, परिस्थितियों की पारस्परिक क्रिया-प्रतिक्रिया से जन्म लेता है, इसलिए उसे नाटक की घटनाओ से उद्बुद्ध और आविर्भूत लगना चाहिए, जिन्हें क्रियात्मक रूप में अभिव्यक्त करने के लिए उसका निर्माण किया गया है।

जब हम एक भीड को देखते है, तो हमारे मानस पर जन-समूह का एक धुंधला-सा चित्र खिचता है, यद्यपि इसकी रचना बहुत से प्राणियो के सस्थान-साम्य से हुई है। इस भीड की प्रत्येक इकाई का अपना महत्त्व है, प्रत्येक चेहरे के पीछे एक गम्भीर वैयक्तिक जीवन है। इस जीवन में अनेक घटनाएँ है, अनेक गुप्त रहस्य और विलक्षण ग्रन्थियाँ है। लेकिन जब हम भीड को देखते है तो इस सत्य का बोध नही पाते। अब अगर हम इस भीड का विश्लेपण करें, प्रत्येक इकाई को पृथक-पृथक करके उसका परीक्षण करें, तो हम देखेंगे कि ऊपरी समरूपता और एकता के होते हुए भी प्रत्येक व्यक्ति भिन्न है। उसकी अपनी स्पष्ट विशेषता है।

प्रत्येक व्यक्ति की यह मूलभूत विशेपता चरित्र का बीज है। यही विशेपता विकसित और परिवर्द्धित होकर चरित्र का रूप लेती है। प्राय यह विशेपता एक सकेत-मात्र होती है, जिसे नाटककार की कल्पना आधार मानकर उस पर एक चरित्र निर्मित करती है। सूक्ष्म प्रेरणा को साकार करने के लिए नाटककार अपने अध्ययन और अनुभव की सहायता लेता है। चरित्र का जीवन-सादृश्य, प्रेरणा की वास्तविकता पर निर्भर है।

इस रंग-रगीली दुनियाँ में कई प्रकार के लोग बसते हैं। इनमें से बहुत सो के व्यक्तित्व आवरणो मे छिपे रहते हैं। इसलिए उनकी वास्तविकता को पा सकना प्राय कठिन होता है। पर मन की बात को अधिक समय तक छिपाए रखना हमेशा सम्भव नहीं होता, इसलिए इन रहस्यपूर्ण व्यक्तियो से भी कभी-कभी ऐसा व्यवहार हो जाता है, उनके मुख से ऐसी बात निकल पडती है कि इस सकेत-मात्र के आधार पर नाटककार की कल्पना के लिए एक बहुमुखी व्यक्तित्व वाले चरित्र का निर्माण सम्भव हो सकता है। एक आकर्पक चेहरा, एक कँटीली या विपैली मुस्कान, बोल-चाल का ढग, कोई चुभता हुआ फिकरा, हमें जैसे सोचने पर मजबूर कर देता है, कि इस संकेत के पीछे क्या है? यही उत्सुकता नाटककार को व्यक्ति विशेप की मूलभूत विशेषता को पहचानने के लिए अन्तर्दृष्टि प्रदान करती है।

पर एक साधारण मनुष्य की किसी भी विशेपता को वास्तविक रूप में आकर्पक बनाने के लिए नाटककार को उसे हमेशा कुछ अतिरंजित करना पडता है। यहाँ नाट्यकार की कल्पना एक Magnifying lens का काम करती है। इस प्रकार प्रत्येक नाट्य-चरित्र में अतिशयोक्ति का कुछ-कुछ अश पाया जाता है। दु खान्त में कुछ कम हास्य और व्यग-प्रधान नाटको मे अधिक। इससे यह न समझना चाहिये कि ऐसे चरित्र जीवन के समीप न होगे। कला में अगर आदर्श का अश न हो तो वह जीवन की एक भावशून्य अनुकृति मात्र होकर रह जायगी। उसमें रस अति-रजन का सर्वथा अभाव रहेगा।

६२. एक चरित्र के विविध पक्ष—अब अगर यह कहा जाय कि इस विशेपता का विकास ही चरित्र-चित्रण का उत्कर्ष है तो यह एक अत्यन्त विकृत धारणा होगी। कारण यह कि सरल से सरल व्यक्तित्व के भी एक से अधिक पक्ष होते हैं। किसी-किसी स्थिति में तो इन दो पक्षों का परस्पर विरोध इतना स्पष्ट होता है कि प्राय ऊपरी दृष्टि से देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि ये दो विभिन्न व्यक्तियो के व्यक्तित्व हैं, एक के नही। वास्तव में एक नाटकीय चरित्र साधारण नही होता, असाधारण होता है। उसकी प्रधान प्रवृत्ति को यदि केन्द्र मान लिया जाय तो कह सकते हैं कि इस केन्द्र की परिक्रमा करती हुई हमें अनेक और प्रवृत्तियाँ, अनेक विशेपताएँ मिलेंगी, जो केन्द्रीय प्रवृत्ति से भिन्न होते हुए भी समूचे चरित्र का अनिवार्य अश हैं। प्रधान विशेषता और सहायक विशेषताओ का वही सम्बन्ध है जो एक अणु में इलेक्ट्रोन (Electron) और प्रोतॉन (Proton) का होता है।

एक ही विशेपता या प्रवृत्ति पर आधारित साधारणीकृत चरित्र कभी सफल नही होगा क्योकि—"Fundamentally type characterisation rests on a false premise, namely, that every human being may be adequately represented by some dominant characteristic or small group of closely related characteristics" (Prof Baker)

वस्तुवादी नाटक में साधारणीकृत चरित्रो का कोई स्थान नहीं क्योकि उनसे न केवल कृत्रिमता की गन्ध आती है वल्कि ऐसे चरित्र श्रोता को विस्मय के आनन्द से वंचित रखते हैं। वह समझ लेता है कि यदि एक स्थिति में एक चरित्र ने एक प्रकार का व्यवहार किया है तो दूसरी समान स्थिति में भी वह वैसा ही व्यवहार करेगा। जिज्ञासा का अन्त हो जाने पर श्रोता चरित्र में उतनी दिलचस्पी नही ले सकता। इसके विपरीत अगर चरित्र की मौलिक जटिलताओ को सरलीकृत न किया जाये, वल्कि उसे आश्चर्यमय वैविध्य की सभी सुन्दरताओ सहित प्रस्तुत किया जाये तो चरित्र में सजीवता और इसके परिणामस्वरूप नाटक में सत्यता और रजकता पैदा हो सकेगी। एक ही दृष्टिकोण से देखे जाने वाले चरित्र सिलहुट चित्र की तरह होते हैं, उनमें यथार्थता के अन्य परिमाण नही होते।

हाँ, यह साधारणीकरण गौण चरित्रो के निरूपण के लिए बुरा नही। क्योकि अल्प महत्त्व के चरित्रो को वहुत कम स्थान मिलेगा इसलिए थोडे समय में अधिक प्रभाव पैदा करने के लिए इस 'Human shorthand' का प्रयोग किया जा सकता है।

६३ हेतु—चरित्र किसी भी प्रकार का हो उसमे स्वाभाविक हेतुमत्ता का होना उतना अनिवार्य है, जितना शरीर के लिए प्राण का। उनके आचार-व्यवहार

के लिए श्रोता के सम्मुख कोई तर्क-सगत कारण अवश्य होना चाहिये। कुशल नाट्यकार प्रयत्न करता है कि उसकी कल्पना के ये साधारण चरित्र स्वाभाविक रूप से असाधारण लगें। अथवा उनमें 'इन्सान' स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हो। वे हमें एक तीव्र बुद्धि और चतुर मस्तिष्क का चमत्कार मात्र या कोरी कल्पना न लगें बल्कि-हाड-मांस के बने हुए विचार-युक्त अनुभावयुक्त मनुष्य लगें, जिन्हे हम समझ सकें, जिन्हे हम अपनी सवेदना दे सकें, जिनके साथ हम नाटक के कल्पना-जगत में विहार कर सकें। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वह प्रत्येक चरित्र का हेतु (Motivation) स्पष्ट करता है, अर्थात् उसकी क्रियाओ-प्रतिक्रियाओ की मनोवैज्ञानिक पार्श्वभूमि पर पर्याप्त प्रकाश डालता है, ताकि प्रत्येक व्यावहारिक परिवर्तन कारण-युक्त प्रतीत हो।

६४. *सप्राणता और परिवर्तनशीलता*—कठपुतली भी गति करती है, नाचती-कूदती है, लेकिन उसमें प्राण नही होते। वह केवल कठपुतली वाले की तुनक-झोक से नाचती है। जीते-जागते इन्सान ऐसा नही करते। वे भी नाचते-कूदते हैं, गति करते है लेकिन स्वेच्छा से। और उनमें सोचने की शक्ति होती है, भावनाएँ होती हैं, धारणाएँ होती हैं। प्राणवान होने के कारण उनमें परिवर्तनशीलता होती है, विकास की शक्ति होती है। वे समय-समय पर भिन्न व्यवहार करते है। कभी 'अच्छे' बुरा काम कर बैठते है, कभी 'बुरे' अच्छी बात करने के लिए जीवन समर्पण करते दिखाई देते है। एक कुशल चरित्रकार इस तथ्य को समझता है, और वह नाटक की प्रगति के साथ-साथ अपने चरित्रो का विकास करता रहता है। वह प्रत्येक चरित्र को विशेषता देने के साथ-साथ उसे एक व्यक्तित्व भी देता है, जो स्थित्यात्मक (Static) न होकर गत्यात्मक (Dynamic) है। इसलिए प्रत्येक सफल चरित्र कठपुतली होने के बजाय जीता-जागता इन्सान होता है। वह जो भी करता है एक उद्देश्य से, अगर कुछ नही करता तो उसका भी कारण होता है। इसी उद्देश्य (Motive) द्वारा हम जान जाते है कि एक चरित्र विशेष के विषय मे उसके निर्माता (रचयिता) का क्या मत है। उसकी प्रकृति और उसकी मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि के आधार पर उसने जीवन सम्बन्धी क्या मान्यताएँ निर्धारित की है। अगर स्वय रचयिता ने अपने चरित्र के केवल बाहरी रूप को देखा है उसके मन के अन्तर्विरोधो और मूल प्रतिकूलताओ को नही समझा, तो उसका चरित्र-निरूपण असफल और अविश्वसनीय (Unconvincing) होगा।

वस्तुत एक चरित्र की सफलता उसकी सत्यता पर निर्भर है। अगर चारित्रिक परिवर्तन स्वाभाविक प्रतीत नही होते तो न केवल चरित्र का प्रभाव क्षीण पडता जायेगा बल्कि नाटक की क्रिया पर भी इनका बुरा असर पडेगा। प्राय हम चरित्र-

विशेष के एक पहलू पर विचार कर रहे होते हैं कि नाट्य-क्रिया से एक ऐसी परिस्थिति का जन्म होता है कि उसमें चरित्र एक और प्रकार का व्यवहार करने लगता है। अब अगर इस आकस्मिक वैपरीत्य को स्वाभाविक न बनाया जाय, तो नाटक में यथार्थता नही आ सकेगी। वास्तव में यह वैपरीत्य ऐसा नहीं होता जिसका मनोवैज्ञानिक स्पष्टीकरण प्रस्तुत न किया जा सके। इस प्रतिकूलता का प्रादुर्भाव हमेशा उसी प्रकृति से होता है जिसके एक पहलू पर हमने कुछ समय पूर्व विचार किया था। नाटककार एक-एक करके सभी आवरण उठाता चला गया, यहाँ तक कि हम उस मूल सत्य तक पहुँच गये जो विचित्र होते हुए भी चरित्र का मूल गुण, उसके असाधारण व्यवहार का मूल कारण है। स्टीवेंन्सन की विश्वविख्यात लघुकथा 'मारखीम' में हम इसी प्रकार की क्रिया देखते है। कथान्त तक पहुँचने पर मारखीम के व्यक्तित्व का वह पक्ष प्रकाशित हो उठता है जिससे कदाचित् वह स्वय परिचित न था।

सारत चारित्रिक क्रान्ति तर्कसगत, और प्रकृति-जन्य होनी चाहिये, ऊपर से लादी हुई या प्रतिभा-चातुर्य की जोडतोड नही।

६५ **ध्वनि-मूल्यों का समावेश**—चरित्र की सैद्धान्तिक विवेचना के पश्चात् अब हमें यह देखना होगा कि रेडियो-नाट्यकार किस प्रकार चरित्र-निरूपण करता है। उसका लक्ष्य क्या है, और उसकी प्राप्ति के लिए वह किन साधनो, उपकरणो का उपयोग करता है।

पहले परिच्छेदो में श्रव्यकला के मूलभूत सिद्धान्तो की चर्चा करते हुए कहा गया था कि श्रव्यनाट्य का मुख्य प्रभाव विविधता (Diversity) न होकर प्रगाढ़ता (Intensity) का है। श्रव्यनाट्य का रचना-विधान केवल उन वस्तुओ को स्वीकार करता है जिनका सवेद केवल श्रुति द्वारा प्राप्त हो सके। इस प्रकार श्रव्यनाट्य के वर्णन में सरलीकरण (Stylization) आवश्यक हो जाता है। इस सरलीकरण (Abstraction) से चित्र में कोई त्रुटि या उसकी रजकता में कोई विशेष कमी नही आती, यह भी हम देख चुके है। बल्कि हम तो इस परिणाम पर पहुँचे थे कि वस्तु का क्रियात्मक और गत्यात्मक वर्णन श्रव्यकला में अधिक सफलतापूर्वक सम्भव है। क्योंकि—

"नाद का धर्म गति है अत कान के लिए स्थिति की अपेक्षा घटना अधिक श्रव्य-परक है।

इस सरलीकरण द्वारा हम केवल क्रियाशील स्थायित्व को ही स्वीकार करते है क्रुद्ध आदमी की सर्वथा निश्चेष्ट मूछो का हास्यास्पद उदाहरण आपको याद होगा।

६६ स्वर-विभेद—रेडियो-नाट्य के चरित्र-चित्रण में भी इसी प्रकार का सरलीकरण और प्रतीक-योजना (Symbolization) का प्रयोग

किया जाता है, अत रेडियो-नाटक में चरित्र की समूची विशेषता को स्वर द्वारा व्यक्त किया जायेगा। इस प्रकार स्वर प्रतीक होगा एक प्रवृत्ति का। रगमंच पर चरि विशेष की आकृति उसकी वेश-भूषा, हावभाव उसकी चारित्रिक विशेषता की व्याख्‍ करते है। रेडियो-नाटक में इन प्रसाधनो का कोई उपयोग नही है। वहाँ चरित्र-चित्रण के लिए विभिन्न पात्रो के वाक्यो, उनकी भाषा, उनकी सम्बोधन-शैल उनके पारस्परिक स्वर-भेद पर ही निर्भर रहना होगा। स्वर मात्र से चरित्र की प्रकृ का कितना अश स्पष्ट रूप से उद्‌घाटित हो जाता है, यह हमें अपने दैनिक जीवन प्राय अनुभव होता रहता है स्वरमात्र से ही हम व्यक्ति विशेष की शिक्षा, स्वभा और अन्य विशेषताओ के सम्बन्ध में अनुमान लगा लेते है और यद्यपि प्रत्येक नायि मधुर कठी और प्रत्येक प्रतिनायक क्रूर स्वर वाला नही होता, फिर भी चरित्र व्यक्तित्व का प्रतिबिम्ब हमें उसके स्वर में दिखाई दे जाता है।

इस प्रकार का चरित्र-चित्रण मुख्यतः विभेद पर आधारित होता है। इसलि एक चरित्र को दूसरे से अलग पहचानने के लिए उनकी ध्वन्यात्मक रूपरेखा को कु गहरा कर दिया जाता है। यह प्रक्रिया चित्रकला की एक उपमा द्वारा स्पष्ट हो जायगी अगर एक ऐसे चित्र की रचना करनी हो जिसमें बहुत-सी आकृतियाँ है तो कुशल चि कार इसका विशेष ध्यान रखता है कि दो आकृतियो के सम्यान (Contiguity) भेद (Contrast) से स्पष्ट करे। वह उनके आकार में, वेशभूषा में, रंग में भिन्न पैदा करेगा, ताकि एक पूर्ण चित्र को अविच्छिन्न अग होते हुए भी प्रत्येक आकृ अपना व्यक्तित्व न खोए। कभी-कभी वह आकृति-रेखा को गहरा कर देता है, क प्रकाश और छाया की योजना द्वारा आकृति-भेद को स्पष्ट करता है। रेडियो-नाटकक भी इसी प्रकार की रूपरेखा को गहरा करने (Outlining) और महत्त्वपूर्ण स्थल के उभार (Highspotting) से काम लेता है। इसके अतिरिक्त जैसे चित्रक चित्र के आकर्षण-केन्द्र को हमेशा प्रकट विशिष्टता देता है, वैसे रेडियो-नाटककार नाट के केन्द्रीय चरित्रो पर अधिक बल देता है। रेडियो-निर्देशक भी स्वरभेद के आध पर श्रव्यचरित्रो का निर्माण करता है। इसलिए अगर नाटककार भी चरित्रो स्पष्ट और विशिष्ट वाणियो में विभाजित करने में उसकी सहायता करे तो नाट के प्रभाव में निश्चित वृद्धि होगी। रेडियो-नाटक सुनने में आपने प्राय. अनुभव कि होगा कि अगर एक दृश्य में एक प्रकार के दो स्वरो मे परिचय हो तो दोनो चरि के प्रभाव को हानि पहुँचती है। एक और बात। रगमच पर चरित्रो का प्रवेश दृ मात्र से स्पष्ट हो जाता है। श्रव्यनाटक में प्रवेश का ज्ञान पात्र के मुखर होने होता है। अगर माइक पर आते ही एक चरित्र अपना परिचय दे दे, तो नाटक स्पष्टता के साथ प्रभाव भी आता है।

६७. **मौखिक विशेषता**—रेडियो-नाटक में प्रत्येक चरित्र को कोई-न-कोई मौखिक विशेषता देना अपेक्षणीय है। इसके लिए आवश्यक है कि चरित्रों की कल्पना आकृतियों के रूप में न करते हुए स्वरों के रूप में की जानी चाहिए। शायद प्रत्येक चरित्रों को मौखिक विशेषता देना सम्भव न हो। पर जितने ही चरित्रों को ध्वनिगत विशेषता दी जा सके, अच्छा होगा। स्वरभेद द्वारा अगर एक मौखिक विशेषता वाले चरित्र को दूसरे साधारण और विशेषता-रहित पात्रों के साथ रखा जाय तो साधारण चरित्रों की साधारणता का प्रभाव बढ़ जायेगा। यहाँ एक चेतावनी भी अनुचित या अनुपयुक्त न होगी। मौखिक विशेषता उस समय तक वांछनीय है जब तक कि चरित्र के वास्तविक रूप में कोई परिवर्तन न आये। अगर इस रूपरेखा का चरित्र के नैसर्गिक रूप, उसकी स्वाभाविकता को हानि पहुँचती हो, उसमें कृत्रिमता या विकार आता हो, तो यह निश्चय ही बुरा होगा।

अध्याय चौथा

संवाद

"We learn about people by what they do and say. In radi we learn about people and what they do, by what they say or wha is said about them" (Lawter

"The immediate and principal destiny of radio-words is th ear of the listener (L) What is known as the aural radio-style c writing is simply a formulation of the principles of writing for listener who hears the world alone, without benefit of gesture an illustration" (Cowgil

"One of the best ways to approach the problem of writin natural-sounding dialogues is to pretend that you are the characte in that situation." (Lawten

६८ महत्त्व—कथानक नाटक की गत्यात्मकता व्यक्त करता है। कथानक को साकार और सजीव करते है सवाद। चरित्र का परिचय भी हम संवादो द्वार प्राप्त करते है। चरित्रो के विषय में हम जो धारणा बनाते है वह या तो उन वाक्य पर अवलम्बित होती है जो वह स्वय बोलता है, या उन पर जो एक चरित्र के विषय में दूसरे चरित्र बोलते है। यही वाक्य सवाद है।

रगमच पर तो बिना शब्दो के भी कथानक के कुछ पहलुओ पर प्रकाश डा सकते है, हावभाव आदि से। इसी तरह फिल्म में शब्द से अधिक दृश्य सकेत कथान की व्याख्या एव अभिव्यजना करते हैं। फिल्म में मूक अभिनय (Mimic) जितन प्रभावशाली है, उतना पात्रो का शब्दाडम्बर नहीं। बल्कि एक अच्छे फिल्म के महत्त्व पूर्ण स्थल प्राय सम्पूर्ण रूप से मात्र दृश्यात्मक होते है। रेडियो-नाट्य मूलत ध्वन्या त्मक है, अतः उसमें मूक अभिनय का कोई स्थान नही। रेडियो में केवल वही कु वास्तविक और सजीव है जो गत्यात्मक और शब्दमय है। अत संवाद ही रेडियो नाटक के प्राण है।

रेडियो-नाट्य के निर्माण-शिल्प का यह महत्त्वपूर्ण मूलभूत आलम्बन अने उद्देश्य पूर्ण करता है। इनके द्वारा हमें ज्ञात होता है कि नाटक के प्रारम्भ से पू क्या कुछ हो चुका है, अब क्या हो रहा है, और आगे चलकर क्या कुछ होने वा

है या हो सकता है। सवाद कथानक के विकास का माध्यम हैं। सवाद श्रोता को पात्रो की गतिविधि का आभास कराते हैं और नाटक के परिपार्श्व आदि की विशेषताओ और गुणो पर प्रकाश डालते हैं, वातावरण की सृष्टि करते हैं। सवाद ही रेडियो नाट्य में चरित्र-निरूपण का एकमात्र साधन है। इन विभिन्न उद्देश्यो पर आगे चलकर सविवरण विचार किया जायेगा। यहाँ हमें केवल यह देखना है कि साधारणत अच्छे सवाद के क्या गुण होते हैं, और उनमें और रगमच के सवादो में क्या भेद रहता है ?

६९. रेडियो-संवाद के गुण और विशेषताएँ—रेडियो-सवाद केवल सुने जाने के लिए होते हैं, रंगमच के सवाद श्रुति और दृष्टि दोनों के लिए। यह बात कुछ विचित्र लगती है क्योंकि शब्द का ज्ञान केवल श्रुति से ही हो सकता है, उसका दृष्टि से क्या सम्बन्ध। लेकिन अगर हम रगमंच के सवादों को प्रसारित होते सुनें तो हमें निश्चय ही आभास होगा कि रेडियो-सवाद और मच-सवाद में कितना अतर है। सबसे पहली बात जो इस अवभास द्वारा हमें प्रकट होगी वह यह है कि रगमचीय सवाद प्राय ऊँचे स्वर में बोले जाने के लिए हैं, माइक-सवाद हल्के स्वर में बोले जाने के लिए। यह अतर उस समय भी हमारे सामने आयेगा जब हम किसी रेडियो-स्टुडियो में जाकर नाटक को अभिनीत होते देखें। हमें आश्चर्य होगा कि अभिनेता कोई विशेष हलचल नही कर रहे। वे यूँ आपस में बातचीत कर रहे हैं जैसे वे एक दूसरे के कानों में बात कर रहे हों। बी बी सी के प्रसिद्ध निर्देशक (Felix Felton) के सुन्दर शब्दों में, रगमच की शैली (Megaphonic) है, रेडियो-शैली (Microphonic)। श्रव्य प्रसार के लिए साधारण स्वर (Normal tone) अति-आवश्यक है। रेडियो वार्ताओं में कभी-कभी सुनने में आता है कि वक्ता अपने विचारो को श्रोता तक पहुँचाने के लिए माइक से बात नही करता बल्कि माइक में से बात करने का प्रयास करता है। शायद यह सोचकर कि वह अनेक स्थानो पर बैठे हजारो-लाखो श्रोताओ को सम्बोधित कर रहा है, वह चीखने लगता है। इस धृष्टता को श्रोता अच्छा नही समझता। इन दो भाषा-शैलियो का अतर केवल शब्दों के Volume या स्वरभार का नहीं, बल्कि भावावस्था (Emotional condition) का है। श्रोता की ओर वक्ता (लेखक+वक्ता) के व्यवहार का है। एक समय था जब कहा जाता था कि रेडियो व्यक्ति को नही समष्टि को सम्बोधित करता है। अब यह धारणा मान्य नहीं है, क्योंकि अब यह कहा जाता है कि रेडियो समूह में से प्रत्येक व्यक्ति को, पृथक-पृथक सम्बोधित करता है। रेडियो-सवादो में स्वर (Tone) का बहुत अधिक महत्त्व है। इसी कारण सवाद लेखक को रचना-क्रिया के समय इस बात का विशेष ध्यान रखना पडता है कि उसके सवाद भावातिरेक के

कारण जो प्राय· (False tone) में कम होता है, प्रभाव-रहित और हास्यास्पद न लगने लगें। लच्छेदार, रंगीन, जोशीले, थियेट्रिकल संवाद रेडियो-नाटक के लिए अनुपयुक्त है। रेडियो-संवादो में प्रभाव भरने के लिए व्यवस्थित और अनुशासित भावना की आवश्यकता है। स्वाभाविकता इस सवाद-शैली का मुख्य गुण है, अतिरजन और बनावट इसका सबसे बडा दोष।

नीचे दिये गये इन दो उदाहरणो के तुलनात्मक अध्ययन से गुण और दोष दोनो की व्याख्या हो जायेगी।

श्याम—ओह राधा, तुम्हें देखकर मेरे अन्तस्थल में भावनाओ का ज्वार आलोडित होता है।

राधा—श्याम, मै क्या कहूँ ? शब्द मेरे भावो को सम्पूर्ण रीति से व्यक्त नही कर पाते। परन्तु तुम मुझे किस अलपात पथ की ओर ले जा रहे हो ?

श्याम—अपने पथ-प्रदर्शक पर एकान्त विश्वास रखो राधा !

राधा—परन्तु विश्वास की भी तो सीमा है। श्याम ! मेरा प्रेम इस प्रकार से नेत्रहीन नही है। मेरी चेतना अभी शेष है।

श्याम—शेष न रहे, ऐसे मन्त्र का उदय मै तुम्हारे हृदय की वेणु के प्राणो के रन्ध्र-रन्ध्र, फूंककर करना चाहता हूँ। मै तुम्हारी उपलब्धि के लिए कठिन से कठिन परीक्षा दे सकता हूँ, राधा ! तुम एक बार बोलो, मैं प्रस्तुत हूँ।

राधा—मैं कुछ नही चाहती-देव ! मै केवल आपके स्नेह की सुशीतल छाया चाहती हूँ जो चिरन्तन हो। मै आपके मगलमय मन का मोहक स्नेह चाहती हूँ। मै अन्य किस पदार्थ की याचना कर सकती हूँ, हृदयेश्वर !

यह तो हुआ कृत्रिमता और अतिरजन का उदाहरण, जिसे साधारण स्वर में नही पढा जा सकता। इसका फैलाव, इसका अस्वाभाविक भावातिरेक इसे हास्यास्पद बनाये देता है। अब इसी उदाहरण का सरल और प्रमारोचित रूप देखिये। बात वही है, पर कहने का ढग भिन्न है। सहज स्वाभाविकता और सयत भावना इसे रेडियो-शैली के लिए उपयुक्त बनाते हैं।

श्याम—राधा !

राधा—श्याम ! तुम मुझे कहाँ लिये जा रहे हो ?

श्याम—तुमने इतनी जल्दी मुझ पर भरोसा छोड दिया ?

राधा—नही नही, भरोसा तो है। पर उसकी एक हद है। मेरा मन अन्धा नही है श्याम, अभी मुझ में मेरापन बाकी है।

श्याम—यह भेद भी नही बचा रहेगा राधा। तुम्हे पाने के लिए मैं कठिन से कठिन परीक्षा दे सकता हूँ, कोई परखकर तो देखे।

राधा—मैं आपकी कोई परीक्षा नही लेनी चाहती।

७०. स्वाभाविकता—इस भाषा-शैली के विषय में कही जाने वाली बातो में से एक बात बहुत सुनने में आती है। रेडियो-सवाद बोले और सुने जाने के लिए लिख जाते हैं, पढे जाने के लिए नही, इसलिए उनमें बोलचाल की भाषा प्रयुक्त होनी चाहिये, साहित्यिक भाषा नही। यह किसी हद तक ठीक भी है। पर वास्तविकता को अतिसरल रूप में प्रस्तुत करने जैसा है। वह भाषा जो हम दैनिक जीवन में प्रयोग करते है, शायद रेडियो-नाट्य के उद्देश्यो को पूरा नही कर सकती, क्योकि साधारण बोल-चाल में हावभाव, सकेत आदि से बहुत काम लिया जाता है। बहुत सी ऐसी अर्थ-छटाएँ होती हैं जिनकी बात सुनने वाले को ज्ञान होता है। इसलिए हम उस बात के विवरण में न जाकर उथले-उथले इशारो में ही सब कुछ समझा देते हैं। और सुननेवाला समझ भी जाता है। रेडियो-नाट्य में ऐसा सम्भव नही हो सकता क्योकि वहाँ दृश्यात्मक सकेतो और मुखमुद्राओ का कोई उपयोग नही। तो फिर रेडियो-शैली क्या हुई, उसे बोल-चाल का नाम कैसे दिया जा सकता है।

रेडियो-नाट्य की सवाद-शैली साधारण साहित्यिक शैली से इस प्रकार भिन्न है कि उसमें स्वाभाविकता का गुण प्रधान है। वह शैली सम्पूर्ण रूप से अकृत्रिम है। भडकीलापन (Pamposity) और विकृति (Stiltedness) इसके दोष हैं। एक और गुण भी इसमें अनिवार्य है—आत्मीयता। रेडियो सवाद में शब्दो को श्रोता पर प्रक्षेपित (Project) नही किया जाता, जैसे रगमच के सवादो में किया जाता है। उसे सुनकर श्रोता अपने आपको एक वस्तुनिष्ठ (Objective) और तटस्थ (Detached) दर्शक मात्र नही समझता बल्कि अपने आपको नाटक का एक ऐसा मूक पात्र समझता है जो अपनी अदृश्यता के कारण अभिनेताओ के खेल में बाधा तो नही बनता, लेकिन सब कुछ देखता सुनता है, अनुभव करता है, नैकट्य भाव से।

७१ स्पष्टता—रेडियो-सवाद पढे जाने के लिए नही होते, इसलिए उनमें स्पष्टता अनिवार्य है। हमारी आँख लम्बे-लम्बे और उलझे हुए वाक्यो को सह सकती है, श्रोता के कान नही। पाठक जहाँ चाहे रुककर सोच सकता है। वाक्य के किसी भी भाग को समझने में कमी रह गई हो तो वह पीछे पलटकर उसे दुबारा पढ सकता है, श्रोता ऐसा नही कर सकता, क्योकि प्रसार-प्रवाह पर उसका कोई अधिकार नही। अगर वह कही किसी बात में उलझ जाय तो उसके लिए और कोई उपाय नहीं रह जाता, कि वह उलझी हुई बात को भुलाकर आगे बढ जाय। स्पष्ट है कि इस तरह नाटक का प्रभाव क्रमश क्षीण होता चला जायगा। अगर लेखक के वाक्य उलझे हुए है तो उसका नाटक प्रसार में निस्सदेह असफल रहेगा क्योकि ऐसे वाक्य पढने में भले ही इतने भद्दे और उलझे हुए न लगें, सुनने में वह अवश्य ही असह्य होगे। रेडियो-

स्टूडियो में ध्वनि प्रभाव दिये जाने का एक दृश्य

स्टूडियो में ध्वनि प्रभाव दिये जाने का दूसरा दृश्य

राधा—मैं आपकी कोई परीक्षा नही लेनी चाहती।

७०. स्वाभाविकता—इस भाषा-शैली के विषय में कही जाने वाली बातो में से एक बात बहुत सुनने में आती है। रेडियो-सवाद बोले और सुने जाने के लिए लिख जाते हैं, पढे जाने के लिए नही, इसलिए उनमें बोलचाल की भाषा प्रयुक्त होनी चाहिये, साहित्यिक भाषा नही। यह किसी हद तक ठीक भी है। पर वास्तविकता को अतिसरल रूप में प्रस्तुत करने जैसा है। वह भाषा जो हम दैनिक जीवन में प्रयोग करते हैं, शायद रेडियो-नाट्य के उद्देश्यो को पूरा नही कर सकती, क्योकि साधारण बोल-चाल में हावभाव, सकेत आदि से बहुत काम लिया जाता है। बहुत सी ऐसी अर्थ-छटाएँ होती हैं जिनकी बात सुनने वाले को ज्ञान होता है। इसलिए हम उस बात के विवरण में न जाकर उयले-उयले इशारो में ही सब कुछ समझा देते हैं। और सुननेवाला समझ भी जाता है। रेडियो-नाट्य में ऐसा सम्भव नही हो सकता क्योकि वहाँ दृश्यात्मक सकेतो और मुखमुद्राओ का कोई उपयोग नही। तो फिर रेडियो-शैली क्या हुई, उसे बोल-चाल का नाम कैसे दिया जा सकता है।

रेडियो-नाट्य की सवाद-शैली साधारण साहित्यिक शैली से इस प्रकार भिन्न है कि उसमें स्वाभाविकता का गुण प्रधान है। वह शैली सम्पूर्ण रूप से अकृत्रिम है। भडकीलापन (Pamposity) और विकृति (Stiltedness) इसके दोष हैं। एक और गुण भी इसमें अनिवार्य है—आत्मीयता। रेडियो सवाद में शब्दो को श्रोता पर प्रक्षेपित (Project) नही किया जाता, जैसे रगमच के सवादो में किया जाता है। उसे सुनकर श्रोता अपने आपको एक वस्तुनिष्ठ (Objective) और तटस्थ (Detached) दर्शक मात्र नही समझता बल्कि अपने आपको नाटक का एक ऐसा मूक पात्र समझना है जो अपनी अदृश्यता के कारण अभिनेताओ के खेल में बाधा तो नही बनता, लेकिन सब कुछ देखता सुनता है, अनुभव करता है, नैकट्य भाव से।

७१ स्पष्टता—रेडियो-सवाद पढे जाने के लिए नही होते, इसलिए उनमें स्पष्टता अनिवार्य है। हमारी आँख लम्बे-लम्बे और उलझे हुए वाक्यो को सह सकती है, श्रोता के कान नही। पाठक जहाँ चाहे रुककर सोच सकता है। वाक्य के किसी भी भाग को समझने में कमी रह गई हो तो वह पीछे पलटकर उसे दुबारा पढ सकता है, श्रोता ऐसा नही कर सकता, क्योकि प्रसार-प्रवाह पर उसका कोई अधि-कार नही। अगर वह कहीं किसी बात में उलझ जाय तो उसके लिए और कोई उपाय नही रह जाता, कि वह उलझी हुई बात को भुलाकर आगे बढ जाय। स्पष्ट है कि इस तरह नाटक का प्रभाव क्रमश क्षीण होता चला जायगा। अगर लेखक के वाक्य उलझे हुए है तो उसका नाटक प्रसार में निस्मदेह असफल रहेगा क्योंकि ऐसे वाक्य पढ़ने में भले ही इतने भद्दे और उलझे हुए न लगें, सुनने में वह अवश्य ही असह्य होगे। रेडियो-

स्टूडियो में ध्वनि प्रभाव दिये जाने का एक दृश्य

स्टूडियो में ध्वनि प्रभाव दिये जाने का दूसरा दृश्य

संवादों में कृत्रिम वाक्चातुर्य का कोई स्थान नही। वैयाकरणिक कलाबाजियां श्रोता को बहुत क्षुब्ध करती है। रेडियो-सवाद में शब्द और वाक्य सुन्दर चेहरो की तरह होने चाहियें, जो तुरन्त ही दर्शक को आकृष्ट करते हैं।

ऐसे लेखक के लिए श्रव्य-शैली मे लिखना कभी सम्भव न होगा जिसके मस्तिष्क में ग्रन्थियाँ पडी हुई हो, जिसके विचार उच्छृंखल और अस्पष्ट हो। संवादो मे स्पष्टता और प्रभावोत्पादकता लाने के लिए यह अनिवार्य है कि वाक्य लम्बे-लम्बे और उलझे हुए न होकर छोटे-छोटे और सुलझे हुए हो। अगर किसी विशेष चरित्र के लिए लम्बे-लम्बे वाक्यो का प्रयोग किया भी जाय तो उन्हे इस प्रकार छोटे-छोटे टुकडो में बाँट दिया जाना चाहिये कि प्रत्येक इकाई (Unit) का अर्थ श्रोता के कानो मे पडते ही स्पष्ट हो जाये। रेडियो-संवाद में सबसे अधिक महत्त्व इस बात को दिया जाना चाहिये कि उनका प्रभाव श्रुतिमात्र पर निर्भर हो।

नीचे दिये उदाहरणो मे दोनो तरह के सवाद प्रस्तुत है। पहले को जल्दी-जल्दी पढ जाइये। आप देखेंगे कि इसका अर्थ सरलता से समझ में नही आता। सवादो में प्रवाह भी नही आ पाया क्योकि पाठक की बुद्धि को जगह-जगह पर ठोकर-सी लगती है। इसके विपरीत दूसरा उदाहरण सरल और स्पष्ट सवाद का है।

कृपाशंकर—माया देवी, जो बात मै आप से करने आया हूँ इसके विषय में शायद आपने पहले सुना ही होगा, कि इसके भीतर भी जो दूसरी बात है, उसके लिए मै शर्मिन्दा होता हुआ यह निवेदन करना चाहता हूँ कि ··

माया—आपकी बात का कुछ आशय समझ में नही आता, क्योकि जो आप कह रहे है, उसके पीछे निहित रहस्य को जो मै जान जाती, तो फिर यह कैसे हो सकता कि आपकी बात को मै 'हाँ' कहने के बदले और कुछ कभी कह सकती। अपितु नकार का अर्थ वहाँ स्वीकार ही हो जाता जैसे कि राम ने आपको पहले कहा ही होगा।

कृपाशकर—रहने दो राम की बात क्योकि राम मेरा कौन होता है, यह शायद तुम नही जानती, और उसके मेरे पुराने मैत्री सम्बन्धो के कारण इधर जो हम दोनों में मनमुटाव पैदा हुआ है वह वस्तुत तुमसे अधिक मेरे ही जानने की बात है, क्योकि कहावत ही है कि 'जा के पैर न फटी बिवाई, वह क्या जाने पीर परायी'।

माया—पीडा की बात आप न करें। इसलिए कि मैं भी इस प्रकार की बहुत सी पीडा का लक्ष्य बन चुकी हूँ। जिसमें न पीडक को आनन्द है, न ही प्रपीडित को। अपितु पीडा के अतिरिक्त जो पीडन की क्रिया है उसकी बात मेरे मन को छूने ही मन की स्थिति ऐसे अवसन्न हो जाती है, जैसे कि मानो विद्युत-स्पर्श से कोई वृक्ष समूल उन्मूलित हो गया हो।

पहले उदाहरण के बाद अब इस टुकडे को पढिये ।

कृपाशकर—माया, मै उस बात के लिए (शर्म से) मुआफी चाहता हूँ ।

माया—आप क्या कहना चाहते हैं ? आपकी कौनसी बात मेरे लिए रहस
है ? मैंने कब आपको मना किया है ? राम ने बताया होगा ।

कृपाशकर—राम (पुरानी याद करके) राम के मेरे सम्बन्ध बहुत पुराने हैं
बचपन में जब हम ऐसे दोस्त थे कि दूसरे से बिना मिले एक दिन भी नही कट
था । पर अब वह सब सपना है । उन दिनो की याद से आज सिर्फ दर्द होता है । तु
क्या जानो माया मन की पीर मन ही जानता है ।

माया—पीर और दर्द की बात आप क्यो करते हैं ? क्या मैंने जीवन में क
दुख सहा है । उस दुख की याद ही मुझे काठमारी-सी कर देती है ।

७२. सक्षेप—एक वाक्य का सान्दर्य उसके जटिल और अलकृत होने में नहीं
बल्कि सरल रूप से प्रभावस्पद होने में है । गम्भीर परस्थिति को सरल और सक्षिप्त
वाक्य जितनी सफलता से व्यक्त करते हैं, उतना जटिल और विस्तृत वाक्य नहीं ।
रेडियो-नाटक के लिए सक्षेप पूर्णतया अनिवार्य है, क्योंकि सक्षेप भाव की गाढता
और अनुभूति की तीव्रता का सूचक है । सक्षिप्त वाक्यो का अर्थ श्रोता तुरन्त ही ग्रहण
करता है । अभिनेता को भी सक्षिप्त और सरल वाक्य कहने में सुविधा रहती है,
और वह उनमें अधिक व्यजना और रस भर सकता है ।

शारदा—अच्छे तो हो ।

अनिल—अच्छा हूँ ।

शारदा—खाक अच्छे हो ।

अनिल—क्यो ?

शारदा—जब अच्छे होते हो तो भला ऐसे लगते हो क्या ?

अनिल—कैसा लगता हूँ ?

शारदा—छिपाओ मत, बताओ क्या बात है ?

अनिल—तुम से कभी कुछ छिपाया है ?]

शारदा—फिर बताते क्यो नही ?

अनिल—कुछ हो तो बताऊँ ।

शारदा—कुछ तो है ?

अनिल—कुछ नहीं ।

शारदा—कुछ नही ?

अनिल—बिलकुल कुछ नही ।

शारदा—फिर यह शक्ल कैसी बना रखी है ?

अनिल —कैसी है, अच्छी-भली तो है।

शारदा—वाह, साफ उदास लग रहे हो।

अनिल—शारदा, आज अदालत में काम इतना था सिर भिन्ना गया। यह देखो कितने केस घर उठा लाया हूँ। कल इतवार है, लोग आराम करेंगे, घूमने-फिरने जायेंगे, हम मोहरो और निशान-अँगूठो के सागर में गोते लगायेंगे।

शारदा—वडे चतुर हो।

अनिल—क्यो ?

शारदा—मन की वात किस सफाई से छिपा लेते हो।

अनिल—तुम से ?

शारदा—इसी का तो आश्चर्य है।

अनिल—(आश्वासन) नही शारदा।

शारदा—(गम्भीर होकर) मैं जानती हूँ अनिल, तुम्हारी परेशानी का कारण क्या है।

अनिल—क्या है ?

शारदा—मै···

अनिल—तुम ?

शारदा—हाँ।

अनिल—वह कैसे।

शारदा—तुम्हें याद है अनिल, मैंने कहा था तुम्हारे जीवन पर मेरे विषाद की छाया पडे यह मुझे असह्य होगा।

अनिल—हाँ, लेकिन···

शारदा—देखती हूँ मेरे जीवन की कालिमा तुम्हारे नये घर के उजाले को तिमिर आवृत्त किया चाहती है।

अनिल—नही तो।

शारदा—अच्छा, मेरा सौभाग्य है अनिल, सारी दुनियाँ मेरी दुश्मन है, पर तुम मेरे हो।

अनिल—मैं सदा तुम्हारा रहूँगा।

शारदा—(सकोच के वाद) अच्छा, फिर तुम्हारा चेहरा क्यो उतरा हुआ है ?

अनिल—कहा तो शारदा कि काम वहुत है।

शारदा—दिन ढल चुका। सैर का वक्त हो गया है। और तुम मुझे लेने आये ही नही, आखिर मुझे आना पडा।

अनिल—तुम आ गई तो इसमें क्या वुरा हुआ ?

शारदा—तो फिर उठो, छोडो यह मैली-कुचैली फाइलें।

अनिल—नही शारदा।

शारदा—क्यो ?

अनिल—शारदा, नही।

शारदा—क्यो ? पहले तो ऐसा कभी नही कहा।

अनिल—मुझे खेद है काम '

शारदा—काम का बहाना मै न सुनूंगी। बस चलो, (कुर्सी से धकेलती है) उठो।

अनिल—जबरदस्ती है ?

शारदा—यही सही।

अनिल—शारदा !

शारदा—कहो, कहते क्यो नहीं ? क्या सोच रहे हो ?

अनिल—मुझे कहते शर्म आती है।

शारदा—किस बात की।

अनिल—बात दिल मे खटकती है पर होठो पर नही आ रही।

शारदा—ओह, ऐसी क्या बात है ?

अनिल—ऐसी ही है।

शारदा—क्या ?

अनिल—मै मे'

शारदा—जी, आप '

अनिल—रहने दो।

शारदा—रहने दो। लेकिन यह याद रखना अनिल, पीछे तुम मुझसे भी किसी बात की आशा न रखना।

अनिल—बात यह है कि

शारदा—क्या ?

अनिल—मुझे एकान्त में तुम्हारे साथ डर लगने लगा है।

शारदा—क्यों ?

अनिल—मेरा मन विचलित हो जाता है।

शारदा—बस, यही बात थी।

अनिल—मैं नारी पुरुष को उनके प्राकृतिक रूप में देखता हूँ। पर '

शारदा—फिर भी तुम्हारे मन में भय है।

अनिल—डरता हूँ कही मांस मानस पर विजय न पाये।

शारदा—मानस क्या चाहता है ?

अनिल—सयम।

शारदा—और मांस ?

अनिल—मद।

शारदा—हूँ।

अनिल—मैंने तुमसे कभी कुछ नही छिपाया शारदा, तुम जानती हो मेरे मन में पाप नही।

शारदा—जानती हूँ।

अनिल—तुम्हे देखकर मन अधीर हो उठता है, और एकान्त में तो

शारदा—कोई नई बात नही है।

अनिल—तुम मेरी दुर्बलता का उपहास करती हो।

शारदा—मैं, जो स्वय इतनी दुर्बल हूँ।

अनिल—क्या तुम्हे भावनायें विचलित नही कर देती।

शारदा—कर देती है पर मैं इन से डरती नही।

अनिल—यही तो तुम्हारी महानता है।

शारदा—सत्य पर आवरण मत डालो अनिल, बात यह नही, बात यह है कि मैं निर्बल हूँ, सब कुछ खो चुकी हूँ, इसलिए और अधिक खोने का भय नहीं। तुम सबल हो। उन्नतिशील हो। तभी हर कदम फूंक-फूंक कर उठाते हो। काश! हम इस स्थिति में न होते।

अनिल—तुम समझती हो, मैं तुम्हारी बेकसी का फायदा उठा रहा हूँ।

शारदा—मैंने ऐसा कब कहा ?

अनिल—या फिर यह समझती हो कि मैं तुम से प्रेम नही करता।

शारदा—मुझसे प्रेम करते हो ?

अनिल—यह भी कहना होगा ?

शारदा—फिर भी मुझसे डरते हो!

अनिल—तुम से नही डरता।

शारदा—और किससे डरते हो ?

अनिल—अपने आप से।

शारदा—तो फिर तुम मुझ से प्रेम नही करते, अपने प्रण से बंधे मेरा बोझ उठाये हुए हो।

अनिल—नही।

शारदा—(उदास) मैं कटु सत्य से भयभीत नही होती अनिल, मैं तुम्हे तुम्हारे

प्रण से मुक्त कर दूँगी। तुम्हारे जीवन की बाधा बनूँ, भगवान् मुझे इससे पहले उठा ले—

अनिल—शारदा, आज कैसी बातें ले बैठी हो।

शारदा—अगर तुम्हारे मन को कुछ हुआ हो तो मुझे क्षमा करना। सुनो, मैं यहाँ से चली क्यो न जाऊँ ?

अनिल—शारदा, तुम जानती हो तुम्हारे बिना मेरा जीवन नहीं हो सकता। (उसे अपनी ओर खीचता है) शारदा ! !

शारदा—(सघर्षाकुल) अनिल, तुम फिर मुझे अपनी ओर खीच रहे हो।

अनिल—शारदा, मैं मजबूर हूँ।

शारदा—आइने में चेहरा देखो। कैसे पसीना-पसीना हो रहे हो।

अनिल—सच ?

शारदा—आग तुम्हें जलाती है, तो उसका आलिगन क्यो करते हो ?

अनिल—मजबूर हूँ।

शारदा—(अत्यन्त व्याकुल होकर) अनिल, जिस पथ पर तुम मुझे ले जा रहे हो वहाँ काँटे बिछे है। मुझ पर दया करो। जीवन दिया है तो उस पर अभिशाप की छाया न पडने दो। (जाते जाते) तुम विवाह क्यो नही करते ? (शीघ्रता से प्रस्थान)

अनिल—विवाह ? किससे ? ओह भगवान्, मुझे क्या हो जाता है कभी-कभी।

—'मांस और मानस' हरिश्चन्द्र खन्ना

७३. **उचित शब्द सयोजन**—रेडियो-नाट्य की सफलता के लिए सक्षेप अनिवार्य है। रेडियो-सवाद लेखक कम से कम शब्दो का प्रयोग करता है। इसीलिए प्रत्येक शब्द का उद्देश्य और आशय होना चाहिये। सुन्दर और प्रभावशाली सवाद के लिए उचित शब्दो का सयोजन उतना आवश्यक है जितना एक सुन्दर और प्रभावशाली चित्र के लिए उचित रगो का। जैसा विषय होगा वैसी रगसगति (Colour-scheme) उपयुक्त होगी। उसी तरह जैसा नाटक होगा वैसी भाषा उसके सवादों का निर्माण करेगी, और जैसा चरित्र होगा वैसी भाषा वह प्रयुक्त करेगा।

साधारणत शब्दबहुल (Wordy) सवाद असफल होते है। बहुत कम रगो का प्रयोग करते हुए भी अद्भुत चित्र की रचना हो जाती है। कभी-कभी सारे के सारे पैलेट (palette) के रगो-उपरंगों को पोत देने से भी बात पैदा नही होती। वास्तव मे रग तो माध्यम मात्र है। जो वस्तु एक कलाकृति को सौदर्य और महत्ता देती है, वह है कलाकार की सुरुचि, उसका जीनियस शब्द भी उसी प्रकार माध्यम मात्र है। असली चीज तो नाट्यकार की प्रतिभा है जो उनके सुरुचिपूर्ण समन्वय द्वारा

सार्थक संरचना का सृजन करती है। रेडियो-नाटककार को शब्दो के प्रयोग मे कजूसी वरतना हमेशा लाभकारी रहता है। कम से कम और उचित शब्दो के सयोजन से ही सफल और प्रभावस्पद सवादों की रचना होती है। प्रत्येक शब्द स्पष्टार्थवाची और साफ होना चाहिये, ताकि वक्ता के मुख से निकलते ही श्रोता के हृदय तक पहुँच सकें। रेडियो-शैली मे वह शब्दावली अपेक्षणीय है जिसका अर्थ विलकुल स्पष्ट हो और वे शब्द ऐसे होने चाहिय जिनकी सहायता से श्रोता सम्पूर्ण सवेद गहरण कर सके। यानी शब्द ऐसे हो जिनमें भावोद्दीपन का गुण हो, जिनके द्वारा श्रोता (जो केवल एक ही इन्द्रिय का प्रयोग कर रहा है) दूसरी इन्द्रियो की अनुभूति भी कर सके। वह देख सके, स्पर्श कर सके, संघ सके। रेडियो-नाटक मे ऐसी शब्दावली वाछनीय है जिसका प्रत्येक शब्द सीधे रूप से अपने अन्तर्भूत प्रभाव को श्रोता तक पहुँच सकता हो। अगर रेडियो-नाट्यकार ऐसी शब्दावली का उपयोग करेगा जो सवेदन सकेत (Sensory notation) में सम्पन्न है तो श्रोता निश्चय ही अनुभूतिरजित होकर उसकी कलाकृति से आनन्दित होगा। ऐसे शब्द जो ध्वनि-मात्र से अर्थ का प्रकटीकरण करते हो, या ध्वनि या लय से उचित वातावरण पैदा कर सकते हो, अधिक से अधिक प्रयुक्त होने चाहियें।

शब्दो में कितनी व्यजना है यह उस समय प्रकट होता है जब हम एक कुशल कलाकार की रचना को सुनते है। हमे अनुभव होता है कि शब्द अर्थ के अतिरिक्त भाव को भी प्रत्यक्ष रूप से धारण किये हुए है। कई शब्दो की लय धीमी है, और इसलिए वे नैराश्य और उदासीनता का वातावरण पैदा करते हैं। कई शब्दो की लय द्रुत है और वे स्फूर्ति, मुक्तभाव और आल्हाद को व्यक्त करते है। कई शब्द तरल हैं, विलकुल प्रवाहित जल की तरह, और कई कठोर। तारल्य से कोमलता और शान्ति का वातावरण पैदा होता हैं, और कठोर और कर्कश शब्दो से क्षोभ और अशान्ति का। अत विशेष प्रभावो की उत्पत्ति के लिए रेडियो-नाट्यकार को हमेशा यह सोचते रहना होता है कि उसकी रुचि द्वारा सयोजित शब्दो का सम्मिलित प्रभाव क्या होगा। और क्योकि श्रव्य-नाट्य प्रधानत (Verbal art) अर्थात् मौखिक कला है, नाटककार को अपनी रचना में शब्दो के कलात्मक मूल्यो पर अधिक वल देना होगा।

इसमे सन्देह नही कि यह शब्दावली सकुचित है। फिर भी प्रतिभावान लेखक अपनी सुरुचि द्वारा इनके नये नये सयोजन और साम्यो से, इनके नये-नये अर्थ उपजाता है। इस सीमित क्षेत्र में भी गुणी और परिश्रमी कलाकार अपनी मौलिकता प्रदर्शित कर सकता है।

७४. लय-गति और वैविध्य—प्रत्येक शब्द की अपनी लय होती है।

लेकिन जो बात अधिक महत्त्व की है वह है विभिन्न शब्दो का सम्मिलित प्रभाव। इसी से सवादो की गति नियत होती है। अगर लेखक सवादो की लय (Rhythm) की ओर यथोचित ध्यान दे तो सवादो का प्रभाव निश्चय ही बढ जायेगा। शब्दो के ध्वन्यात्मक और गत्यात्मक सम्बन्ध को ही हम सवादो की लय (Rhythm) कह सकते है। (Tempo) लय का अर्थ एक-सी गति (Smooth tempo) नही। अक्सर अनुभव हुआ है कि अगर सवादो की गति और लय में परिवर्तन नही आ रहा, तो श्रोता का जी ऊबने लगता है। इसी प्रकार अगर सब दृश्यो की गति एक-सी हो तो नाटक प्रगति करता नही जान पडता, यद्यपि कहानी आगे बढ रही होती है। नाटककार को चाहिये कि वह वाक्यो के आकार को अदलता-बदलता रहे, ताकि लय-वैविध्य द्वारा दृश्य आकर्षक बन सके। इसी तरह अलग-अलग दृश्यो के आकार मे भी विविधता पैदा करते रहना चाहिये। प्रयत्न यह होना चाहिये कि इस लय-योजना का सम्मिलित प्रभाव (Commulative effect) उठती लय का हो न कि गिरती लय का। वाक्यो की लय दृश्य की भावात्मक विशेषता पर निर्भर होनी चाहिये। उदाहरणार्थ, अगर नाट्य-क्रिया एक चरमोत्कर्ष (High moment of tension) पर पहुँच चुकी हो, तो वाक्य बहुत छोटे-छोटे, प्राय अरूपात्मक-से होगे, जैसा कि वास्तविक जीवन मे होता है। अब अगर इस महत्त्वपूर्ण क्षण पर भी पात्रो को औपचारिक (Formal) भाषा और लम्बे-लम्बे वाक्य बोलने को दे दिये जाये तो नाटक की प्रगति मे अवरोध-सा पैदा हो जायेगा। अत स्थिति-परिवर्तन के साथ-साथ सवादो का लय-परिवर्तन होना चाहिये।

७५ **परिपार्श्व चित्रण**—रेडियो-नाटक मे सवाद के कई उद्देश्य है। अब हम यह देखने का प्रयास करेंगे कि इन उद्देश्यो की पूर्ति कैसे होती है। सबसे पहले परिपार्श्व चित्रण को लीजिये। श्रव्य नाट्य का माध्यम शब्द और ध्वनियो का उचित और सुरुचिपूर्ण समन्वय है। इसी माध्यम द्वारा नाटक के परिपार्श्व का निर्माण होता है। रग-नाटक मे परिपार्श्व हमें नाटक के विषय में कई आवश्यक बातो की सूचना देता है। उदाहरणार्थ, हमे सेटिंग के देखते ही मालूम हो जाता है कि अमुक नाटक मे एक मध्यवर्गीय घर का चित्र प्रस्तुत है, अमुक नाटक में विन्ध्यप्रदेश के जगलो का परिपार्श्व है, अमुक में वीरान मरुस्थल का। इसलिए रग-नाटक में यह बताने की आवश्यकता नही कि दृश्य कहाँ और किस वातावरण मे स्थित है उसकी क्या विशेषताएँ है क्योंकि इन प्रश्नो का उत्तर मच के दर्शनमात्र से मिल जाता है। किन्तु श्रव्यनाटक मे अभिनेता-अभिनेत्रियाँ, प्राय निर्गुण शून्य में चलते फिरते है। सम्राट के महल या ककाल की झोपडी में कोई अतर नही होता। रेडियो-नाटक के परिपार्श्व की रचना श्रोता की कल्पना करती है। लेकिन इस रचना के लिए कुछ आधार

चाहिये। ये मूल आधार नाटक अपने सवादो में दिये गये सकेतो मे प्रस्तुत करता है। जितना कल्पना का क्षेत्र विस्तृत है उतना ही रेडियो-नाटक के परिपार्श्व का है। रग-नाटक की अपेक्षा अधिक विविध प्रकार के परिपार्श्व का निर्माण रेडियो-नाटक मे किया जा सकता है, क्योकि स्थानातर और कालातर पलक झपकते भर मे हो जाता है। लेकिन जहां रग-नाटक की अपेक्षा रेडियो-नाटक को सुविधायें प्राप्त है, वहां कुछ कठिनाइयां भी है। उदाहरणार्थ, अगर सवाद दृश्य के परिपार्श्व को पर्याप्त रूप से प्रकाशित नही करते तो श्रोता दृश्य की विशेपताग्रो से परिचित नही हो सकेगा।

७६. पात्रों के कार्यकलाप की सूचना—परिपार्श्व परिचय के अतिरिक्त सवाद श्रोता को पात्रो की उपस्थिति, अनुपस्थिति और गतिविधि का आभास भी कराते है। नाटक मे दिलचस्पी वनाये रखने के लिए यह अति-आवश्यक है। नाटककार को यह वताते रहना होगा कि मध्यवर्गीय नायिका प्रणय-कौतुको से ऊवकर अव अपने कमरे मे जा लेटी है और अव रसोईघर मे जाकर वरतन इधर-उधर उलट-पुलट रही है। आवश्यक है इन दो विभिन्न परिभापाओ की सूचना हमें सवाद-सकेतो से मिले। विशेपकर जहां दो परस्पर विरोधी पात्र अलग-अलग कमरे में रहते हो, और नाटक दोनो स्थानो पर घटित होता हो तो यह स्थान-परिवर्तन सवादो द्वारा स्पष्ट किया जायेगा। रेडियो-नाटक इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए ध्वनि-प्रभावो की सहायता तो लेता है, लेकिन सवाद-सकेत फिर भी आवश्यक है। एक और स्थिति है। एक ही सेट पर दो या उससे अधिक स्थानो पर क्रिया होती है। जैसे पति पुस्तक देख रहा है, वालक सोफे पर वैठा अपनी चित्रावली के पन्ने उलट रहा है, और पत्नी खिडकी में खडी है, कदाचित् किसी भी प्रतीक्षा में। इन दृश्य-सकेतो को ध्वनि-सकेतो में वदलने के लिए एक ही उपाय है। दृश्य के तीनो पात्रो के संवादो मे उनके उपस्थान-विशेप की चर्चा हो।

पात्रो की गति, अगर सरल है तो श्रोता के लिए उसका अर्थग्रहण (Interpretation) कठिन नही होता, उदाहरणार्थ एक पात्र कमरे में टहल रहा है, तो उसके स्वर के उतार-चढाव से उसकी गति की सूचना श्रोता को मिल जायेगी। अर्थात् उसके माइक से दूर जाने और निकट आने से जो ध्वनिभार का अतर होगा उससे वह समझ लेगा कि यह पात्र कमरे मे टहल रहा है। अव अगर ऐसे में एक और पात्र जैसे उसकी पत्नी, प्रवेश करे तो श्रोता को उस समय उसके अस्तित्व का आभास न होगा जव तक कि हम सवादो मे यह न सुनें कि उधर से उसकी पत्नी आ गई। इसी तरह अगर दो-चार मित्र वैठे कुछ वातें कर रहे है और उनमें से एक चुपचाप वैठा सिगरेट का धुआं फैला रहा है, किसी सवाल का जवाव नहीं देता और न ही किसी वात में दिलचस्पी ले रहा है, हां कभी कभी मुस्करा जरूर देता है। इन मूक

चित्र को किस प्रकार श्रोता तक पहुँचाया जाय ? स्पष्ट है, सवादो द्वारा। दूसरे मित्रो की बातो से हमें मालूम होना चाहिये कि उनमें एक चुप है। इसी तरह का एक और उदाहरण लीजिये। मडली में से एक मित्र चुपचाप चल देता है। केवल पद-चाप-मात्र इस क्रिया को प्रकट नही कर सकेगी। सवादो में इसकी चर्चा होनी चाहिये।

७७. सवाद द्वारा चरित्र-निरूपण—परिपार्श्व की विशेषताओ पर प्रकाश डालने, और पात्रो की गतिविधि के परिचय के अतिरिक्त सवाद चरित्र के प्रकटीकरण का माध्यम है। रगमच पर प्रवेश के साथ ही हम पात्रविशेष की मुखाकृति, वेशभूषा आदि से परिचित हो जाते है। बल्कि अक्सर तो हमे पात्र के प्रवेश से भी पहले उसका परिचय दिया जा चुका होता है। इसलिए उसे पहचानने और समझने में सुविधा होती है। पर रेडियो-नाटक में ऐसा सम्भव नही क्योकि न तो वहाँ कोई प्रोग्राम बाँटा जाता है जिसमे पात्र-परिचय दिया गया हो, और न ही हम पात्रो के प्रवेश प्रस्थान को देख सकते हैं। रेडियो-नाटक में चरित्र का प्रकटीकरण केवल सवादो द्वारा ही सम्भव है। उसी मे चरित्र की सभी बाहरी और भीतरी विशेषताओ को प्रकाशित किया जाता है।

नाटक में तीन प्रकार की स्थितियाँ होती हैं जिनमें सवादो द्वारा एक चरित्र सम्बन्धी सूचना प्रसारित होती है। एक चरित्र दूसरे से सम्बन्धित होता है, और दोनो के सवाद एक दूसरे के चरित्र पर प्रकाश डालते है। या दूसरी स्थिति में, एक चरित्र समष्टि से सम्बद्ध या उसके विरोध मे होता है, और हम उन सवादो द्वारा चरित्र का ज्ञान प्राप्त करते हैं जो उसके विषय में नाटक के अन्य अभिनेता बोलते हैं। तीसरी स्थिति वह है जब कि एक चरित्र में आन्तरिक विरोध के कारण एक भावना दूसरी भावना की विरोधी है, एक आदर्श दूसरे का और एक वृत्ति दूसरी की प्रतिद्वन्द्विता में स्पन्दित हो रही है। इस स्थिति में लेखक प्राय स्वगत-भाषण द्वारा चरित्र की वास्तविकता की नाट्याभिव्यक्ति करता है। अगर यह सघर्ष क्षणिक और अल्पकालिक न होकर चरित्र की प्रकृति का अश बन चुका हो तो हम 'सयुक्त दृश्य-क्रम' (Montage) का उपयोग करते है, जिसकी चर्चा पहले की जा चुकी है।

७८ स्वगत-भाषण—अगर जीवन को विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण से देखा जाय तो ऐसे चरित्रो का निर्माण आवश्यक हो जायगा जो अत्यन्त जटिल और रहस्य-पूर्ण है, जिनका व्यक्तित्व अनेक अतर्दमनित सघर्षों के कारण बहुमुखी है। इन व्यक्तियो के साधारण और प्राय बाह्य व्यवहार से उनकी वस्तुस्थिति का बोध प्राप्त करना और उन्हें समझ पाना सम्भव नही होना। अत ऐसे चरित्रो के निरूपण के लिए कई एक उपकरणो का प्रयोग होता है, सबसे अधिक स्वगत-भाषण का।

साधारण स्थितियो और साधारण चरित्रों के निरूपण के लिए इन उपकरणो

का प्रयोग करना व्यर्थ है। स्वगत या इसी प्रकार के दूसरे अभिव्यजनात्मक उपकरण केवल असाधारण चरित्रो को चित्रित करने के लिए प्रयुक्त होने चाहिये, जिन्हे साधारण और सामान्य सवाद पूर्णरूप से व्यक्त नही कर सकते। वर्तमान जीवन मे ऐसे चरित्रो की कमी नही। क्योकि वर्तमान जीवन इतना विषम, इतना जटिल है उसमे इतने अन्तर्विरोध और प्रतिकूलताएँ (Cross purposes and Contradictions) है कि चरित्रो का सरल होना प्राय असम्भव है। इसीलिए आधुनिक नाटक पुराने नाटक से सर्वथा भिन्न है, और होता जा रहा है। आजकल हृदयवेधक व्यथा के होते हुए भी मुस्कराना पड़ता है। अन्तर से खोखला होते हुए भी मान-मर्यादा के लिए रख-रखाव के लिए सन्तुष्ट और दृढ दिखाई देना पडता है। ऐसी स्थिति में द्विधा (Dual) वल्कि बहुविध (Multiple) हेतु (Motivation) का होना स्वाभाविक ही है।

वर्तमान जीवन की एक और विशेषता है जो स्वगत-भाषण के प्रयोग, और सवादो को अधिक-से-अधिक अभिव्यजनात्मक (Expressionistic) बनाए जाने के अनुकूल है। वर्तमान जीवन का महान् किन्तु अत्यन्त कटु सत्य है एकान्त। चारो ओर इतनी चहल-पहल और गहमागहमी के होते हुए भी इन्सान अपने आपको अकेला महसूस करता है। ऐसा क्यो है, इनके विश्लेषण और अभिदर्शन के लिए तो बहुत समय चाहिए। इस वक्त यहाँ इतना मान लेने में हमें कोई विशेष आपत्ति नही है कि आज का मानव इतने विस्तृत सामाजिक जीवन के होते हुए भी एकाकी है। पर आश्चर्य की बात है कि वह एकान्त में उदास होते हुए भी एकान्तप्रिय है। शायद इसलिए कि केवल एकान्त मे ही वह हृदय की ग्रथियो को खोलकर स्वच्छन्दतापूर्वक व्यवहार कर सकता है। बाहरी जीवन में उसके वास्तविक अस्तित्व के ऊपर आवरण है। एकान्त मे वह प्राय सब आवरणो को हटा देता है, और ठीक उसी प्रकार व्यवहार करता है जैसा उसकी मूल मनोवृत्तियो के अनुकूल है। आधुनिक साहित्य मे ऐसे बहुत से नाटक मिलेंगे जिनमें मुख्य पात्र प्राय अकेले रहते है। उन्हे ऐसे वातावरण में दिखाया जाता है जिसमे वह खुलकर अपने मन की कह सकें। नाटक के महत्त्वपूर्ण सवाद भी इन्ही स्थलो पर पाए जाते है।

यहाँ रगमचीय स्वगत और रेडियो स्वगत की तुलनात्मक विवेचना कर लेनी चाहिये। रगमच पर स्वगत रेडियो की अपेक्षा कम सफल होना है। इसका सबसे महत्त्वपूर्ण कारण यह है कि जिस एकान्त को, जिस निभृति (Privacy) की आवश्यकता होती है, वह रगमच पर प्राप्य नहीं। दूसरा कारण यह है कि स्वगत शब्दो के उच्चारण के लिए ऐसे (Tone) स्वर की आवश्यकता रहती है जो रगमच पर सम्भव नही, क्योकि, जैसा कि पहले सविवरण कहा जा चुका है, मच पर खड़े

अभिनेता को अपने विचार अपने आप से नही कहने होते, वल्कि उन्हे प्रकट करने के लिए श्रोताओं पर प्रक्षेपित (Project) करना पडता है। यह मूल रूप से, स्वगत के सिद्धान्तो के प्रतिकूल है। रेडियो-स्वगत में अभिनेता को प्रस्तुत विचारो या भावनाओ को श्रोताओ पर नहीं, वरन् अपने आप पर प्रक्षेपित करना होता है। रगमच का अशुद्ध और विकृत स्वर (False tone) कभी-कभी स्वगत को हास्यस्पद वना देता है। और एक अच्छा-भला गम्भीर और मनस्वी व्यक्ति, ओछा और वोखलाया हुआ-सा लगने लगता है।

आधुनिक रगमच ने इस परिमिति का सामना करने के लिए रगमच और श्रव्य-शैलियो के सम्मिश्रण से एक सयुक्त-शैली का निर्माण किया है, जिसमें दोनो कलाओ के सिद्धान्तो का समन्वय है। नाटक के ऐसे स्थलो पर जहाँ नाट्यकार को एक अतर्मुखी चरित्र की मनस्थिति का विश्लेषण करना होता है, अभिनेता रगमच पर मूक अभिनय करता है और उसके आतरिक सघर्ष की वस्तु को प्रकाश में लाने वाला स्वगत-भाषण पृष्ठभूमि में गूंजता रहता है। सवाद प्राय नाटक के प्रदर्शन से पहले रिकार्ड कर लिये जाते हैं और फिर पीछे से (Megaphone) द्वारा प्लेवैक किये जाते हैं। स्पष्ट है, कि इस युक्ति की सफलता अथवा असफलता कुशल साउण्ड इजीनियर पर निर्भर है। यूजीन ओनील का प्रसिद्ध नाटक 'Hairy Ape' जो एक दीर्घ आकाशभाषित (Mouslogue) के रूप में है, इसी तरह प्रस्तुत किया गया था। स्वय मैंने अपने नाटक 'मुर्दे जागते हैं' में इसी युक्ति का प्रयोग किया था जो आशा से कही अधिक सफल रहा। ऐसे अवसरो पर प्राय 'वक्ता' के अतिरिक्त सारे स्टेज पर अँधेरा कर दिया जाता है, प्रकाश का केन्द्र केवल वही पात्र रहता है, जिसका मनोविश्लेषण किया जा रहा हो। उसी पात्र के क्लोजअप के इस दृश्यात्मक प्रतीक (Visual symbolism) के साथ एक ध्वन्यात्मक प्रतीक (Aural symbolism) रखा जाता है जो प्रभाव की पुष्टि करता जाय।

आधुनिक फ़िल्म में भी प्राय इसी शैली का प्रयोग किया गया है। सर लॉरेन्स ओलिवियर के सुप्रसिद्ध चलचित्र 'हैमलेट' मे जिस प्रकार शेक्सपियर के स्वगत सवादों को सजीव किया गया है वह सदा स्मरणीय रहेगा। पहले हम रगपट पर एक लॉग शॉट में परिपार्श्व का अवलोकन करते हैं। फिर कैमरा धीरे-धीरे आगे बढ़ता है। जैसे ही क्लोजअप चित्र रगमच पर आता है, स्वगत-भाषण पृष्ठभूमि में ही गूंज उठता है। इसकी दृश्यात्मक व्याख्या सर लॉरेंस मूक अभिनय द्वारा करते जाते हैं। क्लोजअप के विलयन (Dissolve) के साथ ही वह स्वर क्षीण पडता जाता है।

इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण प्रयोग है स्वगत के आन्तरिक और वाह्य अशो का पार्थक्य। 'हेमलेट' में आभ्यान्तरिक वस्तु तो स्वगत शब्द प्रकट करता है, वाह्य

(Objective) वस्तु अभिनेता की वाणी। रजतपट पर यह प्रभाव बहुत मेहनत से प्राप्त हुआ होगा इसमें सन्देह नही। रेडियो-नाट्य में यह सरल है। Objective प्रश्न का उत्तर Subjective मन देता है। और Subjective मन का विरोध करता है Objective मन। जैसे विष्णु प्रभाकर के नाटक 'उपचेतना का छल' और 'जहाँ दया पाप है' में किया गया था।

तारा—(गम्भीर स्वगत स्वर) मेरे जीवन का एक और अध्याय समाप्त हो गया। मैं एक बार और असफल रही, मैंने एक और मात खाई। प्रभात से मैं कितना प्रेम करती थी लेकिन झूठे आदर्श के मोह में पडकर मैंने उसे खो दिया।

[सहसा उपचेतना हँसती हुई बोल उठती है]

उपचेतना—(हँसकर) झूठे आदर्श का मोह नही, वह तुम्हारा अभिमान था और अभिमानी मनुष्य कभी प्रेम नही कर सकता।

तारा—(काँपकर) कौन ? उपचेतना, तुम फिर आ गई।

उपचेतना—आने को मैं कहाँ जाती हूँ। मैं मनुष्य के अन्दर सोती रहती हूँ। जब वह अपने को धोखा देता है तब मैं जागती हूँ।

तारा—क्या मैं अब भी अपने को धोखा दे रही हूँ। क्या प्रभात के प्रेम में मेरा हृदय नही तडप रहा है।

उपचेतना–तुम्हारा हृदय तो तडप रहा है। परन्तु प्रभात के प्रेम के कारण नही।

तारा—तो······

उपचेतना—शकर से बदला न ले सकने के कारण।

तारा—तुम क्या कह रही हो ?

उपचेतना—मैं वही कह रही हूँ जो है। बोलो, क्या मैं गलत हूँ।

[नेपथ्य में सगीत]

तारा—(काँपती हुई) शायद, शायद तुम ठीक कह रही हो।

उपचेतना—(अट्टहास) मैं सदा ठीक कहती हूँ। तुमने शंकर से जिस प्रकार मुक्ति पाई, जिस प्रकार तुम्हे महात्मा का प्रेम मिला, उसका तुम्हे बहुत बडा अभिमान था। इसलिए अलग होकर भी तुमने चाहा कि शकर तुम्हारे पास आये और जब वह आया तो तुम क्रोध से भर उठी। और इसी कारण तुमने शकर को परसों अपने घर से निकाल दिया था।

तारा—(काँपकर) मैं मानती हूँ ऐसा ही था। तुम ठीक कहती हो पर शंकर भी तो ·····

उपचेतना—मैं शंकर को नही जानती, तुम्हे जानती हूँ। तुम बार-बार अपने को धोखा क्यो देती हो तुम अपनी हार से क्यों हार जाती हो ?

तारा—मैं अपनी हार से हार जाती हूँ।

उपचेतना—हाँ, हारने पर दु ख मानना हार से हारना है। तुम प्रभात से विवाह नही कर सकती, इसका तुम्हें बहुत बडा क्षोभ है। तुमने अनीला को जो आशीर्वाद दिया उसमें भी प्रेम नही था।

तारा—(काँपकर) क्या' तुम क्या कहना चाहती हो ?

उपचेतना—यही कि उसके मूल में द्वेष था, घृणा थी। मैं द्वेष और घृणा को उतना बुरा नही समझती जितना उनको छिपाकर महात्मा बनने को।

तारा—(सुबक उठती है) तुम ठीक कह रही हो। तुम ठीक कह रही हो। लेकिन मैं क्या करूँ ? मुझे कुछ सूझता नही। मै अन्धकार में भटक रही हूँ। मुझे राह दिखाओ···बोलो। (स्वर गूँजता है) बोलो, तुम फिर चली गईं, ठहरो, ठहरो, (गूँज) अरे, यहाँ तो कोई नही। ओह, मैं स्वप्न देख रही थी। कैसा भयकर स्वप्न था। पर कितना सत्य ·····

—'उपचेतना का छल' विष्णु प्रभाकर

एकान्त एक सजीव वस्तु है, एक ऐसा आइना जिसमें हम अपने वास्तविक स्वरूप का प्रतिबिम्ब देख सकते है। और यह प्रतिबिम्ब मूक नहीं होता मुखर होता है, बल्कि चचल और वाक्चपल होता है। वह हमारी अन्त श्चेतना को कुरेदने,उसमें सोए हुए,घुटे हुए अरमानो को गुदगुदाने में एक विशेष प्रकार का आनन्द प्राप्त करता है। सारत जब एक चरित्र स्वय सम्वाद करता है तो हम उसके चरित्र के उन पहलुओं को देख सकते हैं, जो बाहरी जीवन में कभी प्रकट नही होते।

कुछ निर्देशक इन सवादो को दो विभिन्न स्वरों अर्थात् दो विभिन्न व्यक्तियों से प्रस्तुत कराते हैं, पर साधारणत अगर यह सवाद स्वर-परिवर्तन के साथ एक ही पात्र प्रस्तुत करे तो प्रभाव निश्चय ही अपेक्षया अच्छा होगा। माइक्रोफोन के प्र भाव ग्राह्य पक्ष और प्रभावाग्राह्य पक्ष से निकट दूर रहकर जो स्वरान्तर का प्रभाव प्राप्त हो सकता है, उसकी सहायता से हम एक ही वाणी से दो व्यक्तियो का काम ले सकते हैं। साधारण सवाद तो माइक्रोफ़ोन के प्रभावग्राह्य पक्ष से सामने बोले जाएँगे, और मन की वाणी के लिए पात्र मुँह फेरकर, अर्थात् माइक के प्रभावाग्राह्य पक्ष के निकट बात करेंगे।

इसी लाभ के कारण रेडियो-नाट्यकार को एक कठिनाई का सामना भी करना पडता है। सम्भव है कि स्वरान्तर इतना स्पष्ट न हो और दो वाणियो का पार्थक्य स्पष्ट न हो सके। इसलिए विचार के इस पार्थक्य के प्रभाव की पुष्टि करने के लिए यह वाछनीय है कि लेखक दोनो वाणियों की भाषा-शैली में अन्तर रखे। शब्दावली

में, वाक्य-विन्यास (Sentence structure) में और लय-सयोजना (Rhythmic arrangement) में भी। विष्णु प्रभाकरके नाटक 'जहां दया पाप है' में इन गुण का अच्छा उदाहरण है। मुखर उपचेतना अधिक वाक्चपल और चचल है, इसलिए इन सवादो के शब्द-सयोजन में बडी सतर्कता से काम लिया गया है। कर्त्ता के कुकृत्य के प्रति आत्मा तिरस्कार प्रकट करती है, या कर्त्ता को कुकृत्य से पहले चेतावनी देती है। इन दोनो स्थितियो में विभिन्न प्रकार की व्यजना-शैली प्रयुक्त होगी। इसी तरह आत्मा की वाणी में एक प्रकार का सयत गाम्भीर्य है, उपचेतना की वाणी में चंचलता और उच्छृखलता होगी, या एक प्रकार की छेडछाड की अदा होगी। इन सब स्थितियो में विभिन्न सवाद-शैलियो का उपयोग होगा। इस शैली को विकसित करते हुए हम नाटक के क्षेत्र में अभिव्यजनावादी और अतिवस्तुवादी नाटक का विकास कर सकते है।

अगर एक स्वगत-भाषण असफल रहता है तो दोष लेखक का होगा शिल्प का नहीं। हो सकता है कि इस असफल स्वगत-भाषण में उन गुणो का अभाव हो जो स्वगत-भाषण को नाटक का महत्त्वपूर्ण अश बनाते है। एक सफल स्वगत-भाषण नाटक की गति को मन्द नही करता, न ही वह क्रियाक्रम में अवाछनीय उलझनें डालता है। वह नाटक के विकास में सहायक होता है, और उसे रजकता देता है। एक सफल स्वगत का पहला गुण विविधता (Variety) है। और यह विविधता केवल शब्दो और वाक्यों की नही, भाव और विचार की भी होनी चाहिए। विशेष स्थिति में आवृत्ति से रोचक प्रभाव पैदा किये जाते है। लेकिन अगर एक स्वगत-भाषण में विकास और प्रगति का आभास नही मिलता तो समझ लेना चाहिए कि वाक्य-निर्माण में पर्याप्त सतर्कता से काम नही लिया गया। एक स्वगत-सवाद को अत्यन्त सक्षिप्त और अर्थपूर्ण होना चाहिए। विचारो का अन्तरगुंफन भी बहुत जरूरी है। इसके अतिरिक्त उसमें लम्बे-लम्बे और उलझे हुए वाक्यो का निषेध है। स्वगत के वाक्य तो सकेत मात्र होने चाहिएं · जैसा कि एक प्रभाववादी चित्र(Impressionistic painting) मे होता है। भाषा जहां तक हो सके लाक्षणिक (Suggestive) और तुरन्त भावोद्दीपन करने वाली (Evocative) होनी चाहिए। विविधता के लिए लय-परिवर्तन (Variation of rhythm) भी अति आवश्यक है। दूसरा गुण है एकाग्रता (Concentration) स्वगत में हमें चरित्र की मूल प्रेरणाओ,मनोवृत्तियो और सघर्षो का क्लोज-अप लेना है, इसलिए संवादो का लाक्षणिक और प्रगाढ होना वाछनीय है। इसके लिए कभी-कभी नाटक के महत्त्वपूर्ण स्थलो में से कुछ-कुछ वाक्य उठाकर उनकी आवृत्ति से बडा अच्छा प्रभाव उत्पन्न हो सकता है।

अध्याय पाँचवां

ध्वनि-प्रभाव और संगीत-संयोजन

७९. ध्वनि-प्रभावो का उद्देश्य—वास्तव में ध्वनि-प्रभाव उस अभाव को पूरा करते हैं जो रेडियो-नाट्य में दृश्य तत्त्व न होने से अनुभव होता है। और सगीत-प्रभाव रेडियो-नाटक के लिए वही काम पूरा करते हैं जो रगमच पर आलोक-योजना (Lighting) करती है। अर्थात् ध्वनि-प्रभाव परिपार्श्व का निर्माण करते हैं, और सगीत वातावरण की पुष्टि करता है। कभी-कभी सगीत का ध्वनि-प्रभाव की तरह उपयोग किया जाता है, लेकिन उसका उद्देश्य वही होता है। ध्वनि-प्रभावों के लिए वाछनीय है कि वे स्पष्ट और उपयुक्त हो, और सगीत के लिए जरूरी है कि वह अपने अस्तित्व को नाटक में लीन कर दें। ध्वनि-प्रभाव नाटक को वस्तु देते हैं, सगीत सवादों द्वारा सचरित भावो की पुष्टि करता है। ध्वनि-प्रभावो का उद्देश्य मुख्यतः यथार्थ की व्याख्या करना है, सगीत-प्रभावो का भावात्मक व्याख्या करना।

ध्वनि-प्रभावो का प्रयोग इस सिद्धान्त पर आधारित है कि प्रत्येक ध्वनि अपना वैशिष्ट्य रखती है। इसी से उसकी एक विशेष सहस्मृति (Association) होती है। ध्वनियो का सम्बन्ध स्थान से, वस्तु से और भाव से होता है, और चूंकि श्रव्य-नाट्यकार ध्वनियों और शब्दो ही के आधार पर अपने चित्रों का निर्माण करता है, इसलिए रेडियो-नाटक के निर्माण-शिल्प में उनका एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। लेकिन जहाँ हमें ध्वनि-प्रभावों की महत्ता को समझना है वहाँ हमें इस विकृत धारणा का प्रतिकार भी करना होगा जिसके परिणामस्वरूप ध्वनि-प्रभावो को ही रेडियो-नाटक का 'रहस्य' समझ लिया गया है। ऐसे नाटको की कमी नही जिनमें प्रभावो की इतनी भरमार होती है कि निर्देशक उनमें उलझकर रह जाता है और अगर वह अपनी समझ-बूझ से काम लेकर उसमें से अनावश्यक अनुचित और अनुपयुक्त ध्वनि-सकेतो को न काट दे तो रेडियो-नाटक वस्तुत 'रव नाटक' होकर रह जाय। इसलिए ध्वनि-प्रभावो की सफलता उनके औचित्य पर निर्भर है।

ध्वनि-प्रभाव, वैसे तो निर्देशक के कार्य-क्षेत्र में आते हैं। वही उनकी आवश्य-कता अथवा अनावश्यकता का निर्णय करता है। लेकिन रेडियो-लेखक के लिए भी

इनका ज्ञान अपेक्षित है, ताकि वह नाटक का निर्माण करते समय ही ध्वनि-सकेतो को सवादो में इस प्रकार गुंफित कर सके कि एक दूसरे की सहायता करें। इनके अतिरिक्त उसे यह भी मालूम होना चाहिए कि अमुक प्रभाव को स्टूडियो में कैसे निर्मित किया जाता है और कौन से प्रभाव ऐसे है जिन्हे ध्वनि-भाव से स्पष्ट नहीं किया जा सकता, और उनके लिए शाब्दिक व्याख्या की आवश्यकता होती है। इससे पहले कि हम ध्वनि-प्रभावो के स्टूडियो-पक्ष पर विचार करें, इनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तो का विवेचन उचित होगा।

८०. **विविध ध्वनियो का समन्वय**—इस ससार में इतने शब्द और ध्वनियाँ है कि अगर हमें उन सबकी अनुभूति होने लगे तो हम पागल हो जायें। अब जिस कमरे मे यह पन्ने लिखे जा रहे है वहाँ एक से अधिक ध्वनियाँ कर्णगोचर हो रही है। मेज पर रखा है टाइमपीस, उसकी टिकटिक; वाहर लॉन में वच्चे खेल रहे है, उनका हँसना, शोर मचाना, लॉन से परे एक कुंजडिन जा रही है, 'पालक ले लो, मूली ले लो, ताजा पालक···', सडक के मोड पर कुछ दूर एक ऐरोड्रोम-वर्कशॉप है, जहाँ हवाई जहाजो की मरम्मत होती है, मशीनो, औजारो और हवाई जहाज के पखो का निरतर स्वर इत्यादि। इस प्रकार कई ध्वनियाँ हैं, अनेक शब्द है। क्या कारण है कि जब हम इनमें से किसी एक की ओर ध्यान देते है तो दूसरी ध्वनियाँ और शब्द जैसे अपने आप नेपथ्य में खो-से जाते है। उनका अस्तित्व जैसे नही रहता। अगर यह सोचा जाय कि घडी टिकटिक कर रही है तो केवल घड़ी की टिकटिक ही सुनाई देगी, कुंजडिन का शब्द या लॉन में खेलते वच्चो का शोर नही। इसी तरह अगर दूर से आते कारखानेका शोर सुनने की चेष्टा की जाय तो बिलकुल पास पडी घडी जैसे सहसा चुप हो जाती है। वर्कशॉप का शोर सुनने में अगर यह ख्याल आ जाय कि हमें कही पहुँचना था तो सहसा वर्कशॉप का शोर शान्त हो जाता है, और घडी पूर्ववत् टिकटिकाने लगती है। इससे यह निष्कर्ष निकला कि वास्तव मे केवल वही ध्वनि या शब्द सार्थक होता है जो सचेतन रूप में हमारे निकट हो। अतः रेडियो-लेखक अपने दृश्य की व्याख्या, अपने चित्र की रजकता के लिए केवल उन्ही ध्वनियो का प्रयोग करेगा, जिन का संवादो से निकट सम्बन्ध है, जिनकी अनिवार्यता में कोई सन्देह नही। ध्वनियो का जो चुनाव हमारी चेतना हमारे साधारण जीवन में करती है, वही लेखक को अपनी रचना के लिए करना चाहिए।

दूसरी वात, ससार के विविध शब्दो को दो प्रकारो में विभाजित किया जा सकता है। एक साधारण ध्वनियाँ, दूसरी असाधारण ध्वनियाँ। अगर हम रेलवे-लाइन के पास वाले मकान में रहते हैं तो रेल का शब्द एक साधारण शब्द होगा, यानी ऐसा जो रोज सुनने में आता है, जिसमें कोई वैचित्र्य नही, अव्यवहारिकता नहीं। इसी स्थिति

में अगर वहाँ रेल कभी नही रुकती और एक दिन सहसा रुक जाती है,तो रेल के रुकने का शब्द एक असाधारण शब्द होगा। घडी निरन्तर टिकटिकाया करती है। हमें उसके अस्तित्व का ज्ञान तक नही होता। अगर वह नैरन्तर्य सहसा भग हो जाता है, तो हमारा ध्यान एकदम वद घडी की ओर आकृष्ट होगा। इसी प्रकार जब हमारे ऐन्द्रिय आभास के सन्तुलन में कोई अन्तर आता है, सवेद्य में कोई परिवर्तन आता है, तो हम चौंकते हैं और प्राय साधारण शब्द बहुत असाधारण और विचित्र लगने लगता है। अगर हम बहुत देर से किसी का इन्तज़ार कर रहे हैं तो क्लाक की टिकटिक हमें भारी-भरकम कदमों से भी अधिक कर्कश लगेगी। अँधेरी काली रात में अकेले राही को अनेक ध्वनियों और शब्दो की भ्रान्ति होती है, जिनका कोई वास्तविक अस्तित्व नहीं होता। इससे यह निष्कर्ष निकला कि ध्वनि विशेष का वास्तविक अर्थ वातावरण की विशेषता पर निर्भर है। इसलिए रेडियो-नाट्यकार को ध्वनियो के अर्थ से अधिक उनकी व्यजना, उनके प्रभाव को ध्यान मे रखना चाहिए।

इन बातो को मन में रखते हुए अब हम यह देखेंगे कि ध्वनि-प्रभाव किस प्रकार अपने उद्देश्यो को पूर्ण करते हैं, जिनकी चर्चा इस परिच्छेद के शुरू में की गई थी, अर्थात् परिपार्श्व का निर्माण, कथानक की व्याख्या और वातावरण की सृष्टि।

८१. परिपार्श्व का निर्माण—जैसा ऊपर कह चुके हैं, ध्वनि-प्रभाव परिपार्श्व का निर्माण करने में रेडियो-नाट्यकार की सहायता करते हैं। इनसे रेडियो-नाटक में घनता (Solidity) का प्रभाव आता है। अभिनेता शून्य मात्र में अभिनय करते प्रतीत नहीं होते, बल्कि एक विशेष परिपार्श्व की पृष्ठभूमि पर। इससे श्रव्य-चित्र में प्राकृतिकता और प्रत्यक्षता (Concreteness) आ जाती है। हलका-हलका जन-रव और तांगे-गाडियों इत्यादि का स्वर बाज़ार को सूचित करेगा। अगर इसी शब्द चित्र को विशेष रूप देना हो, उदाहरणार्थ यह दिखाना हो कि मामूली-सा बाज़ार नही बल्कि शहर की बडी सडक है, या एक विशेष बाज़ार, उदाहरणार्थ सर्राफा या सब्ज़ी-मडी है, तो जनरव के साथ पहली स्थिति में लॉरियो, कारो, साइकिलो इत्यादि की ध्वनियो का सयोजन किया जायगा। दूसरी में जनरव की पृष्ठभूमि पर बहुत से ऐसे स्वरो का अकन किया जायगा, जो दृश्य की विशेषता पर प्रकाश डालें, जैसे दलालों और सट्टेबाज़ो के स्वर, विभिन्न सब्ज़ियों के नाम, और ग्राहको के विविध स्वर।

यहाँ शायद आप यह जानना चाहें कि विविध ध्वनियो का समन्वय और साम-जस्य कैसे होता है। ध्वनि-सयोजक के बायें हाथ वाले मेज़ पर कई (Turntables) अर्थात् रिकार्ड बजाने के यन्त्र है, उसके सामने (Fade board) है, और बायें हाथ की ओर माइक्रोफोन के पास कई प्रकार की वस्तुएँ पडी हैं। सबसे पहले इन वस्तुओ को ही लीजिए। यह (Live effects) अर्थात् प्रत्यक्ष ध्वनि-प्रभाव प्रस्तुत

करने के लिए प्रयुक्त होती है। इस सन्दूक में एक कागज़ पर रेत गिराई जा रही है। इससे यह अभिप्रेत है कि श्रोता वर्षा का प्रभाव ग्रहण करे। उधर एक और ध्वनि-सयोजक एक छोटे-से डाड को एक नन्हे-से तालाब में हिला रहा है। लेकिन नाव कही नही दिखाई दे रही। नाव उस स्टूडियो में है जहाँ अभिनेताओ को स्थित किया गया है। जी हाँ, सुनिए नायिका क्या कह रही है "प्रदीप, आज हमें नाव लेकर नही आना चाहिए था, मुझे लगता है आज तूफान आयेगा।" हाँ तो यह नायक-नायिका नौका-विहार कर रहे हैं। ध्वनि-सयोजक चप्पू और लहरो का प्रभाव पैदा कर रहा है और (Fade board) सम्हालने वाले ध्वनि-सयोजक ने एक नम्बर फेडर को ऊपर उठा दिया। इस रिकॉर्ड में तूफान की ध्वनि अंकित है। उधर नायिका चीखी, इधर 'नायक' ने ज़ोर-जोर से चप्पू चलाना शुरू किया। तूफान का शोर बढा, वर्षा तेज़ हो गई और...और...यह चप्पू वाले ध्वनि-संयोजक ने एक लकडी के तख्ते को उस नन्हे-से तालाब में डुबो दिया, नाव डूब गई।

इस क्रिया में सबसे कठिन काम (Fade board) पर बैठने वाले व्यक्ति का है, क्योंकि वही विभिन्न ध्वनियो के स्वर-भार को सन्तुलित करता है। वह निर्देशक के सकेतो को स्टूडियो-द्वार के ऊपर लगी हरी बत्ती के इशारो से समझकर, अलग अलग ध्वनियो का समन्वय करता है। अगर इस ध्वनि-समन्वय (Synchronisation) में सतर्कता से काम न लिया जाए तो एक अच्छी-खासी करुण घटना हास्यास्पद बन जायगी। जैसे नाव तो डूब चुके, और चीख बाद में आये या जैसे 'हाय', पहले सुनाई दे और गोली बाद में।

ऐसा बहुत कम होता है क्योंकि, एक तो ध्वनि-सयोजक काफी सतर्क रहता है, और रिहर्सल के दौरान में तैयार की गई सूची से आँख नही हटाता, और दूसरे, निर्देशक अपने क्यूबिकल में बैठ नाटक की स्क्रिप्ट के अनुसार ध्वनि-सयोजक को प्रकाश-संकेत (Light cues) देता रहता है। क्षीण किन्तु महत्त्वपूर्ण ध्वनि, प्रबल नाद में डूब न जाय इसके लिए ध्वनि-संयोजक अपने कानो पर Head-phones लगाए रहता है। उधर निर्देशक समूचे ध्वनि-प्रभाव को नाटक-स्टूडियो की ध्वनियो और शब्दो के साथ इस प्रकार सम्न्वित करता है कि ध्वनि-प्रभावो का अर्थ, उनकी रंजकता नष्ट न हो, और सवादो की स्पष्टता भी न जाने पाए।

यदि परिपार्श्व विशेष की रचना के लिए एक से अधिक ध्वनि-प्रभावो की आवश्यकता पडे तो यह अच्छा रहेगा कि उनमें से प्रत्येक को अलग-अलग कायम Establish किया जाय, जैसे (Felix felton) ने अपनी उपयोगी पुस्तक 'रेडियो-नाटक' में कहा है :

"If you want to establish, let us say, seaside, it is no use collecting all the noises, the waves, children, rock-sellers, pierrots, and the rest-and lumping them all in together, the result is confusion "

इस अस्पष्टता का मूल कारण यह है कि दृष्टि की भाँति कान बहुत से प्रभावों को एक समय पर ग्रहण नही कर सकता। और वास्तव में, श्रोता को अपनी कल्पना में असली दृश्य का निर्माण करने के लिए आधार रूप सकेत-मात्र ही चाहिए। अगर एक से अधिक ध्वनि-प्रभावो का सकलन किया जाना अनिवार्य हो तो उन्हे एक के बाद एक प्रस्तुत किया जाना चाहिये। जब एक प्रभाव चित्र की विशेषता को प्रत्यक्ष कर चुके तो उसे धीरे से Fade under करके दूसरे ध्वनि-प्रभाव को उभारे और इसी तरह अन्य ध्वनियो का उपयोग करता रहे।

सुप्रसिद्ध रेडियो-नाट्य निर्देशक वाल गीलगुड ने रेडियो-लेखक को एक बहुत अच्छा सिद्धान्त बताया है। "When in doubt, cut," यानि जब भी एक ध्वनि-प्रभाव की उपयोगिता या अनिवार्यता के विषय में सन्देह हो, उसे काट देना ही नाटक के लिए हितकर सिद्ध होता है। क्योंकि यदि एक पार्श्विक ध्वनि किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर सकती, तो उसकी कोई आवश्यकता, कोई महत्त्व नहीं है। ध्वनि परिपार्श्व-मात्र है, नाटक का सार तो नही। नाटक का सार है सवाद। यदि ध्वनि-प्रभाव सवादो के प्रभाव को अस्पष्ट करता है, या स्वय सवाद वस्तु-वर्णन के लिये पर्याप्त तथा समर्थ है, तो ध्वनि-प्रभाव कदाचित् अपेक्षित नही है। नाटक में प्रधानता सवादो की है। अगर एक सुन्दर और प्रभावशाली ध्वनि, सवाद के अश-मात्र को भी नष्ट कर देती है, तो उसकी कोई आवश्यकता नहीं। निर्देशक हमेशा पयत्न करता रहता है कि ध्वनि-प्रभावो को इस स्तर पर रखा जाय कि वे सवादो को दवा न लें। इसीलिए आपने प्राय सुना होगा कि वह ध्वनि का सकेत देने के पश्चात उसे पृष्ठभूमि में डाल देता है। इससे सवादो के स्पष्ट-प्रवाह में कोई रुकावट नही आने पाती। उदाहरणार्थ, अगर लेखक एक दृश्य को रेस्तोरां के वातावरण में स्थापित करना चाहता है, तो ध्वनि-प्रभावों का प्रयोग, इस प्रकार होगा —

लोगो का वातचीत करने का शब्द 'बैरा बैरा' की पुकार ··फिर विभिन्न दूरियों से सुनाई देती हुई 'चाय, टोस्ट,' और 'अडा हाफ बॉयल्ड,' इत्यादि की आवाज़ें। कभी-कभी हँसी·· और 'बिल लाओ' आदि का सम्मिलित शब्द उभरता है। कुछ समय तक अपना प्रभाव स्पष्ट रूप से श्रोता पर छोडने के पश्चात् ध्वनि-प्रभाव सवादो के नेपथ्य में चला जाता है और फिर दृश्य के सवाद प्रकट होते हैं।

दीनानाथ—लीजिये चाय पीजिये अब गुस्से को थूक डालिये।

गगाप्रसाद—अजी नही, रहने दीजिये, मैं सब समझता हूँ, यह आपकी पुरानी

आदत है। पहले आदमी की बेइज्जती कर देना फिर उससे क्षमा चाहना''आदि। और जब दृश्य समाप्त होगा तो रेस्तोरां के ध्वनि-प्रभाव पुन. स्पष्ट होकर उभर आयेंगे।

ऐसे दृश्यो को लिखने के लिए जिनके पीछे एक निरन्तर ध्वनि रहती हो एक जरूरी बात का ध्यान रखना चाहिये। इस सम्बन्ध में काउगिल का परामर्श है : "If the loud and obscuring sound can't be taken away move the characters" अर्थात् यदि ध्वनि का विलयन सभव अथवा उचित न हो, तो परिपार्श्व-परिवर्तन अपेक्षणीय होगा—विशेषकर ऐसी स्थिति में जब ध्वनि के बल और तीव्रता को कम करने से उसका प्रभाव क्षीण होता है। उदाहरणार्थ, नाटक का एक दृश्य फैक्ट्री में है जहाँ कई मशीनो का शोर सुनाई देता है। पात्र अपने वाक्यो को शोर में डूबने से बचाने के लिए ऊँचा बोल रहे है, लेकिन समूचा दृश्य अस्पष्ट है। अगर मशीनो की तीव्र ध्वनियो के स्वर-भार को नियन्त्रित करके उन्हे सवादो के पीछे डाल दिया जाय तो फैक्टरी के परिपार्श्व की विशेपता का अन्त हो जायगा। और ध्वनि वैशिष्ट्य के अन्तर के कारण सैटिंग का प्रभाव नष्ट हो जायगा, क्योकि ऐसा प्रतीत होगा कि जैसे फ़ैक्ट्री कही दूर चली गई है। पात्रो को साधारण वाणी मे वार्तालाप करते सुनकर हम शायद यह समझ लें कि दृश्य एक साधारण कमरे में स्थित है। वास्तव में इस मुश्किल का हल यही है कि अगर ध्वनि की तीव्रता को कम करना सभव न हो तो पात्रो को दूसरे स्थान पर ले जाया जाय, जहाँ कि शोर कम हो। इसलिए जब दृश्य आरम्भ होगा तो दोनो मित्र ऊँचा बोल रहे होंगे। यह पृष्ठभूमि के शोर की तीव्रता को और भी बढा देगा। फिर उनमें से एक कहेगा, 'मित्र, यहाँ तो बहुत शोर है। कही और चलो।' और फिर दूसरा मित्र उसे अपने दफ्तर में चलकर बात करने का सुझाव देगा। दरवाजा बन्द होने की ध्वनि के साथ फैक्टरी का शोर हल्का पड जायगा और दोनो पात्र साधारण स्वर मे बातचीत कर सकेंगे। बात समाप्त होते ही दरवाजा खुलने के शब्द के साथ फैक्टरी का शोर उभर आयेगा, जिससे यह प्रतीत होगा कि पात्र फिर उसी सेटिंग में वापिस आ गये।

प्राय दृश्य की विशेपता को स्पष्ट करने के लिए तीव्र ध्वनियो के प्रयोग की आवश्यकता नही पड़ती। एक हल्का-सा सकेत-मात्र समूचे दृश्य के प्रतीक के रूप में श्रोता को उसकी विशेपता का ज्ञान करा देता है—जैसे पक्षियो का मद्धिम-सा कलरव सुनते ही श्रोता वन की कल्पना कर सकता है। इस प्रकार ध्वनि विशेप प्रतीति का उद्दीपन तो करती है, लेकिन फिर भी उनके प्रभाव की गाढता एव एकाग्रता के लिए सवादो में उनका उल्लेख जरूर करना चाहिये। वैसे नाटक सुनने का अभ्यस्त श्रोता सकेत मात्र से ही समूचे प्रभाव का निर्माण कर लेता है।

इसी रूढ सहस्मृति के आधार पर रेडियो-नाट्यकार ध्वनि-प्रभावो का साकेतिक प्रयोग करता है।

८२. **कथानक की व्याख्या**—रेडियो-मच का परिपार्श्व निर्माण करने के अतिरिक्त ध्वनि-प्रभाव नाट्य-क्रिया की व्याख्या भी करते है। ऐसी क्रियायें जिनकी व्याख्या ध्वनि द्वारा हो रही हो, या तो सवाद में वर्णन होती हैं, या उनकी सूचना पहले मिल जाती है, और श्रोता उसकी ध्वन्यात्मक व्याख्या की उत्सुकता से प्रतीक्षा करता है। ध्वनि इसलिये अनिवार्य होती है कि उसके अभाव में क्रिया विशेष का अर्थ स्पष्ट रूप मे अनुभव नही हो सकता। उदाहरणार्थ एक पात्र कहता है "कमरे में घुटन है, खिडकी खोल दो।" अब अगर श्रोता खिडकी खोलने का ध्वनि-प्रभाव न सुने तो उसे निराशा होगी। इस उदाहरण में अकेला शब्द या अकेली ध्वनि पर्याप्त नही, दोनो का समन्वय ही सफल और पूर्ण चित्र उपस्थित कर सकता है। श्रोता चाहते हैं कि अभिनेता जो कुछ भी करते हैं उन्हे उसका आभास मिलना चाहिये। चाय पीना, कपडे धोना, नहाना, चलना-फिरना, खिडकी या दरवाजा खोलना, बन्द करना इत्यादि, इन सब क्रियाओ की व्याख्या ध्वनि-प्रभावो द्वारा हो। लेकिन इस आधार पर सम्पूर्ण यथार्थ चित्रण का प्रयत्न करना अपेक्षणीय नही, क्योंकि यह रेडियो-नाटक के उद्देश्य, स्पष्ट-चित्रण के विरुद्ध है। यह आवश्यक नही कि हर बार एक पात्र एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाय तो हम इस क्रिया के साथ-साथ पदचाप भी दें। पदचाप का प्रभाव सिर्फ वहाँ आना चाहिये जहाँ उसके अभाव से क्रिया को समझने में कठिनाई हो। प्राय सवाद-सकेतो और माइक से दूर निकट होने भर से ही आने-जाने की क्रिया स्पष्ट हो जायगी। अनावश्यक ध्वनि-नाटक के प्रभाव को कम करती है और शब्द-चित्र को अस्पष्ट बना देती है। जैसा कि Felix Felton ने कहा है—

"A fussy succession of doors and steps . prevents their being dramatically significant "

कुछ पद-ध्वनियाँ ऐसी होती हैं जिनका उपयोग आवश्यक है। उदाहरण के लिए सीढियाँ चढने-उतरने की ध्वनि। सिर्फ माइक से दूर हटना यह नहीं बतलायेगा कि अभिनेता सीढियो से उतरा या चढ़ा है। पग-ध्वनि ऐसी स्थिति में भी अनिवार्य होगी जब एक अभिनेता बिना कुछ कहे ही दृश्य से हट जाता हो। यहाँ पदचाप का प्रयोग उचित और प्रभावास्पद होगा। मेरे नाटक 'इसान और कानून' में केवल पद-चाप द्वारा ही क्रियॉन के क्रूर व्यक्तित्व के प्रभाव की पुष्टि की गई थी। मैंने आरम्भ में भारी-भरकम पग-ध्वनि को क्रियॉन के दृढ बल्कि क्रूर निश्चय के प्रतीक के रूप में प्रयुक्त किया। आगे चलकर इस विशेष ध्वनि-प्रभाव की आवृत्ति

से कई प्रभावस्पद स्थितियो का विधान हो सका। ऐसे प्रयोग में पग-ध्वनि एक विशेष भाव सकेत (Motif) के रूप मे प्रयुक्त होती है, जैसा कि Luhitsch के फिल्मो में दरवाजो का प्रयोग होता है।

रेडियो-नाटक के स्क्रिप्ट में इन सब ध्वनि-प्रभावो का उल्लेख होना चाहिये, स्पष्ट रूप से। बेहतर होगा कि ध्वनि-प्रभावो के सकेत अपने स्क्रिप्ट में लिखने से पहले नाटककार इनकी कल्पना करते हुए यह सोचे कि वास्तव मे उनका क्या प्रभाव होगा, अर्थात्, क्या सुनने मात्र से ही श्रोता स्पष्ट और नि मन्दिग्ध रूप से वही अर्थ ग्रहण करेगा जो लेखक को अभिप्रेत है या नही। केवल वस्तुओ का सकेत निरर्थक है। रेडियो-नाटक में वस्तुओ की ध्वनियो का सकेत वर्णित होना चाहिये। ऐसा करने से हम यह भी मालूम कर सकेंगे कि कौन सी क्रियाएँ ऐसी है जिन्हे ध्वनियो द्वारा व्यक्त या प्रकट नही किया जा सकता। उदाहरणार्थ, अगर हमने यह लिखा है कि "सलमा सूई-धागे से मेजपोश पर फूल काढ रही है" तो हमें तुरन्त पता चल जायगा कि सूई के कपडे में लगने से कोई ध्वनि नही होगी जिसे श्रोता सुन सके। इसलिए हम ऐसे निरर्थक सकेत को काट देंगे। नये रेडियो-लेखक के लिए वी बी. सी. कोलम्बिया और एच. एम. वी. के रिकार्डो की सूची का अध्ययन लाभप्रद सिद्ध होगा। उनमें प्राय सब ध्वनियो का वर्णन मिलेगा जो सामान्यत. निर्देशक प्रयुक्त करता है।

८३. विशेष प्रभाव—साधारण ध्वनि की प्राकृतिक लय, और स्वभाव में अन्तर आ जाने से उसके भाव और अर्थ में भी अन्तर आ जाता है। इसी सिद्धान्त के आधार पर ध्वनि-सयोजक विशेष और असाधारण प्रभावो की रचना करने के लिए अनेक प्रयोग करता है। इस प्रकार विशेष स्थिति में असाधारण. अस्वाभाविक विकृत ध्वनि साकेतिक और प्रतीकात्मक मूल्य ग्रहण कर लेती है। काउगिल ने एक आकर्षक उदाहरण दिया है। एक त्रस्त व्यक्ति, जिसका मन प्राय अस्थिर है, हल्की से हल्की और साधारण से साधारण ध्वनि से भयभीत हो जाता है और उसमें अनेक अर्थ खोजने लगता है। कारण, उसकी कल्पना असाधारण रूप से तीव्र है और अनुभूति को अतिरजित वल्कि विकृत कर देती है। रेडियो-नाटक को प्रस्तुत करने वाला पार्श्विक ध्वनियो को कभी-कभी अतिरजित (Magnify) और विकृत (Distort) कर देता है, ताकि श्रोता अभिनेता का सह-अनुभवी बन सके। एक व्यक्ति को यह वहम हो गया है कि तीव्रगामी 'काल' कदम बढाता जा रहा है, और वह स्वयं पीछे रह गया है। इस सूक्ष्म अन्तरनिष्ठ भाव-सकेत को ध्वनि-सयोजक बडी सफलता से व्यक्त कर सकता है। वह क्लाक की टिक-टिक को पार्श्विक ध्वनि के रूप में प्रयुक्त करेगा और नाटक की या दृश्य विशेष की प्रगति के साथ ध्वनि का

स्वर-भार बढ़ाता चला जायगा, उसकी लय बढ़ाता चला जायगा, उसमें क्रूर प्रकार की विकृति पैदा करता चला जायगा। इस प्रकार श्रोता अभिनेता की अन्तरानुभूति को प्रत्यक्ष रूप में सुन सकेगा।

लय और स्वर-भार में असाधारणता पैदा करने के अतिरिक्त रेडियो-नाट्य में ध्वनि के स्वभाव को बदलकर भी विशेष प्रभाव प्राप्त किये जाते हैं। यह Filters के उपयोग से होता है, जिनकी सहायता से ध्वनि के दो तत्वो तीव्र नाद-कम्पन (High frequency) और मद नाद कम्पन (Low frequency) के प्राकृतिक सन्तुलन में भेद पैदा करके, उस के स्वभाव को बिलकुल बदल दिया जाता है। कम्पन को कम कर देने से ध्वनि में तीव्रता—एक प्रकार की कर्कशता—आ जायगी, और तीव्र नाद-कम्पनो को काट देने से इससे उलट प्रभाव प्राप्त होगा। 'कलमानस' नामक कल्पना-प्रधान नाटक में इस प्रकार की ध्वनि-विकृति का विशेष प्रयोग किया गया था।

ध्वनि-प्रभावो का इस प्रकार प्रयोग Post impressionist पद्धति के अन्तरगत आएगा, जहाँ प्रभाव की वस्तुनिष्ट अनुकृति की अपेक्षा, उसके द्वारा प्रतिपादित आन्तरिक प्रतिक्रिया को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया जाता है। ध्वनि के स्थान पर ध्वनि द्वारा प्रतिपादित प्रतिक्रियाएँ, ध्वनि-सयोजक का कार्यक्षेत्र बनाती है। यह प्रयोग कोरी रोमाचकता मे परिणित न हो जाय इसका ध्यान कुशल कलाकार को रखना इष्ट है।

८४. **वातावरण की सृष्टि**—ध्वनि-प्रभाव परिपार्श्व का निर्माण तो करते ही है, उनका सुरुचिपूर्ण प्रयोग वातावरण की सृष्टि में भी सहायक होता है, यद्यपि रेडियो-नाट्क में वातावरण का कोई पृथक या स्वतन्त्र अस्तित्व नही है। वातावरण का भाव परिपार्श्व या पृष्ठभूमि से उद्बुद्ध होता है। काउगिल के सुन्दर शब्दों में "It rises like a mist out of the story and characters and setting it is a feeling that surrounds them"

वे ध्वनियाँ जो वातावरण के भावविशेष की सृष्टि करती है, नाटक के परिपार्श्व का ही एक अश होती है। इसका एक सुन्दर उदाहरण भी काउगिल ने प्रस्तुत किया है। मान लीजिए एक दृश्य विशेष का Mood एकान्त का है, और परिपार्श्व रात के समय ग्राम-प्रदेश। इस एकान्त की कलात्मक विशेषता (Quality) क्या है? निर्जनता, शान्ति, विस्तृत देश। पर ये सब गुण ध्वन्यात्मक नही हैं। ये नकारात्मक (Negative) गुण है। अगर श्रोता शान्तिमात्र से परिचित हो, तो वह न तो दृश्य के विस्तार का अनुभव करेगा और न ही परिपार्श्व की प्रमुख विशेपता, रात के समय ग्राम-प्रदेश का। इसलिए निर्जन की शान्ति का प्रभाव ध्वन्यात्मक विभेद द्वारा

प्रस्तुत किया जायगा। अर्थात्, यदि यह शान्ति एक ध्वनि के पश्चात् अनुभव की जाय तो उसका प्रभाव निश्चय ही अधिक तीव्र होगा। इसलिए ध्वनिशून्य निर्जन के प्रभाव को सजीव करने के लिए हमें ध्वनि का प्रयोग करना होगा। हम बहुत दूर से आती हुई रेल की सीटी सुनेंगे जो कभी स्पष्ट और कभी अस्पष्ट हो रही है, और फिर सहसा चुप हो जाती है। इस प्रकार न केवल दृश्य के विस्तार का अनुभव होगा वल्कि एकान्त के प्रभाव की पुष्टि भी होगी। इसी तरह एक व्यक्ति के अकेलेपन का प्रभाव और भी तीव्र हो जायगा यदि हम पार्श्वभूमि में ऐसे व्यक्तियों की बोलचाल का प्रयोग करें जो अपने में मस्त चले जा रहे हैं। परिचितता का वास्तविक मूल्य अपरिचितों के बीच ही पता चलता है।

प्रतिभाशाली नाटककार कितने ही ध्वनि प्रभावों का प्रयोग कर सकता है। शहर में हैजा हुआ और सारे रहने वाले शहर छोड़कर भाग गये। उदासी, वीरानी, नीरवता, निर्जनता—इनका प्रभाव एक अकेले कुत्ते के रोने की ध्वनि द्वारा अधिक मार्मिकता से अभिव्यक्त किया जा सकता है। अभिनेता चलते-चलते शहर से बहुत दूर निकल आया है—दूरी, एकान्त : इस प्रभाव को देहाती तेलचक्की की कुककुक द्वारा सफलता से व्यक्त किया जा सकता है। सभा विसर्जित हो चुकी है, नेता की किसी बात का समर्थन नहीं किया गया, सभा-भवन खाली हो चुका है (एकान्त और नैराश्य)। इस अत्यन्त आत्मीय अनुभूति को श्रोता तक पहुँचाने के लिए रेडियो-नाट्यकार दृश्य को एक बहुत बड़े कमरे में स्थित करेगा। कमरे की हलकी-हलकी गूंज एकान्त और नैराश्य के प्रभाव की पुष्टि करेगी। एक सफल ब्रिटिश फिल्म 'The browning version' में इस विचार को दृश्यात्मक अभिव्यक्ति दी गई थी। असफल अध्यापक की निराशा का चित्र इस प्रकार लिया गया था—कैमरा पहले अध्यापक का क्लोज-अप लेता है, फिर खाली बेंचों की (Details) को दिखलाते हुए एक लांगशाट में अध्यापक को उसके मंच पर दिखाया जाता है को उसके, अकेला, इतने बड़े कमरेमें ··।

Mood setting के लिए प्राय: बहुत सी ध्वनियों के संयोजन की आवश्यकता पड़ती है। कभी-कभी ऐसी ध्वनियों की, जिनका दृश्य से सीधा सम्बन्ध तो नहीं है लेकिन उनकी सापेक्षता का मूल्य (Relational value) है। इस विषयमें भी लेखक को यह बात ध्यान में रखनी है। ध्वनि का प्रभाव उनकी अनुकूलता (Suitability) पर निर्भर है। और अगर लेखक अपने नाटक को कल्पना के रंगमंच पर खेले तो उसे अनुभव होगा कि अकसर एक ध्वनि, दो या उससे अधिक ध्वनियों से अधिक प्रभाव जनक होती है। जैसे कविता में कभी एक शब्द अपनी भावोद्दीपन शक्ति Evocative quality द्वारा उस प्रभाव की सृष्टि कर सकता है जो पूरा पद नहीं कर सकता। वातावरण की व्याख्या के लिए प्रतीकात्मक ध्वनि का प्रयोग यथार्थात्मक ध्वनि-प्रयोग

से अधिक सफल होता है।

८५. द्वितीय परिमाण—जैसा कि एक परिच्छेद में विस्तारपूर्वक कहा जा चुका है, श्रव्य में दिशाभास नही होता दैशिक अतर का आभास होता है, और यह ध्वनियो के स्वरभार-परिवर्तन में व्यक्त होता है। अत श्रव्य में ध्वन्यतर की सूचना या 'Sound perspective' अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसी से श्रव्य-चित्र में यथार्थता आती है। श्रव्य में दूरी और निकटता का अनुभव इसलिए अधिक प्रभावास्पद होता है कि एक तो स्वरो का अतर वास्तविक दैशिक अतर से अधिक स्पष्ट और तीव्र होता है, और दूसरे, दृश्य-तत्त्व के अभाव में वह अतर और भी अधिक प्रतीत होता है।

"To the visual observer aural indications of space are secondary experiences, because his eye delineates the scene so well that what he hears has no relative importance On the blind listener however the spatial characterization of a sound makes a forcible impression, for it is through it that he first becomes aware of distance. (Arnheim)

दैशिक अतर की व्यजनात्मक सत्ता का अच्छा प्रयोग रेडियो-नाटक के लिए बहुत आवश्यक है। दूसरे परिमाण का प्रभाव अभिनेताओ के पारस्परिक दैशिक अतर को नियन्त्रित करने से प्राप्त हो सकता है। अभिनेताओ के माइक से दूर होकर या निकट आकर विभिन्न स्थानो और कोणो से बोलने से गहराई (Depth) का आभास होता है, इसकी चर्चा भी पहले परिच्छेदो में की जा चुकी है। दूसरे परिमाण की रडियो-नाटक में आवश्यकता क्यो पडती है ? इसलिए कि भावक कलाकृति में यथार्थ की झलक देखना चाहता है। कलाकार की कल्पना ने भले ही चित्र का रूप बदल दिया हो लेकिन भावक सदा उन यथार्थ आधारो की खोज करेगा जिन पर इस अतिरजक और विचित्र कलाकृति का निर्माण हुआ है। श्रोता भी रेडियो-नाटक का एक दृश्य देखने के साथ ही उसकी तुलना अपने अनुभव के ससार से करना आरम्भ कर देता है। अगर चित्र एक परिमाण वाला उथला (Flat) है तो उसे वह पूरा आनन्द न दे सकेगा, क्योकि वह उसके अनुभव के प्रतिकूल है। अरूप (Abstract) और अमूर्त (Non-representational) नाटको को छोडकर जहाँ प्रेक्षक को अनुभूत जीवन से तुलना करने की आवश्यकता ही नहीं पडती, यह सिद्धान्त अन्य सब प्रकार के नाटकों के विषय में सत्य है। दूसरे परिमाण में प्रभाव पैदा करने के लिए ध्वनि-प्रभावो का उपयोग बहुत सहायक सिद्ध होता है। ध्वनि-सयोजन द्वारा निर्मित नैपथ्य या परिवार्श्व-भूमि दृश्य को सजीवता प्रदान करती है। एक पुराने लोकप्रिय नाटक का उदाहरण लीजिए—W. W. Jacobs की कहानी The monkey's paw के रूपान्तर 'उल्लू की जुबान' (सैयद इम्तियाज अली ताज) में बूढे माँ-बाप सरदी से ठिठुरते हुए, माइक के बहुत निकट, अपने पुत्र की प्रतीक्षा कर रहे हैं, जो बिजली-

घर में काम करता है। बाहर तूफान हुँकार रहा है। जैसे ही माता-पिता अपने पुत्र के लौटने, उसके तग पेचीली सडक पर से आने का जिक्र करते है, तेज हवा का गहरा शोर गूँज उठता है। दृश्य में भावरंजना पैदा करने के अतिरिक्त यह योजना दृश्य को पर्स्पेक्टिव और दैशिक विशेषता देती है। एक ध्वनि अग्रभूमि (Foreground) बन जाती है और दूसरी (तूफान की) पार्श्वभूमि, और इस तरह दृश्य मे गहराई और विस्तृति का प्रभाव आ जाता है।

रेडियो-नाटक में प्राय वाणी को भी ध्वनि-प्रभाव के तौर पर प्रयुक्त किया जाता है, विशेषकर जहां पार्श्वभूमि पर प्रकाश डालना अपेक्षणीय, बल्कि आवश्यक हो। इन अनाम पात्रो को चरित्र नही बल्कि परिपार्श्व का एक अंग, मानकर, ध्वनिमात्र के रूप मे प्रयुक्त किया जाता है। रेल के डिब्बे मे रखे गये दृश्य मे हम चरित्रों के सवादो पर ही ध्यान देते है, नेपथ्य की रेल-ध्वनि पर नही। उसी प्रकार बाजार के दृश्य मे हमारे आकर्षण का केन्द्र तो दूकानदार और ग्राहक का वार्तालाप ही रहता है, दूसरी ध्वनियाँ या वाणियां दृश्य को गहराई (Depth) देने के लिए रखी जाती है। ये चरित्र अरूप होते है, पर निरुद्देश्य नही। ये इस तरह दृश्य में आकर उपस्थित होते है कि उनके प्रवेश का ज्ञान नही होता और ये शून्य में से उठते हुए शब्द की तरह होते है, जो कुछ समय तक वातावरण में गुजायमान होकर फिर शून्य में लुप्त हो जाय। और जैसे-जैसे ये अरूप और चरित्र-रहित पात्र नाटक के प्रति अपने कर्तव्य का पालन कर चुकते है वे वहां से चुपचाप प्रस्थान कर जाते है। इन चरित्रो को रेडियो की भाषा में 'स्वर १, स्वर २, स्वर ३, कहा जाता है। रेडियो में आने वाले युवक अपना अभिनय का जीवन इन्हीं स्वरो के अभिनय से शुरू करते है।

इन स्वरो को दृश्य की विशेषताओ का प्रतीक बनाकर प्रयुक्त किया जाता है। जैसे एक व्यापार-केन्द्र का ध्वनिचित्र प्रस्तुत करने के लिए शायद इन स्वरो का उपयोग होगा—आते-जाते लोगो की बातचीत का स्वर, एक बातूनी दल्लाल का स्वर, एक आघ सेठ का स्वर। इन ध्वनियो से श्रव्यचित्र में यथार्थता और रजकता आ जायगी। इन स्वरो के उपयोग के क्षेत्र में कई नये प्रयोगो की सम्भावना है। सामान्यत दो प्रकार के प्रयोग रेडियो-नाटक में बहुत मिलेंगे। कभी तो मुख्य चरित्रो और पार्श्विक स्वरों की भावात्मक अनुकूलता और साम्य से प्रभाव पैदा किया जाता है। जैसे मुख्यपात्र बहुत ही प्रसन्न है, उसे लगता है जैसे आज ससार का हर प्राणी, उन की हर वस्तु उल्लसित है, उसकी खुशी बाहर की वस्तुओ और अन्य प्राणियो के व्यवहार में प्रतिबिम्बित (Reflect) होगी। इसलिए नैपथ्य में ऐसी ध्वनियां या स्वर रखे जायेंगे जो दृश्य के मूलभाव की पुष्टि करें, अनुकूलता और साम्य के आधार पर। और कभी इसके उलट होगा। भाव की परिवृद्धि की जायगी **भावात्मक** विभेद

(Emotional contrast) द्वारा। मुख्य पात्र अकेला है, दुखी है, ससार से घृणा करता है, उसे ससार की सब बातें बुरी लगेंगी। नाटककार इस स्थिति को इस प्रकार व्यक्त करता हे। मुख्य पात्र का भाषण बार-बार ऐसे स्वरो से बीच-बीच में टोका जायगा जो मुख्य पात्र के भाव का प्रतिकार और विरोध करें। विषादपूर्ण स्वगत-भाषण के नेपथ्य में कुछ चिन्तामुक्त लोगो के हँसने-खेलने का ध्वनि-प्रभाव लाकर मुख्य पात्र की व्यथा को उभारा जा सकता है।

कई नाटको या रूपको में सूत्रधार या निरूपक (Narrator) का प्रयोग किया जाता है, जिसका उद्देश्य कथा की अपेक्षा कम आवश्यक या कम नाटकीय हिस्सो को सक्षिप्त करना होता है। सूत्रधार कभी-कभी नाट्य-क्रिया के कार्य-व्यापार की चर्चा भी करता है। यानी वह श्रोता को बताता है कि कहाँ क्या हो रहा है। अनुभव से देखा गया हे कि नाटकीय से अनाटकीय व्याख्या का सहारा लेने से नाटक में कही-कही नीरसता भर जाती हे। इसलिए सूत्रधार के सीधे (Flat) कथा-वर्णन को गोलाई और सजीवता देने के लिए रेडियो-निर्देशक अकसर ध्वनि-प्रभावो का प्रयोग करता हे। इससे कथा में रजकता तो आयेगी, इसके साथ वर्णित घटनाएँ नाटकीय रूप मे उपस्थित भी हो सकेंगी।

सूत्रधार की वाणी में स्वर-छटाएँ (Tonal-shades) भले ही हो पर वह रहता तो एक ही स्तर (Level) पर है। इसलिए दृश्य में एक सकुचित परिप्रेक्षण (Narrow perspective) का अनुभव होने लगता है। अब अगर वर्णित घटनाओ की ध्वन्यात्मक व्याख्या की जा सके तो दृश्य एक विस्तृत परिप्रेक्षण का अनुभव करायेगा। जैसे अगर सूत्रधार एक वर्षा की रात का वर्णन कर रहा है, जिसकी खामोशी दूर कही चीख उठने वाले कुत्ते की आवाज से टूट जाती है, तो कथा की पाश्वभूमि में वर्षा की ध्वनि और उचित स्थान पर दूर से आती हुई कुत्ते की आवाज, दृश्य को एक वातावरण, एक अन्तसूंचन (पर्स्पेक्टिव) दे देंगी। ये ध्वनियाँ सूत्रधार के वर्णन में कोई बाधा नहीं डालेंगी क्योंकि ध्वनि-सयोजक इन्हें बिलकुल कथा से एकाग कर देगा। सूत्रधार की व्याख्या के लिए केवल वही ध्वनियाँ ही अग्रभूमि में लाई जानी चाहियें जिनकी सहायता से दृश्य मे निश्चय सुधार होता है। अनावश्यक ध्वनियाँ वर्णित कथा के प्रवाह मे रुकावट डालती हैं। नाटक की गति (Tempo) पर इसका बुरा प्रभाव पडता है।

८६. 'सगीत' का उद्देश्य—सगीत भी रेडियो-नाटक मे प्राय इसी उद्देश्य से प्रयुक्त होता है जिससे कि ध्वनि-प्रभाव। यानी सगीत परिपार्श्व की विशेषताओ की साकेतिक व्याख्या करता है, और सवादो के लिए समुचित वातावरण का निर्माण। कभी वह शारीरिक क्रिया को व्यक्त करता है। वास्तव में जहाँ तक ध्वनि-प्रभावो का

सम्बन्ध है शुद्ध ध्वनि-प्रभावो और सगीत-प्रभावो के बीच पार्थक्य की रेखा खीच सकना कठिन है। कभी एक ध्वनि-प्रभाव अपनी सगीतात्मकता के लिए उपयुक्त होगा, कभी एक सगीत का टुकडा अपने ध्वन्यात्मक मूल्यो के लिए। सगीत को अलकार-मात्र मानकर प्रयुक्त करना न केवल अवाछनीय है, वल्कि नाटक के लिए अहितकर भी है।

सगीत-सयोजन मूलत निर्देशक या उसके सहकारी ध्वनि-सयोजक का विषय है, लेकिन अगर वह उसके शिल्प को पूरी तरह समझना चाहता है तो रेडियो-नाटक के स्टूडियो-पक्ष का विवेचन रेडियो-लेखक या श्रोता के लिए अनिवार्य है, क्योकि रेडियो का असली स्वरूप कागज़ पर लिखा हुआ नाटक नही है वल्कि वह अन्तिम रूप (Final product) है जो रेडियो सेट द्वारा उपलब्ध होता है। अकसर रेडियो-नाटक के सृष्टा श्रव्य-कला से अपरिचित के लिए दिलचस्प नही होता, क्योकि वह उस सौन्दर्य की कल्पना नही कर सकता जो इस कृति के अन्तिम रूप को प्राप्त होगा। एक और वात भी है। रेडियो-नाटक के शिल्प से पूरा-पूरा लाभ उठाने के लिए यह अपेक्षित है कि नाट्यकार उसके वल, प्रभाव और परिसीमाओ से परिचित हो।

सगीत का प्रयोग रेडियो-नाट्य-शिल्प के दूसरे प्रभावोत्पादक उपकरणो या अलकारोकी अपेक्षा वहुत विवाद का विषय है। प्राय एक श्रोता का मत दूसरेके मत का विरोधी होता है। और तो और, दो रेडियो-निर्देशक कभी एक दूसरे से सहमत नहीं होते। अगर एक को सगीत विशेष अद्भुत रूप से उपयुक्त लगता है तो दूसरे को वही पूर्णतया निरर्थक और निर्मूल्य। एक निर्देशक तार के साज़ो द्वारा प्रस्तुत 'कृति' अच्छी समझता है तो दूसरा Pluck वाद्य-यत्रो द्वारा प्रस्तुत सगीत को अधिक प्रभावास्पद मानता है। और कोई साधारण Percussion यत्रो द्वारा ही सव प्रभाव निर्मित करता है। वात यह है कि सगीत का प्रयोग असल में रुचि का विषय है, किसी पूर्व-निर्धारित मानदण्डो का नही।

रगमच में तो सगीत का उपयोग प्राय निषिद्ध ही हो चुका है। हालाकि एक मौलिक प्रतिभा वाले निर्देशक के लिए यह विषय इतना सारहीन और रोचक सम्भ-वनाओ से रहित नहीं हो सकता। फिल्म में नैपथ्य-सगीत का वहुत प्रयोग होता है। यह प्रयोग आदर्श नही कहे जा सकते। वल्कि अगर आलोचककी दृष्टिसे देखा जाय तो प्राय यह पार्श्विक सगीत वेकार-सा होता है। इसमे निरी अतिरजनाका आधिक्य होता है और सयत प्रभावो का अभाव। फिर भी एक साधारण सिनेमा देखने वाला इस अरुचिपूर्ण प्रयोग की ओर ध्यान नही देता। इसका कारण यह है कि फिल्म देखते समय दर्शक का आकर्षण चलचित्र पर केन्द्रित रहता है, वेतुके सगीत की ओर उसका ध्यान नही जाता। रेडियो-नाटक के श्रोता का ध्यान केन्द्रित रखने वाली ऐसी कोई अन्य वस्तु नही है, इसलिए वह संगीत-योजना की वडी आलोचना करता है। इसके अलावा

रेडियो-नाटक का प्रभाव अतिरंजना से मुक्त रहने में है। अत नैपथ्य-सगीत कम-से-कम प्रयुक्त होना चाहिए।

८७ **उचित और अनुचित प्रयोग**—आमतौर पर साधारण श्रोता यह शिकायत करता है कि नाटक में बहुत ज्यादा पार्श्विक सगीत सुनाई दिया। इस शिकायत के कई कारण हो सकते हैं। अकसर सगीत के टुकडे इतने लम्बे होते हैं कि उनसे नाट्य-क्रिया के प्रभाव में बाधा आ जाती है। और इस प्रकार प्रभाव की पुष्टि करने के बदले उसे क्षीण कर दिया जाता है। बी बी सी के एक गुणी और विख्यात निर्देशक Felix Felton ने इस दोष की व्याख्या करते हुए एक बहुत दिलचस्प उदाहरण अपनी The radio play नामक पुस्तक में दिया है। वह लिखता है मै एक पार्टी में सम्मिलित था। मेजबान ने एक मेहमान को जो पियानो बजाया करता था, कुछ सुनाने को कहा। उसका आशय था एक छोटी-सी शोपें-कृति से पार्टी में रगीनी आ जाय। लेकिन मेहमान भी बहुत विलक्षण बुद्धि का था। उसने आव देखा न ताव, पूरा हैमरक्लावियर सॉनिट बजाना शुरू कर दिया। पार्टी पार्टी न रहकर पियानो-कॉन्सर्ट बन गई। इसी तरह अगर रेडियो-नाटक में लम्बे-लम्बे सगीत के टुकडो का प्रयोग हो तो नाटक खड-खड-सा प्रतीत होता है। श्रोता का आकर्पण निश्चय ही विकेन्द्रित हो जाता है। तो ऐसा पार्श्विक सगीत जो श्रोता का ध्यान नाटक में सवादो आदि से खीचकर अपनी ओर आकृष्ट कर दे, वह सफल प्रभाव के लिए घातक है। सगीत के प्रयोग की पहली शर्त यह है कि वह कम-से-कम और वास्तव में सार्थक और आवश्यक स्थलो पर प्रयुक्त किया जाय। और वह इतने सहज और शान्तिपूर्ण तरीके से श्रोता पर असर करे कि उसे उसके पृथक अस्तित्व का ज्ञान न हो। सगीत-प्रभाव की सफलता उसके सवादक्रम से पूर्ण-रूप से एकाग, एकात्मक होने में है।

पार्श्विक सगीत एक और सूरत में भी बहुत ज्यादा सुनाई देता है। कभी-कभी सगीत का स्वर-भार इतना अधिक होता है कि वह सवादो को दबा लेता है। इस दोष का दायित्व केवल निर्देशक या उसके बाद ध्वनि-सयोजक पर है, नाटक-लेखक पर नही। जब सगीत सवादो से अलग हटकर आगे आगे चलने लगे तो नाटक के प्रभाव को हानि पहुँचेगी। यह ध्वनि-सयोजक का काम है कि वह समय-समय पर सवादो की आवश्यकताओ के अनुकूल सगीत के स्वर-भार और स्वर-विस्तार को नियन्त्रित करता रहे। सगीत की गति को सवादो की गति के अनुरूप करना भी उसी का कर्तव्य है। सगीत के उचित उतार-चढाव से वह बहुत सुन्दर प्रभाव पैदा कर सकता है। अगरचे सगीत-प्रयोगो की आलोचना ज्यादा होती है प्रशसा कम, फिर भी इसमें कोई सन्देह नहीं कि सगीत रेडियो-नाट्य-शिल्प का एक महत्त्वपूर्ण

उपकरण है जिसकी अपेक्षा नही की जा सकती।

अब हम विस्तार से यह देखने का प्रयास करेंगे कि एक कुशल और मौलिक प्रतिभा वाला निर्देशक अपने माध्यम को समृद्ध बनाने के लिए संगीत का किस प्रकार सदुपयोग करता है। मुश्किल यह है कि कितना भी विवरण दिया जाय संगीत की सन्तोषजनक व्याख्या नही हो सकती। केवल वही पाठक व्याख्या से पूरा-पूरा लाभ उठा सकता है जो प्रस्तुत उदाहरणो से परिचित है। जब तक हिन्दी में रेडियो-नाटको के सकलन नही आते, रेडियो नाट्य का शास्त्रीय विवेचन अधूरा ही रहेगा। जहाँ भी सम्भव हुआ है मैंने उदाहरणो से सम्न्वित विवरण देने की कोशिश की है।

संगीत का सबसे सहज और साधारण प्रयोग (Opening-closing) आरम्भ और अन्त, और (Intermission) अन्तराल के रूप में होता है। आमुख संगीत कई उद्देश्य पूर्ण करता है। वह नाटक की भावकथा का प्रतीक होता है, यानी उसमें नाटक का स्वभाव प्रतिविम्बित होता है। अगर वह वास्तव में आकर्षक है तो श्रोता के औत्सुक्य को जगाता है, और उसे आगे चलकर होने वाली स्थितियो तथा घटनाओ के लिए प्रस्तुत करता है। अगर आमुख (Opening) नाटक की भावकथा का प्रतीक है तो अन्तिम (Plosing) उसकी समीक्षा है। आमुख प्राय श्रोता को उत्तेजित करता है, उसके ध्यान को वातावरण के अन्य आकर्षणों से हटाकर नाट्य-स्थिति पर केन्द्रित करता है। अन्तिक, उत्तेजना को शान्त करता है। अन्तिक मे पूर्णता का अनुभव होना चाहिए, एक शान्तिमय अन्त का। उसे एक ऐसा वातावरण प्रस्तुत करना चाहिए जिसमें श्रोता शान्तिपूर्वक और गम्भीरतापूर्वक नाटक से अपना निष्कर्ष निकाल सके।

अन्तराल सगीत का उद्देश्य है एक दृश्य के अन्त की सूचना देना और दूसरे के आरम्भ की। यह एक पुल है, पहले दृश्य की समाप्ति और दूसरे के आरम्भ के बीच। अन्तराल सगीत देश या काल-परिवर्तन की सूचना दे कर उसके विभिन्न खडो को क्रमबद्ध भी करता है। इसलिए इसका प्रमुख उद्देश्य हुआ नाट्य-कथा के प्रवाह को बनाए रखना। जहाँ भी सगीत इस प्रवाह के लिए बाधा बनता है वहाँ उसका प्रयोग निषिद्ध है। यही कारण है कि बहुत से निर्देशक पार्श्विक सगीत का उपयोग तो करते हैं लेकिन अन्तराल सगीत का नही। दृश्य-परिवर्तन वह 'फेड आऊट फेड इन' से व्यक्त करते हैं। यह कहना आवश्यक नहीं कि अन्तराल सगीत नाटक के ऐतिहासिक वातावरण या स्थिति के अनुकूल होना चाहिए। इसकी अवधि केवल कुछ सैकिंड ही होती है ताकि कहानी का क्रम टूटने न पाए। प्राय एक ही टुकडे को बार-बार प्रयुक्त किया जाता है। लेकिन अगर हर दृश्य-परिवर्तनके लिए अलग-अलग

टुकडे प्रयुक्त किये जायँ तो सगीत एक निष्प्राण पुल मात्र न रहकर एक सजीव सप्राण व्याख्याता बन जाता है, और यूनानी दुखान्त नाटक के स्वरसमूह (कोरस) की तरह स्थिति के विकास की या वातावरण के परिवर्तनो की सूचना देता है। उपेन्द्रनाथ अश्क रचित रेडियो-रूपातर 'निर्मला' (मूल, मुशी प्रेमचन्द) का निर्देशन करते समय मुझे एक प्रयोग करने का अवसर मिला। प्रयोग सफल रहा और उसे अन्य कई निर्देशको ने अपनाया। 'निर्मला' एक उपन्यास पर आधारित है, इसलिए उसमें एक लम्बे अवधि क्षेत्र में फैले हुए घटाना-क्रम को उपस्थित किया गया है। स्पष्ट है कि रूपान्तरकार ने विस्तृत कथानक का सक्षेप करते हुए केवल महत्त्वपूर्ण स्थलो पर ही ध्यान केन्द्रित किया है। एक दृश्य और दूसरे दृश्य के बीच एक खाई का अनुभव होता है। लेकिन यह नाटक के प्रभाव को बिगाड नही सकता, क्योकि रूपातरकार ने समय (Passage of time) को बडी सफलता से व्यक्त किया है। काल-प्रवाह की प्रतिक्रिया पात्रो के व्यवहार में प्रतीयमान होती है। निर्देशक के लिए आवश्यक था कि वह सगीत को एक सवेदना-शील दर्शक के रूप में प्रस्तुत करे। अत अन्तराल सगीत को सवेदन प्रदान किया गया। मैंने पियानो पर क्लाक की Chimes का प्रयोग किया। जब तक स्थिति साधारण है Chimes की गति-लय साधारण थी। फिर ज्यो-ज्यो नाटक में स्वभाव-परिवर्तन होता गया घटो की लय कम होती गई, यहाँ तक कि एक स्थल ऐसा आ गया जब पात्र यो अनुभव करते हैं कि जैसे समय चलता-चलता रुक गया है। घटो की लय भी कम होते-होते क्षीण सी हो गई। इस प्रकार घटो की मद्धिम ध्वनि और लडखडाती-लय उस गतिरोध का प्रतीक थी जो कथा के परिणति खड में विद्यमान है।

रेडियो-नाटक में वर्णन की ध्वन्यात्मक व्याख्या के रूप में भी सगीत का प्रयोग होता है। स, ही वात्स्यायन 'अज्ञेय' के नाटक 'जयदोल' में इसी प्रकार का प्रयोग है। सूत्रधार जयदोल मन्दिर की कहानी सुनाते हुए चूलिकफा और महारानी जयमती आदि ऐतिहासिक विभूतियो पर प्रकाश डालता है। जयदोल आसाम प्रदेश की कहानी है। इस नाटक को प्रस्तुत करते समय मैंने निरूपक के शब्दों की पृष्ठभूमि में अहोम जाति के एक लोकगीत की धुन को स्वर-आकार के रूप में रखा। इससे वातावरण की सृष्टि में विशेष सहायता मिली। मोहनचन्द्र पन्त रचित रूपक 'कामाक्षा' के आरम्भ में कामाक्षा मन्दिर के विषय में बहुत सी बातें बताई गई हैं। ऐतिहासिक और पौराणिक और किवदन्तियाँ। उस कथा में शिव और उसके नृत्य की चर्चा है। निरूपक के शब्दो को बल, और समूचे प्रभाव को रोचकता और रजकता देने के लिए नैपथ्य में इन सब का सगीतात्मक वर्णन किया गया। इस विषय में एक दोष से सावधान रहना बहुत जरूरी है। सगीत के वर्णनात्मक और

व्यजनात्मक सम्भावनाओ से मोहित होकर हमें प्रत्येक शब्द की व्याख्या का प्रयास नही करना चाहिए। नेपथ्य-सगीत का प्रयोग उस स्थिति में उचित है जब शब्द मात्र प्रभाव को पूर्ण रूप से व्यक्त न कर सकें।

अगर नेपथ्य-सगीत की गति नाट्य-क्रिया की गति के अनुरूप नियन्त्रित की जा सके तो नाटक की उत्थानोन्मुख लय की भावात्मक व्याख्या हो सकती है। सवाद-वेग से चरम सीमा या उत्कर्ष की ओर प्रगति कर रहे है, सगीत भी अनुरूप गति से उभरता चला जाना चाहिए। इस सहगामी क्रिया (Parallel action) से नाटक की गति और उत्कर्ष के प्रभाव को बल मिलेगा।

उपयुक्त सगीत उचित वातावरण (Mood) की सृष्टि करते हुए उत्कर्ष के लिए श्रोता के हृदय में उत्सुकता और कुतूहल जगा सकता है। विशेषकर जहाँ विस्मयजनक स्थिति का प्रभाव व्यक्त करना अपेक्षित हो वहाँ सगीत बहुत सफल रहता है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर के विख्यात नाटक 'डाकघर' के अन्तिम दृश्य में जब अमल मरने के करीब है तो वह 'महाराज की सवारी' आते हुए सुनता है। माधव और अन्य पात्र इस सकेत के तथ्य को नही समझ पाते। इस दृश्य के लिए मैंने नेपथ्य में कई तबलों के बजने का प्रयोग किया। ज्यो-ज्यो अमल का अन्तिम समय निकट आता है सगीत की गति तीव्रतर होती जाती है। चरम सीमा तक पहुँचते ही मैंने इस सगीत-सरचना मे एक मीडियम कारनेट और बेस ओबो को भी मिला दिया। इस प्रकार केवल तीन वाद्य-यन्त्रो से उचित वातावरण का प्रभाव पैदा कर लिया गया। चरमोत्कर्ष के प्रभाव को भी पुष्टि मिली।

८८. **'अभिव्यजनात्मक प्रयोग'**—ललित भाव-छटाओ की अभिव्यक्ति सरलतम सगीत द्वारा बड़ी सफलता से होती है। सगीत के उपयुक्त और प्रभावपूर्ण प्रयोग का सबसे अच्छा उदाहरण मैंने एस. एस. एस. ठाकुर की एक प्रोडक्शन में देखा, जो शायद मुझे कभी नही भूलेगा। मेरा नाटक 'तूफान के बाद' हो रहा था। नाटक का विषय है यहूदियो और जर्मनो का जातीय सघर्ष, महायुद्ध की आग में से निकलने के बाद दोनो समूहो की हृदय-शुद्धि, और एक विशाल मानव-भावना का विकास। नाटक का हीरो हेयरमान्न प्रतीक है, घृणा और अविश्वास का, मानव जाति के उस भाग का जो जीवन की अमरता और सृष्टि की अद्भुत विकास-शक्ति पर विश्वास नही रखते, बल्कि विनाश को ही जीवन का महान् सत्य मानते हैं। उसके सस्कार, उसकी परिस्थितियाँ कुछ ऐसी रही है कि वह आत्मा को वास्तविक वस्तु मान ही नही सकता। उसे पता चलता है उसकी सुन्दर और एक समय प्रिय पत्नी, अपने वक्ष में एक जर्मन बालक पाल रही है। वह घृणा से पागल हो उठता है, लेकिन कुछ नही कर सकता, क्योंकि वे इस समय एक जर्मन परिवार की शरण

में है। उसे मालूम है कि हिल्डा मजबूर थी। कन्सेंटेनेशन कैम्प में एक निस्सहाय नारी किस तरह अपने सतीत्व की रक्षा करती, लेकिन हैयरमान्न उसे क्षमा नहीं कर सकता। हिल्डा के पतन को वह यहूदी जाति का पतन समझता है। क्योंकि वह प्रतिशोध नही ले सकता इसलिए अपने आप से घृणा करता है। जीवन से उसका जी भर जाता है। यह था वह चरित्र जिसके कुछ महत्त्वपूर्ण स्वगत-भाषणो को ठाकुर सगीत द्वारा व्यक्त करना चाहता था। एक स्वगत में वह यहूदी जाति के अधिदेव मूसा (Moses) से प्रार्थना करता है कि "हे रब्बी, अब मै तुम्हारे आदेशानुसार अगार-पथ पर चल चुका हूँ। अब तो मुझे अपनी शीतल गोद में बुला लो।" भाषण का भाव एक गहन व्यथा है। सगीत-सयोजको ने कई रचनाएँ रिहर्सलों में सुनाई, लेकिन ठाकुर सन्तुष्ट न हुआ। ब्राडकास्ट को सिर्फ आधा घटा रह गया था। कुछ देर चुप रहने के बाद वह बोला—"मुझे यह बैंड बाजा नही चाहिये। मुझे चाहिये एक शान्त प्रकृति का सगीत, जिसमें ऐसी वेदना की अभिव्यक्ति हो जो आँखो में झलकती है पर मुँह पर नही आती।' 'जब कोई उचित रचना न मिली तो ठाकुर कुछ मायूस हो गया। स्टूडियो में जाते उसे एक बात सूझी—"क्या तुम मुझे वायलिन या चैल्लो पर बजाया हुआ कोई टुकडा नही दे सकते, आशा हाईफिट्ज या क्राईस्लेर का‥ " ध्वनि-सयोजक जल्दी से एक रिकार्ड उठा लाया। मैं प्रभाव का वर्णन नहीं कर सकता। इसका आनन्द केवल वही प्राप्त कर सकता है जिसने या तो नाटक सुना था या जिसने यह वाद्य-रचना सुन रखी है। ठाकुर ने इस सगीत को बहुत दूरी पर रखा और उसमें हल्की-हल्की गूंज भी भर दी, ताकि वह मात्र नेपथ्य-संगीत न लगकर एक वृहत भावना के रूप में श्रोता तक पहुँचे। उस सगीत की सबसे बडी खूबी यह थी कि वह तार में से नहीं बल्कि एक रुँधे गले और जलते हुए हृदय से निकलता हुआ प्रतीत होता है। मुझे ब्राडकास्ट के बाद ठाकुर ने बताया कि उसने इस टुकडे को दो कारणों से पसन्द किया था। एक तो इसलिए कि इसमें (Human quality) है। और दूसरा इसलिए कि इसमें ठीक वही भाव व्यक्त हैं जो उस स्थिति में हैयरामान्न का था, यानी एक ऐसी वेदना का जो प्रतिशोध या क्रान्ति में परिवर्तित न होकर एक क्रन्दन में व्यक्त होती है। और सचमुच नाटक सुनने वालो को लगा कि वह शान्त, संयत और सरल सगीत आत्मा के क्रन्दन का प्रतीक था।

अभिव्यजना-प्रधान नाटक में सगीत का स्थान बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। साधारण नाटको की अपेक्षा इनमें सगीत प्रभावों के कलात्मक और विचित्र प्रयोगों के अधिक अवसर आते हैं। अभिव्यजनात्मक नाटक प्रभावों का वर्णन नहीं करता, बल्कि अनुभव करने वाले के हृदय की प्रतिक्रियाओं को प्राय ज्यो का त्यों व्यक्त

करता है। इसलिए यदि सवाद प्रभाव की सूचना दें तो पार्श्व-संगीत उन प्रतिक्रियाओ की अभिव्यक्ति करेगा। नरेशकुमार मेहता का एक जटिल नाटक है 'नील दिशाएँ'। उसमें एक सवाद-क्रम है, जब कि मन से अस्थिर और प्राय अर्धविक्षिप्त नाय अनुभव करता है कि उसकी विला के हाल कमरे में लटकता हुआ झाडफ़ानूस जोर से हिल उठा है, और बस उसके सिर पर गिरा चाहता है। गतिहीन वस्तु की यह गति परोक्ष सकेत है। उस झुंझलाहट का जो नायक अपने सारे वदन में अनुभव कर रहा है। इस भाव को सगीत द्वारा यूँ व्यक्त किया गया था। जैसे ही नायक इस अवस्था में प्रविष्ट होता है नेपथ्य में माइक से दूर पडे तानपूरे के तार कांपने लगते हैं, और ज्यो ही उसका ध्यान झाडफानूस की ओर जाता है तो पियानो का एक कार्ड वजाया जाता है। जिसे सुनकर ऐसा लगता है कि जैसे झाडफानूस जोर-जोर से हिल रहा है। फिर जैसे-जैसे नायक का स्वर भयभीत होता गया, सगीत की लय और स्वर-भार वढता गया, यहाँ तक कि जैसे ही नायक इस अचानक दौरे के कारण डूवना शुरू करता है, सगीत भी उसी गति परिमाण से क्षीण होता चला जाता है। शष रह जाता है, एक अकेला स्वर (Note) जो नायक के वेहोशी की हालत में धीरे से साँस लेने जैसा लगता था।

अतिकल्पना रूपको और प्रतीक नाटको में सगीत पर और भी अधिक वल दिया जाता है। इस क्षेत्र में अनेक प्रयोग हो चुके हैं। उनमें से एक की चर्चा की जाती है, जिसमें वाद्यपत्रो के अभिव्यजनात्मक गुणो से पूरा-पूरा लाभ उठाया गया था। मैं दिल्ली केन्द्र के लिए त्रिलोकचन्द कौसर का फैन्टेजिया 'हयाते नौ' प्रस्तुत कर रहा था। उस पद्य-प्रतीक नाटक में ये पात्र हैं इन्सान, मसर्रत, मुहव्वत, उम्मीद और जिन्दगी। मैंने हर पात्र का एक Musical counterpart अर्थात् सगीतात्मक प्रतिरूप नियत कर दिया, यानी इन्सान के लिए चैल्नो (गहन निराशा) मसर्रत के लिए सितार, मुहव्वत के लिए गितार, उम्मीद के लिए वाँसुरी, और जिन्दगी (गम्भीर शान्त, ठोस) के लिए विओला प्रयुक्त किया गया। इस तरह पात्रो की प्रकृति सगीत में प्रतिविम्बित होती थी और सगीत का स्वभाव पात्रो के सवादो में, और अभिनेताओ की वाणियो में अभिव्यक्त होता था। इस योजना ने नाटक को रंजकता प्रदान की और सगीत-क्रम को एक विशिष्ट अर्थ।

सगीत के अभिव्यजनात्मक प्रयोग का एक और उदाहरण इनसे भी कहीं अद्‌भुत है। चरित्र विशेष की मानसिक व्यथा या इस प्रकार के किसी और सूक्ष्म भाव को एक Lech motif से Identify किया जा सकता है। नाटक में जहाँ भी यह सगीत-सकेत आवृत्ति करेगा श्रोता का ध्यान अपने आप वाह्य घटनाओ से हटकर सूक्ष्म आतरिक भाव की ओर आकृष्ट होगा। मान लीजिये यह

चरित्र विशेष एक हत्यारा है। गुप्त एव सूक्ष्म उसकी त्रस्त और विक्षिप्त आत्मा की अवस्था को एक सगीत प्रतीक द्वारा व्यक्त करते हुए अनेक हृदय-स्पर्शी नाट्य स्थितियो का निर्माण हो सकता है, अगर श्रोता एक बार इस भावप्रतीक का अर्थ ग्रहण कर ले तो जब भी यह आवृत्ति करेगा वह सकेत की अभ्यातरिक व्याख्या द्वारा आनन्द-लाभ कर सकेगा। इस प्रकार प्रयुक्त सगीत एक अलकार मात्र नहीं रह जाता, बल्कि रेडियो-नाट्यकार के अभिव्यजना-शिल्प के एक सफल और प्रभावशाली उपकरण के रूप में उसकी सहायता करता है।

सगीत के अभिव्यजनात्मक प्रयोग के सुन्दर उदाहरण श्रोता को बच्चो के लिये लिखी गई Fantasies में मिलते है। वस्तुत जहाँ नाटककार की कल्पना जड और गतिहीन वास्तव से बँधी हुई न हो, वहाँ उसका शिल्प भी पूरी मुक्ति से रचना करता है। सगीत ध्वनि-प्रतीको का क्षेत्र भी उसी परिमाण से साधारण ध्वनि-प्रभावों के क्षेत्र से विस्तृत है जिस परिमाण से कि कल्पना का क्षेत्र वस्तु से। ध्वनि प्रभावो और सगीत के कल्पनात्मक प्रयोग का क्षेत्र निस्सीम है और एक कुशल रेडियो-निर्देशक या प्रस्तुतकर्ता के रचना-कौशल, उसकी प्रतिभा की कसौटी पर भी यही प्रयोग होते है, जो पूर्णत कृत्रिम प्रसाधनों द्वारा इतना सच्चा और प्रमाणिक चित्र प्रस्तुत करते है कि कल्पना ससार असली दुनिया से अधिक असल लगने लगता है।

चतुर्थ खण्ड

प्रयोगात्मक रूप

अध्याय पहला

रेडियो-रूपान्तर

मौलिक रचनाओ की कमी को पूरा करने के लिए ऑल इडिया रेडियो के सभी केन्द्रो से बडी सख्या में रेडियो-रूपान्तर प्रसारित किये जाते है। रेडियो-रूपान्तर का एक और भी आशय होता है, उच्चकोटि की साहित्यिक कृतियो को रेडियो-माध्यम की सहायता से लोकप्रिय बनाना। रेडियो-रूपान्तर किसी भी आशय को लेकर किया जाय उसका निर्माण मौलिक रचना के निर्माण से कदाचित् कम कठिन नही होता। बल्कि कई विशेष स्थितियो में तो वह मौलिक नाटक के निर्माण से भी अधिक कठिन होता है। रेडियो-रूपान्तर एक साहित्यिक-कृति का ऐसा रूप-परिवर्तन है कि जिस से वह अपने निजी सौन्दर्य, वैशिष्ट्य के समूचे प्रभाव को अक्षुण्ण रखते हुए रेडियो के द्वारा प्रसारित हो सके। स्पष्ट है कि यह कोई आसान काम नही। एक माध्यम में रची गई कृति को दूसरे माध्यम द्वारा प्रस्तुत करना और वह भी ऐसे माध्यम द्वारा जो अपनी मूलभूत परिसीमाओ के कारण रचनाकार की कला पर अनेक प्रतिबन्ध लगाता हो, कठिन है और फिर जहाँ रचनाकार से यह आशा हो कि वह एक बडी रचना को संक्षिप्त तो कर दे, या एक छोटी-सी रचना को विकसित तो कर दे, लेकिन न उसमें से कुछ जाने दे और न कुछ अपनी ओर से लगाये। एक रेडियो-रूपान्तर का उद्देश्य रचना के मूल भाव, उसकी आत्मा को पूर्ण रूप से व्यक्त करना है। इसलिए प्रभाव से अधिक महत्त्वपूर्ण है मूल-साम्य का प्रश्न। इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखना आवश्यक है कि आकार-परिवर्तन से मूल के भाव, उसके वस्तु-अर्थ में कोई अन्तर न आने पाए। अगर एक नाटक, कहानी, उपन्यास या कविता को रूपान्तरित करते समय लेखक को यह अनुभव होता है कि मूल रचना के सौन्दर्य में कमी आ रही है, या उसका अर्थ पूर्णता से व्यक्त नही हो पा रहा, तो उसे समझ लेना चाहिए कि या तो उसका शिल्प अपूर्ण है, या फिर वह रचना ही श्रव्य के

माध्यम द्वारा प्रस्तुत होने योग्य नही है। सभी रचनाएँ रूपान्तरित नही हो सकतीं, जैसे कि कुछ विषय या स्थितियाँ ऐसी होती है जो ड्रामाई नही जा सकती।

८९ रेडियो-रूपान्तर और रेडियो-नाट्य रूपान्तर का विभेद—साधारण रूपान्तर और नाट्य-रूपान्तर में अन्तर है। रेडियो-रूपान्तर में हम यह धारणा लेकर चलते हैं कि मूल-रचना नाटकीय रूप में है। उसका केवल इस दृष्टि से रूपान्तर करना है कि वह श्रव्य माध्यम के उपयुक्त और अनुकूल हो जाय। जहाँ कही दृश्य सकेत दिये हुए हो वहाँ उन्हें उचित रूप से श्रव्य-सकेतो में परिणत कर दिया जाय, ताकि श्रोता रेडियो-प्रसार द्वारा प्राय वही प्रभाव ग्रहण कर सकें जो मूल-रचना को पढकर होता था। जब हम रेडियो-नाट्य-रूपान्तर का शब्द प्रयोग में लाते हैं तो हमारा मतलब यह होता है कि मूल रचना नाटकीय नही है। रेडियो-नाट्य-रूपान्तर द्वारा उसका नाटकीयकरण किया गया हैं, जैसे हम एक कहानी या उपन्यास का रेडियो-नाट्य-रूपान्तर प्रस्तुत करें।

वैसे तो हर प्रकार के रेडियो-रूपान्तर की अपनी निजी विशेषता होती है, नाटक का और कहानी या उपन्यास का रूपान्तर अलग अलग समस्याएँ उठाता है, लेकिन इन सबका रचना-शिल्प कुछ सामान्य सिद्धान्तो पर आधारित है। इसलिए बेहतर होगा कि हम उनकी अलग-अलग चर्चा करने से पहले उन सामान्य तत्त्वो की चर्चा करें।

९०. कुछ सामान्य तत्त्वों की चर्चा—एक साधारण रेडियो-रूपान्तर की निर्माण-प्रक्रिया के तीन विकास चरण होते है। पहला, जब रूपान्तरकार कथानक, नाट्य-क्रिया, चरित्र परिपार्श्व आदि में से उन अशो का सकलन करता है जो उसकी दृष्टि से रचना के मूलभूत अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए आवश्यक हैं। दूसरा, जब रूपान्तरकार यथासभव इस सकलित अशो को एक नये घटनाक्रम (Sequence of events) का रूप देते हुए रचना के आवश्यक और मूल तत्वो को सवाद-सकेतो द्वारा व्यक्त करने का प्रयास करता है। तीसरे चरण में वह उन अशो और तत्त्वों को जो सवाद के रूप में अपनी मौलिकता और सुन्दरता खोए बिना व्यक्त नहीं हो सकते एक निरूपक से कहलवाने की व्यवस्था करता है, जिसे रेडियो की भाषा में 'नैरेटर' (सूत्रधार, वाचक) कहा जाता है। नैरेटर या सूत्रधार का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण और वास्तविक उद्देश्य श्रोता को नाटक की क्रिया के उन अशो से परिचित कराना होता है जो रचना के लिए मूल हे पर अभिनीत नही हुए। सूत्रधार का एक और उद्देश्य दीर्घ घटनाक्रम का सक्षेप, या विशेष स्थितियो में अभिनीत घटना-क्रमों के लिए उचित वातावरण पैदा करना भी होता है। दूसरे शब्दों में एक साधारण रेडियो-रूपान्तर एक चित्रण-प्रक्रिया है। सबसे पहले रचना का परीक्षण, और उसके अग-

भूत मूल और महत्त्वपूर्ण अशो का पार्थक्य; इसके बाद इस चुनी हुई सामग्री को एक नई रचना-व्यवस्था में ढालना, और अन्त में सकलित सामग्री को नई रचना-व्यवस्था द्वारा इस तरह प्रयुक्त करना कि श्रोता उससे प्राय वही आनन्द या लाभ ग्रहण कर सके जो वह मूल रचना से करता।

अमरीकी श्रव्यकार 'लाटन' ने इस रचना-प्रक्रिया को एक बहुत सुन्दर नाम दिया है—Telescoping-रेडियो-रूपान्तर में भी एक प्रकार की टैलीस्कोपिंग करना पडती है। सबसे पहले हम टैलीस्कोप यानी दूरबीन को दृश्य-वस्तु के अनुसार adjust करते है ताकि दृश्य-वस्तु पूरी तरह दूरबीन के अवलोकन-क्षेत्र में आ जाए। उसी प्रकार रूपान्तर-निर्माण से पहले हम उसकी निश्चित अवधि को ध्यान में रखते हुए विशिष्ट घटनाओ को ही अपने अवलोकन-क्षेत्र में स्थान देते है। गौण या अनावश्यक घटनाओ को नजर अन्दाज करते हुए केवल सारभूत पर अपना ध्यान केन्द्रित करते है। एक और बात, दूरबीन जिस वस्तु पर केन्द्रित होती है वह उसे ऐसे बडा कर दिखाती है कि वह अपने आसपास की चीजो से पृथक मालूम हो। उसी तरह रेडियो-रूपान्तर भी हमारा ध्यान मूलरचना के महत्त्वपूर्ण और सारभूत अगो पर ही केन्द्रित करता है।

इस प्रक्रिया में दो क्रियाएँ है। पहली सक्षेप और दूसरी दृश्य-क्रम-निर्माण (Scenarization)।

सक्षेप का उद्देश्य है विविध घटनाओ के क्रम में से उन घटनाओ का पार्थक्य करना जिनके विकास द्वारा मूल रचना का सृजन हुआ था। नाटक के कथानक के विषय में एक बात कही जाती है। अगर नाटककार अपने नाटक की कथा को एक साधारण और सक्षिप्त वक्तव्य (Statement) के रूप में पेश नही कर सकता तो नाटक निस्संदेह उलझा हुआ है। ऐसा कथानक अक्सर एक अस्पष्ट और विश्रृंखल नाटक को जन्म देगा। इस कसौटी का रहस्य क्या है? प्रत्येक नाटक का मूल, उसका आधार, एक सीधी-सादी कहानी होती है। यही बीज विकसित होकर नाटक बनता है। रेडियो-रूपान्तरकार को अपना रचना-कार्य शुरू करने से पहले इसी आधार को खोजना है। जब यह आधार मिल जाए तो रूपान्तरकार को यह देखकर आश्चर्य होगा कि बहुत सी घटनाएँ जो ऊपर से आकर्षक और महत्त्वपूर्ण लगती थी वास्तव में गौण हैं, विवरण या अलकार मात्र। और बहुत से चरित्र जो मूल-रचना में आवश्यक प्रतीत होते थे, वास्तव में इतने आवश्यक नही है। उनके बिना भी कथा के अर्थ, उसकी वस्तु को प्रकट किया जा सकता है।

एक सफल रूपान्तर में मूल रचना की सृजन-प्रक्रिया की आवृत्ति होती है। क्योकि वह ठीक उसी आधार से शुरू होता है जिससे कि मूल-रचना हुई थी। स्पष्ट

है कि इस प्रकार रेडियो-रूपान्तर उतनी ही सृजनात्मक चेष्टा है जितनी कि मौलिक रचना।

मूल आधार के मिल जाने पर दृश्य-क्रम-निर्माण शुरू होता है। इसका उद्देश्य यह है कि कथानक की क्रिया नाटकीय दृश्यो द्वारा प्रस्तुत की जाए। और सबसे जरूरी बात यह है कि इस दृश्य-क्रम में कहानी वही मंजिलें तै करे जो मूल कथानक में करती थी। रेडियो-रूपान्तर की लय अपेक्षया द्रुततर होगी, क्योंकि इसमें कम समय में अधिक वृत्तो को प्रस्तुत किया जा रहा है, लेकिन इस तत्व की मात्राएँ उतनी ही होंगी। दूसरे शब्दो में Scenarization का हेतु मूल रचना की क्रिया का Miniature रूप प्रस्तुत करना है।

इस दृश्य-क्रम के नाटकीकरण में शायद बहुत से नये वाक्य, कुछ नये दृश्य, बहुत सभव है, कुछ नये पात्रो का निर्माण करना पडे। यह सवाल निश्चय ही उठेगा कि अगर सक्षेप रेडियो-रूपान्तर का मूलभूत सिद्धान्त माना गया है तो फिर इन नयी रचनाओ का क्या औचित्य है? इसका उत्तर यह है कि इन नये दृश्यो का निर्माण इसलिए किया जाता है ताकि हम मूल-रचना की मथर गति से चलने वाली क्रिया को द्रुतगति से प्रगति करने वाले दृश्यो द्वारा व्यक्त कर सकें। यह दृश्य नये होते हैं पर पूर्णरूप से सक्षेपात्मक। इसी उद्देश्य के लिए रूपान्तरकार को अपने पुनर्निर्मित दृश्यक्रम की घटनाओ को आगे-पीछे करना पडेगा। इन परिवर्तनो से नाटक की मूल-क्रिया में कोई अन्तर नही आता, घटना-विधान मे अवश्य अन्तर आ जाता है।

रूपान्तरकार किस सीमा तक मूल रचना में परिवर्तन कर सकता है, यह एक विचारणीय प्रश्न है, क्योंकि सामान्य रूप से अगर वह वर्णित घटनाओ और वृत्तों का सवादमय प्रस्तुतीकरण करता है तो यह भी एक तरह से मूल-रचना से हटने जैसा है, और अगर वह अपने रूपान्तर के लिए नये पात्र गढ़ता है, जैसा कि कहानी या उपन्यास के रेडियो-रूपान्तर में अक्सर होता है, तो यह निश्चय ही महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हैं। अपना विचार है कि रूपान्तरकार को मूल-रचना में उस सीमा तक परिवर्तन करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिये जहाँ तक कि वह मूल-रचना के आधारो की परिधि में ही रहता है। अगर वह मूल-रचना के घेरे से बाहर जाकर अपने सृजनात्मक चमत्कार दिखाता है तो वह मौलिक रचना के प्रति न्याय नही कर रहा। मूल के प्रति एक तरह की आस्था और उसके सत्य के प्रति वस्तुनिष्ठा का होना रेडियो-रूपान्तर के लिये अनिवार्य है। जहाँ मूल कृति के विवरण की हूबहू नकल करना अपेक्षित नही है, वहाँ उसके प्रति निरादर भी निन्दनीय है। रेडियो-रूपान्तरकार का दायित्व उतना भारी है जितना कि एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करने वाले का। रेडियो-रूपान्तर मुक्त अनुवाद की तरह है। उसमें रूपगत नवीनता तो लाई जा सकती है, और लाई जानी चाहिये,

लेकिन वस्तुगत नवीनता का उसमें कोई स्थान नही। रेडियो-रूपान्तरकार अपने रचना-कौशल के चमत्कार दिखला सकता है लेकिन मूल-रचना की परिधि में रहकर। एक सफल रूपान्तर से हम यह आशा रखते हैं कि वह मूल विचार की प्रभावशाली और सच्ची अभिव्यक्ति करे। वह अपनी शैली में उसी शैली को प्रतिविम्बित करे जिसमें कि मूल-रचना का निर्माण हुआ है। अगर रचना विशेष का एक निजी वातावरण है तो रूपान्तर भी उसी वातावरण के प्रभाव की सृष्टि करे। रूपान्तरकार चाहे तो मूल-रचना ही से अधिकतर वस्तु ग्रहण कर सकता है जैसा कि डा० रशीदजहा अख्तर के विख्यातिप्राप्त रूपान्तर 'कफन' में हुआ है—मूल-रचना मुशी प्रेमचन्द की है। या जैसे सवाद-प्रधान उपन्यासो का रूपान्तर करते समय अधिकतर सवाद मूल-रचना से ज्यो के त्यो उठा लिये जाते है, लेकिन अगर वह चाहे तो मूल में यथोचित परिवर्तन भी कर सकता है। एक बात का उसे जरूर ध्यान रखना होगा कि मूल-रचना से हटकर जो भी वह रूपान्तर के लिये लिखे उसी भाव में रजित होना चाहिये जो मूल भावना का स्रोत है। दोनो की शैलियो में पूरा रूप-साम्य और भावानुकूलता होनी चाहिये, नही तो 'साहसी' रूपान्तरकार की रचना को देखकर यो प्रतीत होगा कि जैसे किसी ने मखमल में टाट का पैवन्द लगा दिया, या मोटे खद्दर में साटन की कतरन चिपका दी।

६१ रगनाटक का रेडियो-रूपान्तर—इन सैद्धान्तिक बातो की चर्चा करने के बाद अब हम रेडियो-रूपान्तर के विभिन्न प्रकारो पर विचार कर सकते है। सबसे पहले हम रगनाटक के रूपान्तर की चर्चा करेंगे, क्योकि उसमें रूपान्तरकार की रचना-सामग्री नाटकीय रूप में ही उपलब्ध होती है। इसलिए अधिकतर सक्षेप द्वारा ही रूपान्तरित रचना का निर्माण होता है। ऊपर से यह काम बहुत सरल लगता है। मूल-रचना में दृश्य है, चरित्र है, और सवाद है, अगर नही है तो ध्वनि-सकेत नही हैं। वे हम जल्दी से लिख ही डालेंगे। बस हो गया रेडियो-रूपान्तर तैयार, पर असल बात यह है कि साधारणत रगनाटक का रूपान्तर कहानी के रूपान्तर से कठिन होता है। कारण यह कि वहाँ कहानी के रूपान्तर में लेखक के रचना-कौशल को पूर्ण स्वतन्त्रता है, नाटक के रूपान्तर में मूल-रचना के विधान से अनुशासित रहना पडता है। इसके अतिरिक्त सवादो का सौन्दर्य उनका ओज और आकर्षक प्रभाव अक्सर लेखक को गलत रास्ते पर डाल देता है।

रगनाटक का रूपान्तर करने में सबसे पहला सवाल मूल को सक्षिप्त करने का है, ताकि वह निश्चित अवधि में समाप्त हो सके। ऑल इडिया रेडियो से आम तौर पर तीस मिनट से लेकर डेढ घटे तक के नाटक प्रसारित होते है। थियेटर में साधारण नाटक की अवधि दो से अढाई बल्कि तीन घटे होती है इसलिये पहले यह प्रश्न उठता

है कि रगनाटक में कौन-कौन से स्थल ऐसे है जिन्हे काटा जा सकता है। ग्राम तौर पर रगमच के नाटक ऐसे होते है जिनमें (Stage movement) काफी समय लेती है। यह समय ग्रासानी से बच सकता है, अगर हम उस गतिविधि या मंचीय कार्यकलाप का सार कुछ सक्षिप्त सकेतो द्वारा व्यक्त कर दें। वैसे भी रेडियो-नाटक रगनाटक की अपेक्षा अधिक वेगवान होने के कारण उसमें विवरणात्मक सामग्री की कोई ग्रावश्यकता नही होती।

नाटक को सक्षिप्त करने के लिये कोई फारमूला नही है। प्रत्येक नाटक नई नई समस्याएँ पेश करेगा। ग्रौर प्रत्येक रूपान्तरकार अपनी अभिरुचि ग्रौर शिल्प के अनुसार काम करता है। वैसे एक बात सिद्धान्त-रूप से कही जा सकती है। नाटक की काट-छांट शुरू करने से पहले जरूरी है कि रूपान्तरकार उसे अच्छी तरह समझ चुका हो, प्रधान ग्रौर अप्रधान, मुख्य ग्रौर गौण का निश्चय कर चुका हो। कई नाटक सवेग ग्रारम्भ होकर विस्तृत विश्लेषण में फैल जाते हैं। इसलिये ऐसी अवस्था में नाटक के मध्यस्थल को ही सक्षिप्त किया जायेगा। अक्सर रगनाटक लम्बी चौडी प्रस्तावना से शुरू होते हैं, जिसमें पहले स्थिति पर प्रकाश डाला जाता है, फिर चरित्रो के विषय में पर्याप्त सूचना-सामग्री एकत्र की जाती है, फिर कही जाकर वास्तविक स्थिति ग्रौर मुख्य सघर्षों पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है। रगमच के लिये शायद यह ग्रावश्यक है, लेकिन रेडियो-नाटक में ये रेंगती हुई-सी प्रस्तावनाएँ श्रोता के ग्राकर्षण का अन्त कर देती हैं। इसलिये रेडियो-रूपान्तरकार इस विस्तृत प्रस्तावना को दो-एक सवादो, या अगर यह सम्भव न हो, तो एक छोटे-से निरूपण में सक्षिप्त कर देता है।

कभी रगनाटको मे पहला दृश्य Mimic अर्थात मूक अभिनय के साथ शुरू होता है, जिसका अभिप्राय उचित वातावरण पैदा करना ग्रौर केन्द्रीय घटनाग्रो के प्रस्फुटन अथवा विकास के लिये जमीन तैयार करना होता है। स्पष्ट है कि इस भाग का महत्त्व है ग्रौर इसे काट देने मात्र से काम नही चलेगा। एक कुशल रूपान्तरकार इस मूक किन्तु महत्त्वपूर्ण प्रभाव को दो एक चतुर सवाद-सकेतो या ध्वनि-प्रभावों से व्यक्त करने का प्रयास करेगा, यानी वह श्रोता की कल्पना के लिये कुछ ग्राधारमात्र श्रव्य-सकेत दे देगा, ताकि वह स्वय वातावरण ग्रौर परिपार्श्व का निर्माण कर सके।

मूक अभिनय जहाँ भी ग्राएगा रूपान्तरकार उसे शब्दयुक्त सकेतो में परिणत करेगा, ताकि कहीं भी शून्य स्थलो का अनुभव न हो। दृश्य-तत्त्व के अभाव को वह सदा ध्वनि-व्यजना से पूरा करेगा।

मूक अभिनय से सम्बन्धित एक ग्रौर प्रश्न भी है—नि:शब्द परिपार्श्व का। रगनाटक में विशेषकर वस्तुप्रधान ग्रौर वस्तुवादी नाटक में परिपार्श्व यानी सेटिंग

का बडा महत्व है। इसी से हमें पात्रो के Habitat और Locale के विषय में पता चलता है। कभी मूक और नि शब्द वस्तुएँ चरित्रो पर अपना विशेष और गहरा प्रभाव रखती है। चरित्रो के व्यवहार, उनके उठने बैठने के ढग, यहाँ तक कि उनकी मानसिक प्रतिक्रियाओ पर, उनके वातावरण की छाप होती है। रगमच पर सेटिंग प्रभाव की पुष्टि करती है और नाटक मे प्रदर्शित असाधारणता की व्याख्या। रेडियो-रूपान्तरकार रगनाटक के इस महत्त्वपूर्ण अग की उपेक्षा नही कर सकता। सेटिंग का ज्ञान दो तरह से कराया जाता है। सवाद-सकेतो से या फिर निरूपक या व्याख्याता के शब्दो से। अगर परिपार्श्व की कुछ वस्तुएँ ऐसी है जो ध्वनि-सकेतो से व्यक्त की जा सकती है तो उन्हे रूपान्तरकार ध्वनि-प्रभाव बना डालेगा। जैसे मेरे एकाकी 'अचैतन्यम' मे कारखाने की चिमनी का विशेष महत्त्व है, और उससे भी अधिक महत्त्व है उस सलेटी धुएँ का जो पीले आकाश पर जम-सा गया है। उस एकाकी के रेडियोरूपान्तर के आरम्भ में हम कारखाने का क्रूर शब्द रखेंगे। फिर घटी बजते ही कारखाना सहसा बन्द हो जायेगा। कुछ क्षण का मौन, नीरवता और घुटन के वातावरण को व्यक्त करेगा। और अन्त मे हम सुनेंगे लडकी लडके से कह रही है . 'यह धुआँ जैसे पीले आकाश पर जम ही गया है'। यह छोटी-सी प्रस्तावना वह सब कुछ बता देगी जो कि मूल रगनाटक के विस्तृत मच-निर्देश में दिया है।

अब कुछ और समस्याएँ लीजिये। अक्सर रंगनाट्य के पहले दृश्य में बहुत से पात्र एकत्र होते है जिनका अभिप्राय नाटक की वास्तविकता पर प्रकाश डालना या महत्त्वपूर्ण पात्रो की समस्याओ की ओर सकेत करने मात्र से अधिक नही होता। रेडियो-रूपान्तरकार सारी सूचना-सामग्री स्वयं मुख्य पात्रो के वाक्यो द्वारा ही श्रोता तक पहुँचा सकता है। इस प्रकार यह मुख्य पात्र ही छद्म-निरूपक (Disguised narrator) का काम करता है। इस शिल्पक-युक्ति की सफलता इस बात पर निर्भर है कि स्थिति विषयक प्रारम्भिक सूचना प्रस्तुत करने से सवादो में अस्वाभाविकता न आ जाये।

गौण पात्रो के पहले दृश्य मे एकत्र हो जाने के अतिरिक्त एक और समस्या है। रंगनाटक में नये चरित्र बहुत आहिस्ता आहिस्ता सामने आते है। किसी भी पुराने ढग के रगनाटक को देखिये। 'स्थिति' की असली उठान तो उस स्थान से होती है जहाँ एक दृश्य में प्रस्तुत चरित्रो की क्रिया-प्रतिक्रिया शुरू होती है। लेकिन एक महत्त्वपूर्ण चरित्र और दूसरे के प्रवेश में बहुत समय अनावश्यक विवरणो में व्यय हो रहा है। रेडियो-नाटक में ऐसा नही होता। बिना समय नष्ट किए चरित्रो का परस्पर सघात आरम्भ हो जाता है। यही विशेषता रेडियो-रूपान्तर में भी होनी चाहिये, अर्थात् महत्त्वपूर्ण चरित्रो के प्रवेश-क्रम मे द्रुतता लाना आवश्यक है।

रेडियो-रूपान्तर की कुछ और समस्याओ पर विचार करने से पहले यहाँ पात्रो के प्रवेश-प्रस्थान सम्बन्धी एक जरूरी बात का जिक्र कर दें। रगनाटक में पात्रो के आने-जाने का पता देखने से लगता रहता है, इसलिये यह आवश्यक नहीं होता कि हर आने वाला पात्र अपने आने की सूचना दे, और हर जाने वाला अपने प्रस्थान की। रेडियो-नाटक मे यह आवश्यक है, विशेषकर ऐसी हालत में जब प्रवेश करते या प्रस्थान करते हुए पात्र को कोई वाक्य न बोलना हो। रगनाटक में प्राय. अभिनेता को अन्तिम वाक्य कहकर प्रस्थान करना होता है, लेकिन रेडियो-नाटक में उसे अपने अन्तिम वाक्य कहते कहते प्रस्थान करना होगा, क्योकि ध्वनि-भार के अन्तर से ही हम पात्रो की गति को व्यक्त कर सकते है। रेडियो-रूपान्तरकार को ऐसे प्रवेश-प्रस्थानो का विशेषरूप से ध्यान रखना होगा, जिनका प्रभाव दृष्टि के बिना ग्रहण नहीं हो सकता है। अगर वह ये सकेत ज्यो के त्यो रूपान्तर में रहने देगा तो प्रसार के समय उसकी रचना के दोष स्पष्ट हो जायेगे।

एक और बात, कई दृश्यो में अक्सर कुछ पात्र ऐसे होते है जो प्राय चुप रहते है। रगमच पर उनका अस्तित्व जरूरी होता है क्योकि जहाँ वह नही बोलते वहाँ वह मुख-मुद्राओ द्वारा नाट्य-क्रिया में अपना योग देते रहते है। ऐसे शून्यस्थल रेडियोकृति के प्रभाव को हानि पहुँचाते है। रेडियो-नाट्य में तो चरित्र के अस्तित्व का आधार उसकी ध्वनि, उसके सवाद है। इसलिये रेडियो-रूपान्तरकार के लिये यह जरूरी है कि वह इन शून्य स्थलो को भरे अर्थात् पात्रो की गतिविधि का गुफन सवादों के आधार पर करे। चुप रहने वाले पात्रो की मुख-मुद्राओ की चर्चा दूसरे पात्रो से कराते हुए वह सब पात्रो को सप्राण बनाये रखेगा। यही कारण है कि रग-मच की अपेक्षा रेडियो-नाट्य में पात्रो का नाम बहुत बार लिया जाता है। हमें लगता होगा यह व्यर्थ है, लेकिन अगर एक रेडियो दृश्य को बिना नामो के सुना जाए तो हमें फौरन अनुभव होगा कि नामो के बिना प्रत्येक चरित्र पर अधिकार बनाये रखने के लिये हमें अपनी बुद्धि पर बहुत जोर देना पडता है, विशेषकर ऐसी स्थितियो में जब कि एक पात्र एक से अधिक पात्रों से बातचीत करने में व्यस्त है। रगमच पर तो वह अपना मुँह मोडकर या केवल आँख के इशारे से यह परिवर्तन स्पष्ट कर देता है, पात्रो के नाम लेने की आवश्यकता नही पडती। अगर रेडियो-रूपान्तरकार ऐसे स्थलो को ज्यो का त्यो उठाकर अपनी रचना में रख दे तो प्रसार के समय वह स्वय सुनकर हैरान होगा कि सवादो का प्रभाव कितना अस्पष्ट है।

अक्सर रगनाटको में गौण पात्र मुख्य पात्रो के साथ मच पर रहते हैं। रगमच के लिये नाटक लिखने वाला अभिनय क्षेत्र (Acting space) पर अधिक ध्यान देता है। वैसे भी दर्शक इन दो पात्र-समूहो की क्रियाओ के समकालीन अस्तित्व

simultaneous existence) का प्रभाव सरलता से ग्रहण कर सकता है। मच के अग्रभाग पर मुख्य पात्र अपना कार्यकलाप कर रहे है और पृष्ठ भाग पर गौण पात्र अपने कौतुक दिखा रहे है। आँख के लिये इन दोनो घटनाओ को एक चित्र में देखना सरल है, कान के लिये नही। रेडियो-रूपान्तरकार को अपने दृश्य का इस प्रकार निर्माण करना होगा कि दोनो क्रियाओ के परस्पर सम्बन्ध मे श्रोता को दोनो का ज्ञान होता रहे यद्यपि ध्यान का केन्द्र मुख्य पात्र समूह ही होगा। उदाहरण के लिये एक नाटक में एक छोटी-सी बुफे पार्टी का दृश्य उपस्थित है। मच के अग्रभाग में नायक और प्रतिनायक को उसकी पत्नी के वारे में कुछ वता रहा है। उधर नायिका अपने पति के कुछ मित्रो से वातचीत कर रही है। शायद उसे भी प्रतिनायक की शरारत का हलका-सा आभास मिल गया है। रगमच पर यह दृश्य वहुत आकर्षक होगा, क्योकि इसका मूल प्रभाव दृश्यात्मक (Visual) है। रेडियोरूपान्तरकार को इस दृश्य की व्यवस्था में कुछ परिवर्तन करना होगा ताकि दृश्य की एकाग्रता नष्ट न हो, और न ही कही पर श्रोता को शून्य का अनुभव हो। पहले पहल श्रोता पत्नी और मित्रो वाले पात्र-समूह से परिचित होगा। फिर हम सुनेंगे कि उनका स्वर धीरे-धीरे विलीन होता जा रहा है। और जैसे ही वह एक हल्की-सी बुद्बुदाहट में वदल जाता है नायक और प्रतिनायक का स्वर उभरता है और श्रोता इस पात्र-समूह की वातो से परिचित होते है। जव प्रतिनायक अपनी वात कह चुकता है तो पहले वाली प्रक्रिया दोहराई जाती है, यानी श्रोता सुनते है कि नायक और प्रतिनायक का स्वर तो मन्द पडता जा रहा है; पत्नी और मित्र-समूहक का स्वर उदय हो रहा है, यहाँ तक कि पत्नी की वातें साफ साफ सुनाई दे रही है। वह प्रतिनायक की शरारत को भाँप गई है। वगैरह, वगैरह ‥। दृश्य की एकात्मकता को वनाए रखने के लिये विलीन होते हुए दृश्य का प्रभाव देर तक अनुभव होता रहेगा, वल्कि अगर सवाद लम्वे है तो एक आध क़हकहा या एक आध ऊँची और स्फुट वात श्रोता को माईक से दूर घट रही घटनाओ का आभास करा देगी और उस पात्र-समूह की वातें सुनने की उत्सुकता भी सजग रहेगी।

सस्कृत नाटको को रूपान्तरित करते समय वहुत वार इस समस्या का सामना करना पडता है, क्योकि वहाँ सश्लिष्ट दृश्य (Composite scene) का प्रयोग तो कदम कदम पर होता है, अर्थात् एक क्रिया में कई उपक्रियाएँ होती है और इन दोनो को एक ही 'Frame' में दिखाया जाता है। वल्कि कई दृश्यो का मजा इसी में है। इधर दुष्यन्त एक झाडी में छिपा शकुन्तला के रूप पर मुग्ध हो रहा है, तो उधर शकुन्तला और प्रियवदा राजा के सौन्दर्य आदि की प्रशसा किये जा रही है। और एक समूह को दूसरे का पता नही। 'प्रियदर्शिका' (वलदेवप्रसाद मिश्र) कुन्दमाला' (सत्येन्द्र शरत)

'मालविकाग्निमित्रम्' (उदयशकर भट्ट) आदि सस्कृत नाटक सफल रूपसे रूपान्तरित हुए हैं।

६२. कहानी का रेडियो-रूपान्तर—कहानी साधारणत. एक अनाटकीय साहित्यकृति है। इसलिये कहानी को केवल रूपान्तरित ही नही करना पडता, वल्कि नाट्य-रूपान्तरित करना पडता है। स्पष्ट है कि यह एक अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत प्रक्रिया है और मूलरचना में वहुत परिवर्तन की सभावना होती है। कभी-कभी रूपान्तरकार को मूल-कहानी से ही पर्याप्त नाट्य-सामग्री प्राप्त हो जाती है, लेकिन अक्सर कहानी से आधार मात्र ही मिलता है। इस पर रूपान्तरित रचना का निर्माण करना पडता है। कहानी के रूपान्तरकार को प्राय चरित्र भी गढ़ने पडते हैं और उनके लिये सवादो की रचना करनी पडती है।

कहानी को कई प्रकार से रूपान्तरित किया जा सकता है। उसी के अनुसार उसमें परिवर्तन किये जायेंगे। कहानी को एक निरूपक सुना सकता है। जहाँ कही नाटकीकरण सभव होगा वहाँ पात्रो के सम्वादो आदि द्वारा कहानी को आगे वढाया जायेगा; या कहानी का प्रधान, या कोई और पात्र निरूपक का काम सम्हाल सकता है। कहानी इसी पात्र के मुख से सुनाई जायेगी, और कहानी के (नाट्यमय) स्थलो को नाट्य-रूपान्तरित कर दिया जायेगा, या फिर कहानी को एक पूरे रेडियो-नाटक के रूप में ढाल लिया जायेगा। पहले दो प्रकार सरल हैं, तीसरा अपेक्षया कठिन।

रूपान्तर किसी भी प्रकार का क्यों न हो रूपान्तरकार को प्राय एक-सी मजिलो से गुजरना होता है। सवसे पहला कदम है कहानी का अध्ययन और अनुशीलन। रूपान्तरकार को कहानी को इतना समझ लेना चाहिये कि वह पुस्तक को अलग रखकर उसके कथानक का पुनर्निर्माण कर सके। कथानक के अतिरिक्त चरित्रों से परिचय भी जरूरी है, क्योंकि अन्त में चरित्रो ही से कहानी का विकास होगा। अगर चरित्रो से पूर्ण परिचय नही होगा तो हम देखें कि रेडियो-रूपान्तर के चरित्र मूल-रचना के चरित्रो से भिन्न होगें, यद्यपि वे प्राय सामान्य घटनाओ से सम्बद्ध हैं और सबसे जरूरी है मूल-रचना की शैली का अनुशीलन ताकि रूपान्तर का वातावरण प्राय वही हो जो मूल का है। कहानी के आधार को ग्रहण करने के बाद रूपान्तर-कार अपनी कल्पना को पुनर्रचना की स्वच्छन्दता दे सकता है। शर्त यह है कि रूपान्तरित रचना में किसी भी ऐसे विचार या भाव की छाया न मिले जो मूल के अनुकूल न हो। अर्थात् रूपान्तरकार को मूल-रचना के आधार में परिवर्तन करने का कोई अधिकार नहीं।

सव कहानियाँ रूपान्तरित होने के लिये उचित नहीं होती। कई कहानियाँ ऐसी होती हैं जिन्हें श्रव्य की भाषा में अनूदित नही किया जा सकता। कुछ कहानियाँ इतनी लम्वी और उलझी हुई होती हैं कि उन्हे एक नाटक की परिधि में सीमित

नही किया जा सकता । कुछ कहानियाँ इतनी छोटी होती है कि उनके आधार पर एक नाट्य-कृति का निर्माण असम्भव होता है । अगर उनमें घटनायें बढाई जायें तो मूल-रचना के विकृति होने का भय रहता है । आम तौर पर पहले कदम पर, यानी कहानी का अध्ययन करने के बाद ही, हमें इन दोषो और कठिनाइयो का ज्ञान हो जायेगा । रूपान्तर का रेखाचित्र या आलेख बनाते समय हमें कहानी के रूपान्तर-युक्त होने या न होने का पता चल जाना चाहिये ।

साधारणतः तीन प्रकार की कठिनाइयो का सामना रूपान्तरकार को करना पडता है, जिनका सम्बन्ध कहानी के कथानक से है । इनमें से कोई कठिनाई ऐसी नही जिसे दूर न किया जा सके ।

कुछ कहानियाँ ऐसी होती है जिनका कथानक आत्मनिष्ठ चरित्रो की प्रक्रियाओ से निर्मित होता है । इनमें चरित्रो के कृत्यो और क्रियाओ से अधिक महत्त्वपूर्ण, उनके विचार और अनुभूतियाँ होती है । जब तक उन पर प्रकाश न डाला जाये, क्रिया का अर्थ पूर्णरूप से व्यक्त नही हो पाता । ऐसी अवस्था में या तो हम एक निरूपक द्वारा चरित्रो के आन्तरिक सघर्षों का वर्णन कर सकते है, या सहायक गौण पात्रो के निर्माण द्वारा जो मुख्य पात्रो को अपने व्यक्तित्व का रहस्योद्घाटन करने में सहायक हो । अगर बात इतनी गोपनीय है कि उसे किसी पर प्रकट नहीं किया जा सकता, तो स्वगत-भाषण का उपयोग किया जायेगा । दो उदाहरणो पर विचार कीजिये । विष्णुप्रभाकर की कहानी 'सोना की बात' को रूपान्तरित करते समय मैं एक स्थान पर रुक गया । सोना का बालक स्कूल नही आया । मास्टर जी उसके न आने के कारण से भी कदाचित परिचित है, लेकिन वह क्यो नही आया, यह सोच-सोचकर वह झुझला उठते है । इस झुझलाहट से अजीत के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है । अतः उसका नाटकीय-चित्रण जरूरी था । दो साधन थे इसे व्यक्त करने के—स्वगत-भाषण, या कुछ सहायक पात्रो का निर्माण । दृश्य स्कूल में था, इसलिये कुछ बालक छात्रो का निर्माण बहुत लाभकारी हो सकता था । सो मैंने एक छोटे-से दृश्य में मास्टर जी को पढाते दिखाया । उनका मन अस्थिर और उद्वेलित है, इसलिये वह बालको के साधारण प्रश्नो पर बिगड-बिगड उठते है । सोना के बालक की बात रह रहकर उनके होठो तक आती है पर वह उसे मुखर नही होने देते, आखिर वह मुंह से निकल ही पडती है । विष्णु की मूल कहानी में यह सकेत उपस्थित था

"अगले दिन अजीत जब स्कूल गया तो किशन नहीं आया था । उन्होने सोचा—क्यो नही आया वह ? फिर उनके भीतर कुछ उमड-घुमड आया, पर छाती चीरकर देख न सके । काम करते रहे । बीच-बीच में ध्यान आजाता पर साहस न होता, कहा किसी से—जाकर देखना, भैय्या किशन कहाँ रहा ?

'मालविकाग्निमित्रम्' (उदयशकर भट्ट) आदि सस्कृत नाटक सफल रूपसे रूपान्तरित हुए हैं।

९२ **कहानी का रेडियो-रूपान्तर**—कहानी साधारणत. एक अनाटकीय साहित्यकृति है। इसलिये कहानी को केवल रूपान्तरित ही नही करना पडता, बल्कि नाट्य-रूपान्तरित करना पडता है। स्पष्ट है कि यह एक अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत प्रक्रिया है और मूलरचना में बहुत परिवर्तन की सभावना होती है। कभी-कभी रूपान्तरकार को मूल-कहानी से ही पर्याप्त नाट्य-सामग्री प्राप्त हो जाती है, लेकिन अक्सर कहानी से आधार मात्र ही मिलता है। इस पर रूपान्तरित रचना का निर्माण करना पडता है। कहानी के रूपान्तरकार को प्राय चरित्र भी गढने पडते है और उनके लिये सवादो की रचना करनी पडती है।

कहानी को कई प्रकार से रूपान्तरित किया जा सकता है। उसी के अनुसार उसमें परिवर्तन किये जायेंगे। कहानी को एक निरूपक सुना सकता है। जहाँ कहीं नाटकीकरण सभव होगा वहां पात्रों के सम्वादो आदि द्वारा कहानी को आगे बढाया जायेगा; या कहानी का प्रधान, या कोई और पात्र निरूपक का काम सम्हाल सकता है। कहानी इसी पात्र के मुख से सुनाई जायेगी, और कहानी के (नाट्यमय) स्थलो को नाट्य-रूपान्तरित कर दिया जायेगा, या फिर कहानी को एक पूरे रेडियो-नाटक के रूप में ढाल लिया जायेगा। पहले दो प्रकार सरल है, तीसरा अपेक्षया कठिन।

रूपान्तर किसी भी प्रकार का क्यो न हो रूपान्तरकार को प्राय एक-सी मजिलो से गुजरना होता है। सबसे पहला कदम है कहानी का अध्ययन और अनुशीलन। रूपान्तरकार को कहानी को इतना समझ लेना चाहिये कि वह पुस्तक को अलग रखकर उसके कथानक का पुनर्निर्माण कर सके। कथानक के अतिरिक्त चरित्रो से परिचय भी जरूरी है, क्योकि अन्त में चरित्रो ही से कहानी का विकास होगा। अगर चरित्रो से पूर्ण परिचय नही होगा तो हम देखें कि रेडियो-रूपान्तर के चरित्र मूल-रचना के चरित्रो से भिन्न होगें, यद्यपि वे प्राय सामान्य घटनाओ से सम्बद्ध हैं और सबसे जरूरी है मूल-रचना की शैली का अनुशीलन ताकि रूपान्तर का वातावरण प्राय वही हो जो मूल का है। कहानी के आधार को ग्रहण करने के बाद रूपान्तर-कार अपनी कल्पना को पुनर्रचना की स्वच्छन्दता दे सकता है। शर्त यह है कि रूपान्तरित रचना में किसी भी ऐसे विचार या भाव की छाया न मिले जो मूल के अनुकूल न हो। अर्थात् रूपान्तरकार को मूल-रचना के आधार में परिवर्तन करने का कोई अधिकार नही।

सब कहानियाँ रूपान्तरित होने के लिये उचित नहीं होती। कई कहानियाँ ऐसी होती है जिन्हें श्रव्य की भाषा में अनूदित नही किया जा सकता। कुछ कहानियाँ इतनी लम्बी और उलझी हुई होती है कि उन्हें एक नाटक की परिधि में सीमित

नही किया जा सकता। कुछ कहानियाँ इतनी छोटी होती है कि उनके आधार पर एक नाट्य-कृति का निर्माण असम्भव होता है। अगर उनमें घटनायें बढाई जायें तो मूल-रचना के विकृति होने का भय रहता है। आम तौर पर पहले क़दम पर, यानी कहानी का अध्ययन करने के वाद ही, हमें इन दोषो और कठिनाइयो का ज्ञान हो जायेगा। रूपान्तर का रेखाचित्र या आलेख वनाते समय हमें कहानी के रूपान्तर-युक्त होने या न होने का पता चल जाना चाहिये।

साधारणतः तीन प्रकार की कठिनाइयो का सामना रूपान्तरकार को करना पडता है, जिनका सम्वन्ध कहानी के कथानक से है। इनमें से कोई कठिनाई ऐसी नही जिसे दूर न किया जा सके।

कुछ कहानियाँ ऐसी होती है जिनका कथानक आत्मनिष्ठ चरित्रो की प्रक्रियाओं से निर्मित होता है। इनमें चरित्रों के कृत्यो और क्रियाओ से अधिक महत्त्वपूर्ण, उनके विचार और अनुभूतियाँ होती है। जव तक उन पर प्रकाश न डाला जाये, क्रिया का अर्थ पूर्णरूप से व्यक्त नही हो पाता। ऐसी अवस्था में या तो हम एक निरूपक द्वारा चरित्रो के आन्तरिक सघर्षो का वर्णन कर सकते है, या सहायक गौण पात्रो के निर्माण द्वारा जो मुख्य पात्रो को अपने व्यक्तित्व का रहस्योद्घाटन करने में सहायक हों। अगर वात इतनी गोपनीय है कि उसे किसी पर प्रकट नहीं किया जा सकता, तो स्वगत-भाषण का उपयोग किया जायेगा। दो उदाहरणो पर विचार कीजिये। विष्णुप्रभाकर की कहानी 'सोना की वात' को रूपान्तरित करते समय मैं एक स्थान पर रुक गया। सोना का वालक स्कूल नही आया। मास्टर जी उसके न आने के कारण से भी कदाचित परिचित है, लेकिन वह क्यो नही आया, यह सोच-सोचकर वह झुंझला उठते है। इस झुझलाहट से अजीत के चरित्र पर प्रकाश पड़ता है। अत उसका नाटकीय-चित्रण जरूरी था। दो साधन थे इसे व्यक्त करने के—स्वगत-भाषण, या कुछ सहायक पात्रो का निर्माण। दृश्य स्कूल में था, इसलिये कुछ वालक छात्रो का निर्माण वहुत लाभकारी हो सकता था। सो मैंने एक छोटे-से दृश्य में मास्टर जी को पढाते दिखाया। उनका मन अस्थिर और उद्वेलित है, इसलिये वह वालको के साधारण प्रश्नो पर विगड-विगड उठते है। सोना के वालक की वात रह रहकर उनके होठो तक आती है पर वह उसे मुखर नहीं होने देते, आखिर वह मुंह से निकल ही पडती है। विष्णु की मूल कहानी में यह सकेत उपस्थित था:

"अगले दिन अजीत जव स्कूल गया तो किसन नहीं आया था। उन्होंने सोचा—क्यो नही आया वह ? फिर उनके भीतर कुछ उमड-घुमड आया, पर छाती चीरकर देख न सके। काम करते रहे। वीच-वीच में ध्यान आजाता पर साहस न होता, कहा किसी से—जाकर देखना, भैय्या किसन कहाँ रहा ?

'मालविकाग्निमित्रम्'(उदयशकर भट्ट) आदि सस्कृत नाटक सफल रूपसे रूपान्तरित हुए हैं।

६२ **कहानी का रेडियो-रूपान्तर**—कहानी साधारणत' एक अनाटकीय साहित्यकृति है। इसलिये कहानी को केवल रूपान्तरित ही नही करना पडता, वल्कि नाट्य-रूपान्तरित करना पडता है। स्पष्ट है कि यह एक अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत प्रक्रिया है और मूलरचना में वहुत परिवर्तन की सभावना होती है। कभी-कभी रूपान्तरकार को मूल-कहानी से ही पर्याप्त नाट्य-सामग्री प्राप्त हो जाती है, लेकिन अक्सर कहानी से आधार मात्र ही मिलता है। इस पर रूपान्तरित रचना का निर्माण करना पडता है। कहानी के रूपान्तरकार को प्राय चरित्र भी गढने पडते हैं और उनके लिये सवादो की रचना करनी पडती है।

कहानी को कई प्रकार से रूपान्तरित किया जा सकता है। उसी के अनुसार उसमें परिवर्तन किये जायेंगे। कहानी को एक निरूपक सुना सकता है। जहाँ कही नाटकीकरण सभव होगा वहाँ पात्रो के सम्वादो आदि द्वारा कहानी को आगे वढाया जायेगा; या कहानी का प्रधान, या कोई और पात्र निरूपक का काम सम्हाल सकता है। कहानी इसी पात्र के मुख से सुनाई जायेगी, और कहानी के (नाट्यमय) स्थलो को नाट्य-रूपान्तरित कर दिया जायेगा, या फिर कहानी को एक पूरे रेडियो-नाटक के रूप में ढाल लिया जायेगा। पहले दो प्रकार सरल हैं, तीसरा अपेक्षया कठिन।

रूपान्तर किसी भी प्रकार का क्यों न हो रूपान्तरकार को प्राय एक-सी मज़िलों से गुज़रना होता है। सवसे पहला कदम है कहानी का अध्ययन और अनुशीलन। रूपान्तरकार को कहानी को इतना समझ लेना चाहिये कि वह पुस्तक को अलग रखकर उसके कथानक का पुर्ननिर्माण कर सके। कथानक के अतिरिक्त चरित्रों से परिचय भी जरूरी है, क्योकि अन्त में चरित्रो ही से कहानी का विकास होगा। अगर चरित्रो से पूर्ण परिचय नहीं होगा तो हम देखें कि रेडियो-रूपान्तर के चरित्र मूल-रचना के चरित्रों से भिन्न होंगे, यद्यपि वे प्राय सामान्य घटनाओ से सम्बद्ध हैं और सवसे जरूरी है मूल-रचना की शैली का अनुशीलन ताकि रूपान्तर का वातावरण प्राय वही हो जो मूल का है। कहानी के आधार को ग्रहण करने के वाद रूपान्तर-कार अपनी कल्पना को पुनर्रचना की स्वच्छन्दता दे सकता है। शर्त यह है कि रूपान्तरित रचना में किसी भी ऐसे विचार या भाव की छाया न मिले जो मूल के अनुकूल न हो। अर्थात् रूपान्तरकार को मूल-रचना के आधार में परिवर्तन करने का कोई अधिकार नही।

सव कहानियाँ रूपान्तरित होने के लिये उचित नहीं होतीं। कई कहानियाँ ऐसी होती हैं जिन्हें श्रव्य की भाषा में अनूदित नही किया जा सकता। कुछ कहानियाँ इतनी लम्वी और उलझी हुई होती हैं कि उन्हे एक नाटक की परिधि में सीमित

अजीत—अच्छा तो कल से उसे मत बुलाना। आना होगा तो स्वयं आयगा क्यो ?

केशव—हाँ मास्टर जी !

अजीत—हाँ, तो भई जब भेडियो का वह झुण्ड उनके घोडो पर टूट पडा तो····..

(स्कूल की घंटी बजती है)

अरे घण्टी बज गई ! अच्छा इस कहानी को कल पूरा करेंगे।

(लड़को का बाहर जाना, शोर इत्यादि)

अजीत—अरे नरेन्द्र, तू क्या कर रहा है ? खेलने नही जायगा बाहर ?

नरेन्द्र—जा रहा हूँ मास्टर जी !

अजीत—और काशी, तू क्या कर रहा है उस कोने में ?

काशी—सबक याद कर रहा हूँ मास्टर जी !

अजीत—(बिगडकर) आज तुझे सबक याद आया है। जा अब, जा खेल। भाग, मुझे काम करने दे।

(सब जाते है। सन्नाटा। फिर मास्टर जी अपने आप से बोलते है)

किशन आज क्यो नही आया ? शायद कल की बात उसे बहुत बुरी लगी। लेकिन मुझे क्या, नही भेजते तो न सही। इम्तहान सर पर है, फेल हो जायगा मुझे क्या ? हाँ, मुझे क्या ?

(अखबार लेकर पढने लगता है)

ओहो, आजकल के अखबारो में क्या ऊटपटाग खबरें छपती है (अवकाश) ऐसा क्यो ? भगवान ! यह जडता कैसी, जिसने मेरे तन और मस्तिष्क को जकड रखा है। और यह शिथिलता। इसे तो दूर करना ही होगा, नही तो जीवन का मार्ग अवरुद्ध हो जाएगा।

दूसरा उदाहरण है स्वगत भाषण के उपयोग का। विष्णु की ही कहानी थी, 'इराकमल' जिसका विषय एक अत्यन्त जटिल चरित्र का विश्लेषण है। कमल के हृदय में गोपनीय रहस्यो के कारण सघर्ष रहता है। इसका प्रभाव पडता है उसके व्यवहार पर। अनेक भाव है जो उसके भीतर घुटकर रह गये है। उसके विचारो में उच्छृखलता है। इसलिए कि उसकी प्रवृत्तियो और आदर्शो में प्रतिकूलता है, विरोध है। अन्तर्मुखी होने के कारण वह इन बातो को किसी पर प्रकट नहीं करता। इसलिए चरित्र प्रत्यक्षीकरण के लिए लेखक के सूक्ष्म सकेतो को विकसित कर अनेक स्वगत भाषणो का निर्माण करना पडा। इस स्थिति में नये पात्रो की रचना कदाचित् सफल नही रहती।

अपनी इस निर्बलता को जानकर उन्हे क्रोध भी हो आया, और शायद तभी लडको ने जाना भी कि मास्टर साहब हँसते हँसते खीझ उठते है ।"

मेरे रूपान्तर का दृश्य यूँ था ।

(क्लासरूम में हल्का शोर उठता है)

अजीत—सबक पढने से पहले हम तुम्हे उसकी कहानी सुनाते हैं ।

नरेन्द्र—मास्टर जी !

अजीत—(बिगडकर) खामोश नही बैठ सकते । मास्टर जी, मास्टर जी क्या लगा रखा है ? हाँ तो सुनो, आज के सबक की कहानी । एक समय की बात है कि एक बहुत बडा जमीदार अपनी बग्घी में बैठकर एक भयावने वन में सफर कर रहा था ।

नरेन्द्र—वन में मास्टर जी ?—

अजीत—वन में नही तो और कहाँ ?—

नरेन्द्र—बग्घी में मास्टर जी ?

अजीत—(ऊबकर) उफ़, आज तुम सबको हो क्या गया है ? और हाँ, किशन कहाँ है ?—

नरेन्द्र—किशन आज नही आया मास्टर जी ।

अजीत—नहीं आया ! क्यो किशन आज क्यों नही आया ? चलो नहीं आया तो न सही हमें क्या क्यो भाई ?

काशी—हाँ, मास्टर जी ।

अजीत—हाँ तो वह जगल में से गुज़र रहा था तो उसे भेडियो के एक झुड ने आ घेरा ।

नरेन्द्र—भेडिया क्या होता है मास्टर जी ?—

अजीत—अरे गधे, तुम भेडिये को नही जानते ।

नरेन्द्र—नही मास्टर जी !—

अजीत—भगवान् जाने तुम्हारी बुद्धि को क्या हो गया है ? भेडिया कुत्ते के बराबर एक पशु होता है, लेकिन बहुत भयकर, वह खेतो में से भेड बकरियों को उठाकर ले जाता है, और अगर दाव चल जाए तो मनुष्य के बालक को भी । केशव !—

केशव—जी मास्टर जी ।

अजीत—किशन आज तुम्हारे साथ नहीं आया ?

केशव—मैने बुलाया तो था मास्टर जी, पर वह आया नहीं ।

अजीत—नही आया । क्यो ? तेरे बुलाने पर भी नही आया !

केशव—नही मास्टर जी ।

है, संवाद-सामग्री का बाहुल्य होता है। इसलिए रूपान्तरकार चाहता है कि उन सवादो को ज्यो-का-त्यो उठाकर अपनी रचना में रख दे। लकिन इस तरह अच्छा परिणाम प्राप्त नही हो सकता, क्योकि प्रकाशित कहानी के सवादो में परिपार्श्व-संकेत नही होते। इनके अभाव में नाटक में यथार्थता नही आ पाती। मुंशी प्रेमचन्द की कहानी 'मनोवृत्ति' में सारी क्रिया सवादो द्वारा व्यक्त होती है। फिर भी अगर एक कुशल रेडियो नाट्यकार उसका रूपातर करे तो वह सवादो को नये सिरे से लिखेगा। सवादो के विषय में एक और बात भी ध्यान देने योग्य है। आपने देखा होगा कि अक्सर कहानी-लेखक के सवाद एक-से होते है, चरित्र कैसा ही हो, सवादो की शैली में कोई विशेष अन्तर नही होता।

अगर रेडियो रूपान्तर में यही सवाद रख दिये जायें तो चरित्रो की विशेषता और उनके व्यक्तित्व पर बुरा प्रभाव पडेगा। चरित्रो में एक प्रकार की उथलापन (Flatness) आ जायेगा। इसके अतिरिक्त कहानी-लेखक के सवादो का अर्थ उस व्यवस्था के विना अधूरा रह जाता है जो वह स्थान-स्थान पर प्रस्तुत करता रहता है। यह ज़रूरी है कि रूपान्तरकार अपनी रचना म इस व्याख्या के सार को अपने सवादो में आत्मसात करे।

कुछ कहानियाँ ऐसी होगी कि जिनका घटनाक्रम नाटकीय है। लेकिन अक्सर कहानियाँ एसी होती हैं जिनके घटनाक्रम में परिवर्तन करना अनिवार्य होता है। ऐसी अवस्था में कहानी के अध्ययन से ही यह निश्चित हो जाना चाहिए कि कौनसी घटना पहले आयेगी और कौनसी बाद में। इस प्रकार के परिवर्तन का उद्देश्य नाटक में विकास और गति लाना होता है। रेडियो-रूपान्तर को ऐसे स्थित-बिन्दु से शुरू होना चाहिए जहाँ नाटक में अन्तर्निहित सघर्ष का स्पष्ट परिचय मिलता है। एक निश्चित विस्फोट-बिन्दु से शुरू करने से श्रोता के आकर्षण पर अधिकार करना सरल हो जाता है। प्रारम्भिक दृश्य-क्रम को द्रुतगति से उठना चाहिए; और नाटक-कार का अनेक छोटे-छोटे पर मार्मिक और महत्त्वपूर्ण औत्सुक्योदीपक सकेतो से श्रोता के कौतूहल, उसकी दिलचस्पी को मुख्य सघर्ष या प्रधान स्थिति पर केन्द्रित करना होगा। इस प्रभावास्पद आरम्भ के बाद विस्फोटात्मक स्थिति की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डाला जा सकता है।

यह तो हुई उन कहानियो की बात जिनका आरम्भ नाटकीय दृष्टि से पर्याप्त रूप से प्रभावशाली नही होता। उन कहानियो को कैसे प्रस्तुत किया जाये जो अचानक (Abruptly) शुरू हो जाती है। रेडियो-रूपान्तर का प्रारम्भ प्रभावशाली किन्तु स्वाभाविक होना चाहिए। इसलिए अक्सर यह आवश्यक होगा कि आगे चल कर आने वाली घटनाएँ पहले आयें और पहले आने वाली घटनाएँ बाद में। चन्द्र-

इस प्रकार के चरित्रो को प्रस्तुत करने के लिए मोन्ताज Montage का उपयोग करता वहुत लाभकारी होता है। इस साधन द्वारा हम कम से कम समय में चरित्र के अधिक से अधिक पहलुओ पर प्रकाश डालते हुए चरित्र का विकास कर सकते हैं।

दूसरी कठिनाई है उलझा हुआ कथानक। एक ग्रथिपूर्ण या उलझा हुआ कथानक एक से अधिक सघर्षो से निर्मित होता है। अगर हम प्रधान सघर्ष से सम्बन्धित घटनाओं को ही क्रमित करें और गौण घटनाओ की चर्चामात्र ही करें तो हम उपकथानक की उलझनों से वच सकते हे। कथानक के सहायक अग इसलिए विकसित किये जाते हे ताकि चरित्र में परिमाण-सौन्दर्य आ जाये, और कहानी का विकास केवल घटना-वैचित्र्य पर या सयोग-चमत्कार पर अवलम्बित न दिखाई दे। रूपान्तरकार अपनी घटना-सयोजना में ऐसे परिवर्तन कर सकता है जिनसे कि वह उपकथानक का सार सक्षिप्त सवाद-क्रमों में व्यक्त कर सके।

तीसरी कठिनाई सब से जटिल समस्याएँ उपस्थित करती है। कभी-कभी कहानी का कथानक इतना सूक्ष्म होता है कि उसके आधार पर रूपातर का निर्माण नही हो सकता। एक लम्बी कहानी को सक्षिप्त करना इतना कठिन नहीं जितना कि एक क्षीण-प्राण कहानी का परिवर्द्धन। क्योकि अक्सर, लेखक सुन्दर सवादों के चक्कर में फँसकर गतिहीन दृश्यो का निर्माण कर वैठता है, जिसके कारण नाटक की गति तो मन्द पड ही जाती है, रूपान्तर का समूचा प्रभाव भी बिगड जाता है। तो फिर इस स्थिति में क्या किया जाए ? अगर हमने कहाना का अनुशीलन करते समय कहानी को भली भाँति समझा है तो हमें चरित्रों के विषय में इतना ज्ञान अवश्य हो जाता है कि हम उनके स्वभाव और प्रकृति के अनुकूल घटनाओ की रचना कर सकें। चरित्रो की प्रकृति का विश्लेपण करते हुए हमें मालूम होगा कि चरित्र की वे क्रियाएँ जो हमें अभी विदित हुई है उनका आधार विगत घटनाओ में होता है, और ये क्रियाएँ स्वय विशेष क्रियाओ की प्रतिक्रियाएँ होती हैं। अक्सर मूल रचना में इन घटनाओ और प्रतिक्रियाओं का सकेत उपस्थित होता है। रेडियो रूपान्तरकार को इन सकेतो का विकास करना है, कार्य के पीछे जो कारण की पार्श्वभूमि है उस पर प्रकाश डालना है। इन्ही सकेतात्मक आधारो पर वह नये दृश्यो या सवाद-क्रमो का निर्माण करेगा। हाँ, एक बात का ध्यान रखना जरूरी है कि ये सकेत मूल-कथा के लिए महत्त्वपूर्ण (Vital) होने चाहिएँ, और उनके विकास से कथानक की प्रगति, चरित्रो के विकास आदि को प्रत्यक्ष करने में सहायता मिलनी चाहिए।

वहुत सी कहानियो में, विशेपकर उनमें जिनमें नाटकीय तत्त्व की प्रधानता

है, सवाद-सामग्री का बाहुल्य होता है। इसलिए रूपान्तरकार चाहता है कि उन सवादो को ज्यो-का-त्यो उठाकर अपनी रचना में रख दे। लकिन इस तरह अच्छा परिणाम प्राप्त नही हो सकता, क्योकि प्रकाशित कहानी के सवादो में परिपार्श्व-सकेत नही होते। इनके अभाव में नाटक में यथार्थता नही आ पाती। मुशी प्रेमचन्द की कहानी 'मनोवृत्ति' में सारी क्रिया सवादो द्वारा व्यक्त होती है। फिर भी अगर एक कुशल रेडियो नाट्यकार उसका रूपातर करे तो वह सवादो को नये सिरे से लिखेगा। सवादो के विषय में एक और बात भी ध्यान देने योग्य है। आपने देखा होगा कि अक्सर कहानी-लेखक के सवाद एक-से होते हैं, चरित्र कैसा ही हो, सवादो की शैली में कोई विशेष अन्तर नही होता।

अगर रेडियो रूपान्तर में यही सवाद रख दिये जायें तो चरित्रो की विशेषता और उनके व्यक्तित्व पर बुरा प्रभाव पडेगा। चरित्रो में एक प्रकार की उथलापन (Flatness) आ जायेगा। इसके अतिरिक्त कहानी-लेखक के सवादो का अर्थ उस व्यवस्था के बिना अधूरा रह जाता है जो वह स्थान-स्थान पर प्रस्तुत करता रहता है। यह जरूरी है कि रूपान्तरकार अपनी रचना म इस व्याख्या के सार को अपने सवादो में आत्मसात करे।

कुछ कहानियाँ ऐसी होगी कि जिनका घटनाक्रम नाटकीय है। लेकिन अक्सर कहानियाँ ऐसी होती हैं जिनके घटनाक्रम में परिवर्तन करना अनिवार्य होता है। ऐसी अवस्था में कहानी के अध्ययन मे ही यह निश्चित हो जाना चाहिए कि कौनसी घटना पहले आयेगी और कौनसी बाद में। इस प्रकार के परिवर्तन का उद्देश्य नाटक में विकास और गति लाना होता है। रेडियो-रूपान्तर को ऐसे स्थित-बिन्दु से शुरू होना चाहिए जहाँ नाटक में अन्तर्निहित सघर्ष का स्पष्ट परिचय मिलता है। एक निश्चित विस्फोट-बिन्दु से शुरू करने से श्रोता के आकर्षण पर अधिकार करना सरल हो जाता है। प्रारम्भिक दृश्य-क्रम को द्रुतगति से उठना चाहिए; और नाट्य-कार का अनेक छोटे-छोटे पर मार्मिक और महत्त्वपूर्ण औत्सुक्योदीपक सकेतो से श्रोता के कौतूहल, उसकी दिलचस्पी को मुख्य सघर्ष या प्रधान स्थिति पर केन्द्रित करना होगा। इस प्रभावास्पद आरम्भ के बाद विस्फोटात्मक स्थिति की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डाला जा सकता है।

यह तो हुई उन कहानियो की बात जिनका आरम्भ नाटकीय दृष्टि से पर्याप्त रूप से प्रभावशाली नही होता। उन कहानियो को कैसे प्रस्तुत किया जाये जो अचानक (Abruptly) शुरू हो जाती है। रेडियो-रूपान्तर का प्रारम्भ प्रभावशाली किन्तु स्वाभाविक होना चाहिए। इसलिए अक्सर यह आवश्यक होगा कि आगे चल कर आने वाली घटनाएँ पहले आयें और पहले आने वाली घटनाएँ बाद में। चन्द्र-

किरण छाया की कहानी 'आदमखोर' को रूपान्तरित करते हुए घटनाक्रम में इस प्रकार के परिवर्तन को आवश्यक समझा गया। मूल कहानी का पहला खण्ड, रूपान्तर-योजना में छठा दृश्य बना। रूपान्तर का आरम्भ मिला दूसरे खण्ड के अन्त में, जो कहानी के मध्य में आता है। मूल कहानी और रूपान्तर का तुलनात्मक अध्ययन इस पर पर्याप्त प्रकाश डालेगा।

आदमखोर

गुनिया अपने बढ़े हुए पेट से लहँगा उलटकर जूएँ बीन रही थी। जीवन, जली हुई तम्बाकू की चिलम में लम्बे-लम्बे कश खींचकर अपनी तलब बुझाने का व्यर्थ प्रयत्न कर रहा था।

"तो ला दोगे ?" गुनिया ने नाखूनों के बीच चट कर के एक मोटा जूँ मारते हुए कहा, "बड़ा जी कर रहा है। एक ही पैसे की ला दो।"

"तेरी तो अकल मारी गई है।" जीवन ने चिलम धरती पर उलटते हुए नाक चढ़ाकर उत्तर दिया, "भला एक पैसे में अबिया मिलेगी। किसी ने दी भी तो छोटी-सी एक पकड़ा देगा फिर उसके साथ एक पैसे की धनिया-पुदीना हो तब तेरे लिए चटनी बने। इससे दो पैसे की हरी मिर्चें मँगा ले, साँझ-सवेरे की रोटी को काफी होगी। सब मजे से भरपेट खा लेंगे।"

जीवन की रूखी बातें सुनकर गुनिया जल उठी, चिढ़े-से स्वर में बोली, "तुम्हारे तो सदा यही ढंग रहे। कभी अपनी खुशी से एक पैसे का गुड़ भी न खिलाया। इस दशा में औरतें जाने कितना खट्टा-मिट्ठा खाती हैं। मेरे भाग से एक अबिया भी उड़ गई।"

जीवन भी कम गुस्सैल नहीं है, गुस्से के कारण ही तो बाप से लड़कर गौने आई बहू का हाथ पकड़कर बिना किसी आसरे के इस शहर में आ पहुँचा था उन दिनों तो वह किसी की आधी बात भी नहीं सहता था। अब तो पेट की बेकारी की और मेहनत की मार सहते-सहते उसकी तेजी बहुत-कुछ मर गई है। परन्तु यह बात बाहर वालों के लिए ही है। घरवाली के प्रति उसका गुस्सा गरीब की चादर के छेद की तरह धीरे-धीरे बढ़ता ही गया है। गुनिया की जली-कटी वाणी सुनकर वह भी भड़क उठा। चिलम पटक, हाथ के पुराने फोड़े की पीप कुरते के छोर से पोंछते हुए तीखे स्वर में बोला, "ऐसा ही गुड़ खाना है तो चली जा किसी सेठ-साहूकार के साथ। खूब मेवा-मिश्री खिलायेगा। एक हो, दो हो तेरा पेट तो हर साल ही फूला रहता है। कहाँ तक खट्टा-मिट्ठा चटाऊँ। फिर तुझे खिलाऊँ या तेरे कीड़े-मकोड़ों का पेट भरूँ। सवेरे से लेकर रात दस बजे तक बैल की तरह जुता

रहता हूँ इस पर भी तुझे सन्तोष न हो तो ला गले में फांसी लगा लूं।"

"अरे जा बेशरम!" गुनिया घुटने पर हाथ टेककर उठती हुई बोली, "दिन में सात बार फांसी लगाता है पर मरा तो एक बार भी नही, तू सवेरे से रात भर जुता रहता है तो मैं क्या हाथ पर हाथ रखे बैठी रहती हूँ? तेरे धी-पूतो को और तुझे बना कर नहीं खिलाती? तेरे घर का सारा धन्धा नही करती जिस तिस की टहल चाकरी करके जो चार पैसे कमाती हूँ वह भी तेरे पेट में झोक देती हूँ। फिर भी जब देखो तब· "

जीवन में इतनी सहनशीलता कब थी कि उसकी यह लच्छेदार बातें चुपचाप सुनता रहे। पास पडी जूती उठाकर उसने गुनिया के खीच मारी, "ससुरी बक बक किये जा रही है। उठ के रोटी बना, नहीं अभी पूजा कर दूंगा।"

जीवन के क्रोध से गुनिया अपरिचित नही। अनेक बार खास कर उन दिनो जब वह बेकार होता है उसने तनिक तनिक-सी बातो पर गुनिया में नील डाल दिए है, बच्चू और पार्वती को अधमरा कर डाला है। मन-ही-मन भुनभुनाती हुई वह उठकर पडोसिन के यहाँ से उधार आटा लेने चली गई।

ग्यारह साल हुए जीवन को शहर में आये, तब से अब तक वह इसी मेवालाल के कटरे में रहता है। इसी खपरैल की चार हाथ लम्बी और तीन हाथ चौडी कोठरी में वह क्रमशः सात बच्चे का बाप बना और शीघ्र ही आठवें का बनने वाला है जिनमें से रोग, शोक, अन्नाभाव और गर्मी-सर्दी के थपेडे खाते-खाते भी एक लड़की और दो लडके यमराज को अँगूठा दिखाकर सही-सलामत पृथ्वी पर दिखाई दे रहे है।

कभी इस घर को छोडना पडेगा ऐसी सम्भावना भी नही है। शहर में इससे सस्ता कटरा और कोई नही है, तीन ओर लम्बी-लम्बी खपरैलें डालकर और उसमें चार-चार हाथ की दूरी पर दीवारें खिचवाकर सेठ मेवालाल ने इस कटघरे में तीस-पैंतीस परिवारो को शरण दे रखी है। चौथी ओर उनकी अपनी तिमज्लि हवेली खड़ी है जिसकी पीठ कटरे के चौथे सिरे को घेरे हुए है। बीच में काफी जगह छुटी हुई है जिसमें नीम के दो पेड लगे हुए है, गर्मियो में जिनके नीचे हवा खाइए सर्दियो में धूप खाइए और बरसात में झूला झूलिए। मेवालाल ने अपने गरीब किरायेदारो को बडी सहूलियतें दे रखी है। सोने-बैठने का इतना आराम भला कौन दे सकता है। यही नही मैदान के एक किनारे नल भी लगवा दिया है जिसके लिए उनके किरायेदारो को उनका परम अनुगृहीत होना चाहिए था, परन्तु यह कटरेवाले बड नमकहराम है, कहते है कि कुआँ खुदवा दो वह यह नही सोचते कि यदि नल न लगवाते तो उन्हे सड़क के पार सरकारी नल से पानी लाना पडता। गर्मियो में नल पर खासा महाभारत मचा रहता है। कभी-कभी तो सिर फूटने तक की नौबत आ जाती है। लग भग पैंतीस-छत्तीस परिवारो के डेढ पौने दो सौ प्राणियो के मध्य वह नल ऐसा ही है

जैसे ऊँट के मुँह में जीरा। उस पर कोढ में खाज की भांति उन कटरेवालो के कपडे धोने, बर्तन मांजने और मुँह धोने का स्थान भी वही नल का चबूतरा है, क्योकि खप-रैलों से घिरी उस धरती में पक्के फर्श के नाम पर बस नल के समीप चार पत्थर गड़े हैं। वही पत्थर स्वर्ग की एकमात्र वैतरणी उन सबका 'कॉमन बाथरूम' बने हुए है। बडी-बूढियां, मर्द तथा बच्चे वही खुले में नहा लेते हैं, बहुएँ और युवती कन्याएँ दसवें-पन्द्रहवें दिन अपनी-अपनी कोठरियो के आगे चारपाइयां खडी करके उस पर पुराने लहँगो और ओढनियो के परदे लटकाकर नहा लेती थी। मतलब यह कि शहर में जहां एक-एक कमरे का किराया दस-बारह रुपये हो वह भी उस दशा में जब कि एक-एक मकान के कबूतरखाने की भांति ऊपर-नीचे दस-दस किरायेदार रहते हो, कटरे का इन पृथक्-पृथक् कोठरियो का किराया सिर्फ ढाई रुपये मासिक है। हद है सस्तेपन की, यही तक बस नही। सेठ जी ने अपने कटरा राज्य की प्रजज के हित कटरे के पिछ-वाडे चार शौचगृह भी बनवा दिये हैं। जिससे उनके पैंतीस किरायेदारो और उनके बाल-बच्चो को सरकारी टट्टियो में जाने का कष्ट न हो। दस-ग्यारह रुपये मासिक कमाने वाले जीवन को इससे सस्ता घर और कहां मिल सकता है। फिर हारी बीमारी मौत जिन्दगी में कटरे के मजदूरपेशा लोग परस्पर जितनी सहानुभूति और सहायता देते हैं वह जीवन जानता है। सभी कटरेवाले निम्न वर्गो के श्रमजीवी है। कोई रेवडी-मूँगफली की फेरी करता है, कोई मटर का खोचा लगाता है तो कोई प्याऊ वाले सेठ के लिए ड्यूटी के चौदह घटो में मानो पुण्य इकट्ठा करता है। कुछ मिल-नौकर हैं। सभी गरीब हैं और सभी कई-कई बच्चो के बाप हैं। सभी का काम एक दूसरे के सहारे चलता है। हाथ-पैरो की सहायता वे सब परस्पर कर लेते है। रुपये पैसे के मामले में वे बेशक सेठ मेवालाल के आजन्म आभारी है। समय-असमय सेठ उन्हें सिर्फ एक आना रुपया के व्याज पर रुपये उधार दे देता है बिना कागज-पत्र कराए ही। जीवन भी इन्हीं सदाशय सेठ जी की किरायेदारी और कर्जदारी में फूल-फल रहा है। जाति का वह अहीर है। गांव की प्राइमरी भी उसने कभी पास की थी। अब भी कभी-कभी बरसात की रात में कटरेवालो की जिद पर मिट्टी के तेल की कुप्पी के धुँधले प्रकाश में आल्हा गाकर सुना देता है। किसी दिन तरग में हो तब, नही तो काम के दिनों में तो छुट्टी ही नही होती और बेकारी के दिनो में गाजा, चरस, ताडी पीकर पडा रहता है या घरवाली से झगडा करके बिना बात मार-पीट करता है।

सभी कटरेवाले कहते है कि जीवन जब यहां आया था तब गऊ-जैसा सीधा था। इस कटरे की हवा लगने से इसे भी पर लग गये। कौन सा ऐब है जो अब इस से बच रहा हो। जब आया था तब तो गुनिया को हाथो की छाया में रखता था। पहली बार गुनिया जब गर्भवती हुई थी तब उसने अपने गले के चांदी के बटन बेचकर

भा उसे पकौड़ियाँ ला दी थीं और यह बात गुनिया कई दफे अपनी सखी-सहेलियों से कह चुकी है कि धीरे-धीरे न जाने इसे क्या हो गया। अब तो बात करो तो काटने को दौड़ता है। किसना के कुरते का कपड़ा लाने को पैसे दो तो उनसे भी जुआ खेल डालता है। कटरे के बदमाशों ने इसे भी बिगाड़ डाला।

और शहर में आकर जीवन भौंचक्का रह गया था। बड़ी-बड़ी दुकानें चमाचम सामानों से सजी हुई बड़ी-बड़ी सड़कें, बिजली के प्रकाश से जगमगाती हुई, बड़ी-बड़ी मोटर कारें जिनमें बड़े-बड़े आदमी बैठकर चलचित्रों के समान विद्युतगति से इधर-उधर आ जा रहे थे। इस इन्द्रपुरी में जीवन को कहाँ ठौर मिलेगा? सिर पर कपड़ों की गठरी रखे वह सबसे बचता हुआ सिकुड़-सिकुड़ कर चल रहा था। सड़क पर रंग-बिरंगी मिठाइयाँ, फल-तरकारियाँ बिक रही थीं। जीवन सोच रहा था गुनिया ने रात से कुछ नहीं खाया है कुछ ले लूँ पर यह सब न जाने कितने दामों होंगे।

हठात् उसकी आँखें चमक उठीं, घड़ियों की बड़ी दुकान के आगे एक आदमी चरखी से गन्ने का रस निकालकर बेच रहा था। लोग छोटे-छोटे कुल्हड़ों में लेकर पी रहे थे।

उसने अपनी तरुणी पत्नी के भूख से मुरझाये मुख को प्यार से निहारकर पूछा, "रस पियोगी?"

"पी लूंगी," गुनिया ने अपने सूखे गले को थूक से तर करते हुए उत्तर दिया, "पर बड़ा तेज बिक रहा है। कुल्हड़ कैसे छोटे हैं। आठ-सात बिना तो गला भी तर न हो।"

"चल जाने दो पैसे के चार कुल्हड़ लेंगे," जीवन बोला, "कुछ तो आसरा हो जायगा। फिर कहीं घर तलाश कर तुझे वहाँ बैठा के काम की खोज में निकलूंगा।"

और जीवन ने धोती की फेंट से इकन्नी निकालते हुए रस वाले से कहा, "भैया, चार कुल्हड़ रस दीजो।"

"चार कुल्हड़!" रस वाले ने उसे सिर से पैर तक ताककर कहा, "गांठ में पैसे हैं?"

"हैं क्यों नहीं!" जीवन ने ज़रा कड़े स्वर में अपमान-सा अनुभव करते हुए उत्तर दिया और इकन्नी उसके सामने फेंक दी। "जल्दी दो, हमें दूर जाना है।"

एक आने का एक कुल्हड़ आयेगा।

जीवन का मुँह कटा-सा रह गया। जरा-सा कुल्हड़ जिसमें पाव भर पानी मुश्किल से आता होगा, और वह भी चार पैसे का।

चुपचाप इकन्नी उठाकर और गुनिया को अपने पीछे आने का इशारा करके वह आगे बढ़ गया।

"का पहले-पहल सहर देख्यो है भइया?" हँसते हुए रसवाला पूछे ने कह

रहा था।

भूखे-प्यासे जीवन ने सन्ध्या तक सारा शहर छानकर अन्त में मेवालाल के कटरे में शरण पाई थी। उसकी कुल जमा चार रुपयो में ढाई रुपये पेशगी लेकर लाला ने उन्हे अपने राज्य में आश्रय दिया।

दो दिन, चार दिन, छ दिन, जीवन को कही भी काम नही मिला। सुबह मुँह-अँधेरे नौकरी खोजने निकलता और रात में दस-ग्यारह बजे तक शहर के चक्कर काटकर वापिस आ जाता। चौका-बर्तन वह कर नही सकता था, क्योंकि उसके जात्याभिमान को ठेस लगती थी और दूसरी नौकरियो में सब जमानत माँगते। तीन दिन मिल में भी काम कर देखा, पर वहाँ पहले से कितने पुराने उम्मीदवार पडे थे इसी से जाना छोड दिया। पास का डेढ रुपया भी खत्म हो गया। रुपये का पाँच सेर आटा और आने का पाव भर नमक इसी से यह दिन काटे। दो दिन पडोसियो से उधार लेकर काम चला था। फिर चार दिन एक-एक मुट्ठी सत्तू खाकर बिताए। इधर इसकी घरवाली जिसका गौना हुए अभी कुल सात ही महीने हुए थे और जो दो मास बाद माँ बनने वाली थी, उसे अच्छा पहनाना-ओढ़ाना तो दूर पेट भर रूखा रोटी भी नही दे पाता। आखिर ग्यारहवें दिन सिर पर झल्ली रखकर वह मजदूरी करने को निकला। सारे दिन में सवा पाँच आने कमाये उसने। नौसिखिया मजदूर था अत पुराने पल्लेदारो की दौड में पीछे रह गया। फिर वजन देखकर उसके छक्के छूट जाते थे। ढाई मन गेहूँ दो फर्लाङ्ग पहुँचाने पर चार पैसे मिलेंगे। बडी रात गये लौटकर उसने गुनिया के हाथ पर अपने चौदह घण्टे की कमाई साढे आठ आने ला रक्खे। फिर बाजरे की रोटी पानी के सहारे गले से उतारकर वह लेट रहा। थकावट, निराशा और दर्द से देह चूर हो रही थी। वह लेटा उसी कोठरी की कच्ची धरती पर जहाँ अनगिनती चीटे-चीटियाँ उसके स्वागत को आँखें बिछाये थे। भूखे पेट के अधूरे सपनो में वह डूब गया। स्वप्न में भी जीवन शहर की गलियो में इन्द्रपुरी के प्रेत की भाँति जिसे कही भी प्रवेश करने का अधिकार न हो सिर पर सामान उठाये फिर रहा था।

रॉयल होटल चिकने चमकदार श्वेत टाइलो का फर्श, कामदार परदो से ढके दरवाजे और आलू की झल्ली लिये जीवन धीरे-धीरे घुस रहा था।

रायसाहब आनन्दस्वरूप का बँगला, गोल कमरे में कद् आदम आइने, सोफासेट, झाड-फानूस, कालीन जीवन सकुचाता हुआ चावलों की बोरी उठाये भीतर चला गया।

शाम हो चुकी थी। सेठ मदनमोहन की कोठी रंगीन बल्बो के प्रकाश में जगमग करती हुई। हाथ में फलो की टोकरी और सिर पर साटन के बने दो लिहाफ

रक्खे जीवन भीतर घुसा।

उधर बैडरूम में सेठानी ने कहा, जिनकी सुरमई रंग की क्रेप की साड़ी पर चमकता रुपहला चौड़ा बार्डर और सलमे-जड़ा ब्लाऊज़ जीवन की फटेहाली पर विद्रूप हँसी हँस दिये। जीवन बैडरूम में घुसा, फ्रेमदार शाशे जड़े पलँग जिन पर राजहंस-सी श्वेत रेशम की चादरें। सिरहाने की ड्रेसिंग टेबिल पर खुली पड़ी इत्र की शीशी ने कमरा तर कर रक्खा था।

काँपते हाथों से जीवन ने दोनों लिहाफ पलँग पर रख दिये।

× × ×

"अरे राम री! हाय चाची मर गई! अब की न बचूँगी।" गुनिया कराह उठी। "अरी चाची! . . ."

दाई ने तब सिर पर हाथ फेरकर कहा, "बचेगी काहे नहीं बिटिया, ज़रा हिम्मत कर और यह जीवना कहाँ है?"

गुनिया के मुँह से इतने कष्ट में भी गाली निकली, "जाने कहाँ मर गया जाकर। चाची इसने तो मुझे खा लिया। एक रुपया नूरन से उधार लेकर दिया था कि गुड़, तेल, सोंठ ले आ। घर में तो कुछ भी नहीं है हाय राम जी ·मर गई ··।" गुनिया कराह उठी।

"तेल भी नहीं है।" ·दाई चिन्तित हो उठी। अब क्या होगा, आने तो दो इस जीवना को कैसी खबर लेती हूँ। घरवाली के प्राण होठों पर आ रहे हैं· ·आप कहीं बोतल चढ़ाये पड़ा होगा। बड़बड़ाते हुए दाई ने उठकर कहा, "बिटिया घबराना मत, मैं घर से तेल ले आऊँ और· गुनिया को बुला लाऊँ। इस बार मेरे अकेले से नहीं सँभलेगा। देखूँ सुखुआ हो, तो उस नवाब की तलाश में भेजूँ।"

दाई चली गई, इस कटरे में ही रहती है वह। पड़ोस के नाते गुनिया से बहुत सगापन है उसका।

"अरी मैया! हाय भगवान्! ओ चाची! मरी!" यूँ तो गुनिया की कराहट बढ़ रही थी। अपनी भूखी-प्यासी तंगी-तुरशी से उस जर्जर देह पर गुनिया को यह आठवाँ प्रसव था। आज भी दो दिन से निराहार थी। तिस पर भी कल तक ठेके-दार के यहाँ गेहूँ फटकने जाती रही है। सात रुपयों की कर्ज़दार जो है उनकी।

"अरी चाची!" एक बड़ी चीख मार के गुनिया मूर्छित हो गई। पार्वती दन्नू को खिला रही थी। दाई ने उसे कोठरी में घुसने से मना कर दिया था, पर माँ की चीख सुनकर वह भाई को रोता छोड़कर भीतर चली गई।

"अरी अम्माँ!" रक्त से लथपथ मूर्छिता माँ से लिपटकर वह भी रो उठी।

जीवन ताड़ीखाने में पड़ा गा रहा था—'नज़र जब ताका पे तानी जायगी,

किस तरह तबियत सँभाली जायगी' और सुखुआ उसका कंधा पकडे कह रहा था, "साले ताडी पिये पडा है । उधर भौजी के प्राण निकलने को हो रहे है । चल, घर चल ।"

"घर, मेरा घर कहाँ है ?" जीवन इस समय ताडी की तरंग में था । "दुनिया में मेरा घर कहाँ है ? गरीब के भी कभी घर होता है, नही गरीब तो बस अमीरो का बोझा ढोने को गधे होते है । नही गधो मे भी बदतर । गधो को अपनी घरवाली की, बच्चो की, कर्ज देने की चिन्ता नही करनी पडती मगर गरीब को ।"

"सुसरे सायरी छांट रहा है । भौजी मर गई तो घर वीरान हो जायेगा ।"

"मर जाने दो दु खो से छूट जायेगी । नरक से सुरग में पहुँच जायगी ।"

जीवन ने सुखुआ का हाथ झटककर आराम से पांव फैलाकर लेटते हुए कहा, 'अरे बच्चू, फांसी का डर न हो तो मै सब का गला घोंट दूँ । भूख-प्यास से सिसक-सिसक कर मरने से तो एक बार मर जाये तो अच्छा "

सुखुआ ने उसके मुँह पर ठडे पानी के छींटे मारकर कहा, "अच्छा बाबा, मर जाने दे । तू घर तो चल ।"

"नही, एक बार नही । हजार बार नही । तुम कौन होते हो मुझे घ ले जाने वाले ?" और फिर सुखुआ के कान से मुँह लगाकर जीवन बोला, "जानता है घर पर मकानदार का मुनीम मेरा सिर तोड देगा । चार महीने का किराया चढ गया है । इससे तो आओ मेरी जान, बाइसकोप चलें, दिल बहलेगा । आंखो में तरावट आयेगी । यह लो पैसे अरे धत् तेरे की पैसे कहाँ गये ऐं "

"मर साले !" सुखुआ उसे छोडकर बाहर आ गया । शाम को नशा उतरने पर जीवन घर पहुँचा । गुनिया तब आखिरी सांसें खीच रही थी ।

गुनिया मर गई । दो दिन बाद उसका सूखा-सा नवजात शिशु भी चल बसा । कटरेवालो ने चन्दा करके कफन-काठी का इन्तजाम किया था ।

जीवन को सब लानत भेजते थे । इसी के ढगों से गुनिया बे मौत मर गई । और अब बच्चू भी मरने को पडा था । पर्याप्त कपडो के अभाव में उस कृशकाय बालक को ठड लग गई ।

खैराती अस्पताल से पार्वती दवा लाई थी । दाई उपलो की आंच से उसे सेंक रही थी और जीवन सर झुकाए पाटी के पास बैठा था ।

'पानी-पानी' बच्चू कराहना छोडकर चिल्ला उठा ' पानी 'ज्वर से उसके नेत्र लाल अगारे हो रहे थे ।

गुड की बनी चाय का एक चम्मच उसके मुँह में छोडकर दाई ने पुचकार कर कहा, "पीले मेरे भैया अच्छा हो जायेगा ।" फिर जीवन को कठोर दृष्टि से

ताककर बोली, "मुरदे-सा क्या बैठा है ?" जाकर किसी वैद-हकीम को ला। लुगाई को और चार-पांच बच्चो को तो खा लिया । अभी भूख नही मिटी ?"

जीवन इस समय नशे में नही था उसका मन मसल उठा, रुआसे स्वर में बोला, "चाची, गुनिया तो खैर मेरी लापरवाही से मर गई पर किसना और गोमती भी मैंने खा लिये तब तो मै नसा-पानी कुछ नही करता था । उनके लिए तो मेवालाल से कर्जा भी लिया था जो अब तक अमरबेल की तरह बढ रहा है ।"

दाई ने नाक चढाकर उत्तर दिया, "तब तो राम की नजर ही टेढी थी । छः महीने से तू बेकार बैठा था पर पीछे तो काम लग जाने पर भी तेरे ढग बिगड गये ।"

बच्चू की छटपटाहट बढ रही थी । दाई ने उद्विग्न होकर कहा, "जल्दी जा, हाथ-पाँव जोडकर हकीम जी को बुला ला ।" जीवन चला निराश, थका हुआ मन लिये जीवन चला ।

सडक पर आया ही था कि पीछे से मुनीम ने उसे पुकारकर कहा, "ऐ साले, जीवन के बच्चे ! कहाँ छिपा रहता है ? चल लाला बुलाते है ।"

"भैया !" जीवन गिडगिडाया, "उनसे कहना मेरा बच्चा सख्त बीमार है, अच्छा हो जायेगा तो धीरे-धीरे सब पाट दूँगा । अब हकीम के जा रहा हूँ ।"

"बहाने छोडकर सीधी तरह चल ।" मुनीम ने उसका हाथ खीचकर कहा ।

फिर दो घटे बाद लाला ने सैकडो गालियाँ और जेल की धमकी देकर उसे छोडा । हकीम को दिये जाने वाले रुपये किराये के ऐवज में काट लिये । कहाँ तक सब्र करता बेचारा लाला ।

हकीम भी नही आया । पर दवा दे दी और अपने रुपयो का कडा तकाजा भी कर दिया । जीवन दवाई की पुडिया लिये लौटा, उसे दीख गया था कि बच्चू बचेगा नही । और उसका रह-रह कर कराहना, ऐंठना, सिर पटकना, पार्वती का रोना, दाई माँ की कडवी-तीखी बातें और मुनीम को गालियाँ, ठेकेदार की फटकारें, उसका सिर घूम गया । पुडिया नाले में फेंककर वह दूसरी ओर चल दिया ।

दूसरे दिन सुखुआ ने कलवरिया में औंधे पडे जीवन को सैकडो गालियाँ सुना कर कहा, "मुनरे, कसाई ! बच्चा तडप-तडपकर मर गया । तू यहाँ मौज कर रहा है । हरामी के पिल्ले जा । पार्वती और जग्गू को अफीम देकर सुला दे । फिर निश्चिन्त होकर यहाँ डेरा जमाइयो । उन्हे क्यो छाड दिया । तेरे सर्वनासी पेट में तो सभी समा जायेंगे, सभी ।"

और अब पढिए रेडियो-नाटक रूपान्तर का स्क्रिप्ट ।

आदमखोर

रूपान्तरकार : हरिश्चन्द्र खन्ना

(बाजार की चहल-पहल वग़ैरह की आवाजें और मिला-जुला शोरोगुल, जो कुछ देर बाद नैपथ्य में चला जाये।)

जीवन—भई वाह, यह शहर है कि इन्द्रपुरी। क्यो गुनिया ऐसा नजारा कभी देखा है ?

गुनिया—गाँव में ऐसा नजारा कैसे देखते ?

जीवन—अरे गाँव में था ही क्या खाक ! दिन-रात के फाके, और फाँकने के लिए मनो मिट्टी। तू ने रोके रखा, नही तो मै गाँव कब का छोड चला था।

गुनिया—मुझे भय जो लगता था।

जीवन—अरी पगली शहर से क्या भय ? शहर तो स्वर्ग का नजारा है, स्वर्ग का। देखती नही दायें-बायें बडी-बडी दुकानें, लकछक चमाचम सामानो से सजी हुई, और बिजली की रोशनी में जगमगाती हुई बडी-बडी सडकें। फर्राटे भरती मोटरकार।

गुनिया—है तो इन्द्रपुरी, पर इसमें ठौर भी मिलेगा कि नही ?

जीवन—अरी वाह! मिलेगी क्यो नहीं ! तू देखती तो रहना। तुम्हें हथेली पर सरसो जमा के न दिखा दूँ तो जीवन नाम नही। तू ने तो मुझे मानो नैल ही पहना रखे थे नही तो मैं कभी का सहर चला आया होता।

गुनिया—जरा यहीं दम ले ले। अब तो पाँव थक गये मेरे।

जीवन—हाँ हाँ, पल भर रुक जायें यहाँ।

(बाजार का शोर एक बार आकर फिर नैपथ्य में चला जाता है।)

आ यहाँ बैठ जा गुनिया। (अवकाश)

गुनिया—हूँ हू !

जीवन—गुनिया, तू ने रात भर से कुछ नहीं खाया, मुख कैसा मुरझा गया है तेरा ?

गुनिया—हाँ, गला सूखकर लकडी हो रहा है।

जीवन—(रुककर) रस पियेगी ?

गुनिया—पी लूँगी, पर यहाँ रस कहाँ है ?

जीवन—उधर देख। उस घडियोवाली दुकान के बराबर खडा है रसवाला।

गुनिया—पर बडा तेज बिक रहा होगा। और कुल्हड भी कैसे छोटे-छोटे हैं।

जीवन—चल जाने दे। चार पैसे के चार ले लेंगे। कुछ तो आसरा हो ही जायेगा। अच्छा तू यहाँ रह, मैं लाता हूँ।

(बाज़ार का शोर फिर उभरे और कम हो जाये।)

जीवन—भैया! चार कुल्हड़ रस दीजो।

रसवाला—चार कुल्हड! गांठ में पैसे भी है या नही?

जीवन—(तुनककर) है क्यो नही? लो इकन्नी, जल्दी दो, हमें दूर जाना है।

रसवाला—इकन्नी, इसका तो एक कुल्हड आयेगा।

जीवन—एक? अरे जरा-सा तो कुल्हड है। मुश्किल से पाव भर रस भी न आता होगा। और इसका एक आना।

रसवाला—(हँसते हुए) क्या पहले-पहल शहर देखा है भैया?

(बाजार का शोर फिर उभरे और क्रमश: कम होता जाये।)

गुनिया—रस नही लाये?

जीवन—नही गुनिया, सचमुच बड़ा तेज बिक रहा है। एक आने में आता है एक कुल्हड।

गुनिया—आग लगाओ रस-वस में। चलो आगे चलें। दिन चढा ही जा रहा है।

जीवन—हाँ गुनिया, अब तो चलना ही चाहिए, कही ठिकाना तलाश करके तुम्हे वहां बिठा के मै काम ढूंढने जाऊँगा।

(बाज़ार का शोर धीरे-धीरे विलीन हो जाय।)

जीवन—शुकर है भगवान का गुनिया, दिन भर भूखे-प्यासे फिरते सिर छिपाने को ठिकाना मिल गया। कैसा दयालू है सेठ मेवालाल।

गुनिया—यह खपरैल की कोठरी तो पूरा जेलखाना है, हमारा गांव ·

जीवन—खबरदार गुनिया, जो मुझे बार-बार गांव की रागिनी सुनाई।

गुनिया—अच्छा भई, मेरी मजाल है जो मै कुछ भी बोल जाऊँ। तू तो मुझे सदा फांसी लगाये रखे है।

जीवन—अरे नाराज हो गई गुनिया। सोच तो ढाई रुपये मे भला सहर में कही ठिकाना मिल सकता है। और हम यहां क्या सदा के लिए बैठे रहेंगे? अभी परदेसी है और अनजान भी। जरा जान-पहचान हो जाये देखना कैसा आलीशान ठिकाना ढूंढ निकालता हूँ अपनी रानी के लिए।

(अन्तराल सगीत)

सेठ मेवालाल—मैंने कहा मुनीम जी, इसका जरूर बन्दोबस्त होना चाहिए। यह कैसे तोता-चश्म लोग है।

मुनीमजी—ठीक है, सेठ जी।

सेठ मेवालाल—इतना पैसा लगाकर तीन-पैंतीस परिवारों को शरण दे रखी है। फिर भी जब काम कहो आँखें निकालते है। नेकी को कोई जानता भी नही।

मुनीमजी—कमीन लोग है सेठ जी इनसे क्या आशा हो सकती है नेकी की ? यह तो जब बस चले गिला ही करेंगे।

सेठ मेवालाल—अरे हमने इन सालो के लिए क्या कुछ नही किया। कटरे में नीम के पेड लगवाये है। जहाँ गर्मियो में मजे से हवा खाओ, जाडो में धूप सेंको और बरसात में झूला झूलो।

मुनीम—आपने तो गरीब किरायेदारो के लिए बहुत कुछ किया है सेठ जी।

सेठ—पर यह सब-के-सब नमकहराम है। अब कहते है एक कुवाँ खुदवाओ। अरे नल क्या आग लगाने को लगा रखा है ?

मुनीम—सेठ जी वे कहते है वहाँ साँझ-सवेरे महाभारत मचा रहता है।

सेठ—सच !

मुनीम—(खिसियानेपन से) और कहते है दो सा प्राणियों में वह नल ऐसा है जैसे ऊँट के मुँह में जीरा।

सेठ—बडे आये हैं नवाबजादे ! सरकारी नल से पानी लाते तो पता चलता। कमर टूट जाती पानी ढो-ढोकर।

मुनीम—और किराया भी क्या सौ-पचास ले लेते है हम। ढाई रुपये में अलग-अलग खपरैलें कहाँ मिलती है। टूटे-फूटे दडबे भी पाँच-पाँच सात-सात रुपये में आते है।

सेठ—और उनमें भी कबूतरखानो की तरह ऊपर-नीचे दस-दस किरायेदार रहते है।

मुनीम—कमाते क्या है साले, जिस पर इतना नाज है। कोई रेवडी-मूँगफली वाला है, कोई आलू मटर का खोचा लगाता है, और कोई प्याऊ पर पानी पिलाता है, या मिल में मजदूरी करता है।

सेठ—अरे रुपये-पैसे के मामले में तो उनको हमारा जन्म भर आभारी रहना चाहिए मुनीम जी। सिर्फ एक आना रुपये के व्याज पर रुपे उधार दे देता हूँ।

मुनीम—और वह भी बिना कागज़-पत्तर कराये।

(नेपथ्य में ढोलक की आवाज आती है, और फिर बहुत से क़हक़हे गूँज उठते है, और आल्हा का स्वर भी उठता है जो नेपथ्य में जारी रहता है)

सेठ—अरे यह क्या हुल्लड मच रहा है ?

मुनीम—जाने क्या कोहराम मचाये रखते है दिन-रात ?

सेठ—क्यो मुनीम जी, यह गाने की बैठक कब से शुरू हुई ?

मुनीम—जीवन को बडे पर लग गये है सेठ जी। आजकल बडे रग में है वह।

सेठ—अच्छा ! कल बुलाओ साले को। सारा रंग निकाल दूँगा।

(गाना बिल्कुल साफ़ सुनाई देता है, मेवालाल और मुनीम जी की आवाज़ नेपथ्य में डूब जाती है, और आल्हा बन्द हो जाती है। सब की हँसी)

एक आवाज़—अरे वाह कैसा आल्हा पढा जीवन !

दूसरी आवाज़—अरे जीवन के क्या कहने !

तीसरी आवाज़—इस साले के तो गले में कोयल बैठी है। भाग फूटे हैं इसके जो यहाँ पडा सड रहा है।

दूसरी आवाज़—किसी ठेठर वाले ने देखा होता तो तुरन्त ही ले जाता इसे।

जीवन—अच्छा भई, तुम मजाक करते हो तो हम नहीं गाते।

एक—अरे नाराज हो गये।

तीसरा—भई वाह, हमने तेरे गुण की तारीफ की तो नाराज होने लगे।

दूसरा—हाँ तो हो जाये शुरू फिर

जीवन—अब नही फिर कभी सही।

तीसरा—भई यह नाराजगी अच्छी नही।

जीवन—मै नाराज नही हुआ सुखुआ। साँझ पड गई है अब घर चलना चाहिए।

तीसरा—चला जाईयो। घर कही उडा जाये है क्या ? अभी तो धूप सेठ के चबूतरे से भी नही ढली।

जीवन—अरे नही भाई, घर में तकलीफ है।

दूसरा—क्या तकलीफ है ?

सखुवा—अरे गुनिया की दशा ऐसी-वैसी है ना।

(सब का कहकहा जो उदय अन्तराल सगीत में समाविष्ट हो जाता है)

जीवन—उधर क्या कर रही है गुनिया ?

गुनिया—(दूर से) जूए बीन रही हूँ, मरो ने जान खा डाली है।

जीवन—जरा एक-आध अगारा तो ला दे चूल्हे से।

गुनिया—क्यों, क्या करेगा अगारे को।

जीवन—तम्बाकू पियूँगा। जरा तलब हो रही है।

गुनिया—दिन में कितनी बार पियोगे चिलम ? तुम्हारी तलब बुझती भी है कही।

जीवन—(हँसते हुए) अरी गुनिया, तू क्या जाने क्या गजब ढाती है यह तलब भी। पल भर न बुझे तो रग रग टूटने लगता है। हाँ, तो ला एक-आध अगारा।

गुनिया—(अवकाश के पश्चात् पास आकर) यह ले।

(चिलम के लम्बे-लम्बे कश लगाने की ध्वनि)

गुनिया—मैंने कहा आज एक चीज ला देगा ?

जीवन—तुझे किस चीज की तलब हुई ?

गुनिया—अम्बिया की चटनी को जी कर रहा है। एक ही पैसे की ला दो चाहे।

जीवन—तेरी तो अक्ल मारी गई है। भला एक पैसे में क्या अम्बिया मिलेगी ? किसी ने दी भी तो छोटी-सी एक पकडा देगा। फिर उसके साथ एक पैसे की धनिया-पोदीना लें तब तेरे लिए चटनी बने। इससे दो पैसे की हरी मिर्च मँगा ले। साँझ-सवेरे की रोटी को काफी होगी। सब मजे से भरपेट खा लेंग।

गुनिया—(जलकर) तेरे तो सदा यही ढग रहे। कभी अपनी खुशी से एक पैसे का गुड भी न खिलाया। ऐसी दशा में नारियें कितना खट्टा-मिट्ठा खाती हैं। मेरे भाग से एक अम्बिया भी उड गई।

जीवन—(गुस्से से) ऐसा ही गुड खाना है तो चली जा किसी सेठ-साहूकार के साथ। खूब मेवा-मिसरी खिलायेगा। एक हो, दो हो, तेरी तो हर साल वही मुसीबत रहती है। कहाँ तक खट्टा-मिट्ठा चटाऊँ ? फिर तुझे खिलाऊँ या इन कीडो का पेट भरूँ। सवेरे से लेकर रात दस बजे तक बैल की तरह जुता रहता हूँ, इस पर भी तुझे सन्तोष न हो तो ला गले में फाँसी लगा लूँ।

गुनिया—अरे जा बे सरम, दिन में सात बार फाँसी लगाता है, मरा तो एक बार भी नहीं। तू सवेरे से रात तक जुतता रहता है तो मैं क्या हाथ-पर-हाथ धरे बैठी रहती हूँ। तेरे धी-पूतो को और तुझे बनाकर नही खिलाती। घर का सारा धन्धा नही करती। चाकरी करके जो चार पैसे कमाती हूँ वह भी बडे पेट में झोक देती हूँ। फिर भी जब देखो तब

जीवन—(दाँत पीसकर) तब क्या ! सुसरी बक-बक किये जाती है। उठ रोटी बना नही तो उठ के पूजा कर दूँगा।

गुनिया—रोटी क्या अपने सिर से बनाऊँ ?

जीवन—क्यो आटा नही है क्या ?

गुनिया—राख है फाँकने को

जीवन—अरी फिर वही बक-बक ! उठूँ और करूँ तेरी मुरम्मत घर में आटा नही है तो जा पडौस में से कही से माँग ला। (चिलम फूँककर) उधार ले रहे हैं, कल-परसो लौटा देंगे।

गुनिया—लौटा देगा नवाबजादा परसो जैसे जादू के रुपये बना देगा, यह।

(यह वाक्य कहते-कहते गुनिया का प्रस्थान करना)

जीवन—हे भगवान्! इस औरत ने तो जीवन अजीरण कर रखा है। जी में आता है कही चला जाऊँ। बच्चो का ख्याल न होता तो चला ही जाता। अच्छा देखो, कब तक चलती है।

(अन्तिम शब्द अन्तराल सगीत में लय हो जाते हैं)

एक आवाज—सहर में आकर उसकी काया पलट गई।

दूसरा—सच कहते हो भैया जब आया था गऊ था पर अब देखो

सुखवा—कीडे को हवा लगने से पर लग गये है।

एक—कौन ऐब है जो अब उस से बन्द रहा है। ताडी भी पीता है, गांजे की दम यह लगाता है। वखत-बेवखत बाहर भी रहता है। दारू पीता है, और जूआ भी खेलता है।

सुखवा—आफत तो बाल-बच्चो पै आती है भाई, जब आया था गुनिया को हाथो की छाया में रखता था।

दूसरा—इनसे क्या छिपा है सुखवा? पहली बार गुनिया जब गर्भवती हुई थी तब उसने अपने दिलपसन्द चांदी के बटन बेचकर भी उसकी खातिरदारी करी थी।

सुखवा—और अब तो यह हाल है कि बात करे तो उसे काटने को दौडता है। अरे उस दिन गुनिया ने किसना के कुरते को पैसे दिये और आप रात तक लौटे नही। गुनिया मेरे पास आई, बोली, भैया सुखवा, जरा जा के उस कर्म-फूटे को तो ढूंढ ला। मैंने पूछा गया कहां है? बोली, बालक के कुर्ता नही था मैंने दाम देकर बाजार भेजा है। अरे मैंने बाजार का कोना-कोना छान मारा पर जीवन का न नाम था न निशान।

आवाज—कहां गुम हो गया था?

सुखवा—ताडीखाने में।

नं० १—अरे!

सुखवा—और रकम सारी गुल।

२—जूआ खेलता है साला।

१—अरे भई वडडे के बदमाशो ने उसे भी बिगाड डाला है। वरना यह तो ऐसा न था।

२—अरे रहने दो, मैंने तो तब ही उसके तौर देख लिये थे जब वह भवनानी के अड्डे पै आने-जाने लगा था।

(अन्तराल संगीत)

गुनिया—(व्यथित स्वर) अरी चाची !

दाई—जीवन कहाँ है गुनिया ?

गुनिया—जाने कहाँ मर गया जाकर। अरी चाची, उसने तो मुझे खा लिया। एक रुपया नूरन से उधार लेकर दिया था कि दवादारू ले आ। हाय राम जी, उसने घर बरबाद कर दिया है मेरा। हे राम ! कैसी घड़ी थी जब गाँव छोड़कर सहर में आये।

दाई—अच्छा आने तो दे उस नास-पीटे नसई को। देखना कैसी खबर लेती हूँ। घर वाली के प्राण होंटो पर आ रहे हैं और आप कही ताड़ी चढाये पड़ा होगा।

गुनिया—हे रामजी! मुझे मौत भी तो नही आती।

दाई—बेटा, घबरा मत, तू अच्छी हो जाएगी। देखूँ सुखवा हो तो उसे उस नवाब की तलाश में भेजूँ।

गुनिया—मर जाऊँगी चाची अकेली मर जाऊँगी।

दाई—घबरा नहीं बिटिया, मै अभी आई कि आई—

(अन्तराल सगीत)

(ताड़ीखाने के वातावरण का प्रभाव, जो दृश्य की पृष्ठभूमि में बना रहता है)

जीवन—(गुनगुनाता है)

नजर जब साकी पै डाली जायेगी।
किस तरह तबियत सँभाली जायेगी॥

१—वाह वाह वाह, अरे मैं कहता नही था तेरे गले में कोयल बैठी रहती है ! हाँ

२—कोयल, हाँ हाँ।

१—हाँ हाँ कोयल ! (सब हँसते है)

सुखवा—(आते हुए) जीवन अरे जीवन

जीवन—ऐं, क्या है बे क्या है ?

सुखवा—चल, घर चल।

जीवन—घर ? क्यो ? नही नही (फिर गाने लगता है)

नजर जब साकी पै

सुखवा—साले, ताड़ी पिये पड़ा है। उधर भौजी के प्राण निकलने को हो रहे हैं। चल घर, चल घर।

जीवन—घर ! मेरा घर कहाँ है ?

सुखवा—साले ताड़ी की तरग में घर भी भूल गया।

जीवन—दुनिया मे मेरा घर कहाँ है ? गरीब के भी घर होता है क्या ? नही नही, गरीब के घर नही होता। गरीब तो अमीरो का बोझ ढोने का गधा होता है।

सुखवा—गधा, अरे गधे के बच्चे ! घर चलेगा या नही।

जीवन—नही नही सुखवा, गधो से भी बदतर। गधो को अपनी घर वाली और बच्चो को खर्च देने की चिंता तो नही करनी पडती। मगर गरीब को ·

सुखवा—ससुरे सायरी छाँट रहा है। भौजी मर गई तो घर वीरान हो जायेगा।

जीवन—मर जाने दे। दुखो से छूट जायेगी। नर्क से सुर्ग में पहुँच जायेगी।

सुखवा—साले सीधी तरह चलता है या ले जाऊँ घसीट के।

जीवन—ऐ, जबरदस्ती ले जायेगा 'जबरदस्ती''

सुखवा—(बेजार होकर) अरे भई घर चल, घर ·

जीवन—अरे बच्चू फांसी का डर न हो तो मै सब का गला घोट दूँ। भूख-प्यास से सिसक-सिसक कर मरने से तो एक बार मर जाना अच्छा है।

सुखवा—(पानी का छीटा देकर) जीवन !

जीवन—अरे · पानी ·

सुखवा—भई जीवन जरा सुरत तो सँभाल।

जीवन—वह मर जायेगी सुखवा। सब मर जायेंगे।

सुखवा—अच्छा बाबा, मर जाने दे। तू घर चल।

जीवन—नही, एक बार नही, हजार बार नही। तुम कौन होते हो मुझे घर ले जाने वाले। (फिर कान में कहते हुए) अरे सुखवा, जानता है घर पर मकानदार का मुनीम मेरा सिर फोड देगा। चार महीने का किराया चढ गया है। इससे तो आ मेरी जान पाव भर गुलगुले खायें और चलें बाईस्कोप। दिल बहलेगा। आँखो में तरावट आयेगी। (हँसता है)

सुखवा—पल्ले खाने को पैसे नही। बाईस्कोप जायेगा साला नवाबजादा !

जीवन—है क्यो नही यह रहे पैसे अरे! धत्त तेरी। पैसे कहाँ गये ? एँ! (चिल्लाकर) अरे मै लुट गया ! अरे यारो मै लुट गया !

सुखवा—मर साले पडा रह यही, मै तो जाता हूँ।

(ताडीखाने का शोर एक बार फिर उभरता है और फिर धीरे-धीरे डूब जाता है अन्तराल संगीत में)

जीवन—हाय राम !

सुखवा—क्यो साले खा मरा ना भौजी को भी। तेरे टगो ने दुनिया बेमौत

मर गई। और अब बच्चू भी पड़ा है।

दाई—कैसी कड़ाके की सर्दी है। बच्चे के लिए मोटा कपडा भी तो नही।

जीवन—मै कहाँ से लाऊँ मोटा कपडा ?

सुखवा—ताडी वाईस्कोप को तुझे पैसे मिल जाते है। एक नही है तो घर वालो के लिए नही।

दाई—सुखवा, जानें दे इन वातो को। भला देख तो पारवती आई कि नही। खैराती हस्पताल में गई थी।

जीवन—दवाई तो ले आई चाची।

दाई—तो देता क्यो नही मुझे ?

बच्चा—(कराहते हुए) पानी पानी · पानी

सुखवा—अरे राम, क्या गजब का ज्वर है। आँखें अगारा हो रही है।

दाई—पी ले मेरे भैया ! अच्छा हो जायेगा। (कठोरता से) मुर्दे-सा क्या बैठा है, जाकर किसी वैद्य या हकीम को ला। लुगाई और चार बच्चो को खा लिया अभी भूख नही मिटी।

जीवन—(रोते स्वर में) चाची, गुनिया तो खैर मेरी बेपरवाही से गई, पर कन्हैया और गोमती को भी मैने खा लिया। तब तो मैं नसा-पानी कुछ नही करता था। उन्ही के लिए तो मेवालाल से करजा लिया था जो अब अमरबेल की तरह बढ़ रहा है।

दाई—तब तो राम की नजर ही टेढी थी। छै महीने से तो वेकार बैठा था, पर पीछे तो काम लग जाने पर तेरे ढग बिगड गये।

सुखवा—अब तो साला सब को फाँसी लगाने की सोच रहा है।

(बच्चा छटपटा रहा है)

दाई—(घबराकर) जल्दी जा, हाथ-पाँव जोड़कर हकीम जी को बुला ला।

सुखवा—कपडे न होने से वेचारे को ठड लग गई है। लेकिन अच्छा हो जायेगा दवा-दारू से।

दाई—जो उठ खडा हो तो जानें, सुखवा। अभी तो मूर्च्छित पडा है, वेचारा।

(अन्तराल सगीत)

(फिर सडक पर ट्रैफिक का शोर वगैरह, जो कुछ सैकिडों के बाद नैपथ्य में चला आता है)

मुनीम—(दूर से आवाज आती है) अरे ओ जीवन ! रुक साले। अब तो वात भी नहीं सुनता। (पास आकर) क्यो वे, कहाँ छिपा रहा इत्ते दिन ? चल

लाला बुलाते हैं।

जीवन—(गिडगिडाकर) भैया ! उनसे कहना मेरा बच्चा सख्त बीमार है, अच्छा हो जायेगा तो धीरे-धीरे सब पाट दूँगा। अब जरा हकीम के जा रहा हूँ।

मुनीम—बहाने छोडकर सीधी तरह चलता है या

जीवन—तुम्हारे पाँव पडता हूँ मुनीम जी। मैं मुसीबत में हूँ।

मुनीम—मुसीबत में, साले मुसीबत मे है तो ताडीखाने में क्यो पडा रहता है ? और जो देने की हिम्मत नही थी तो उधार क्यो लिया ? वखत-बे-वखत रुपया मिल जाता है, इस पर इत्ती अकड दिखाते हो। नमकहराम कही के !

जीवन—गालियाँ क्यो देते हो भाई ?

मुनीम—गालियाँ न दूँ तो फूल बरसाऊँ क्या तुझ पर ? ऐसी नाजुक तबीयत थी तो वखत पर किराया-कर्जा चुकता किया होता।

जीवन—अरे दे दूँगा ! रुपया ही लोगे, जान तो नही लोगे मेरी।

मुनीम—लेंगे कैसे नही। रुपया नही देगा तो हम कैसे छोड देंगे तुझे ? चल सीधा सेठ के पास और फिर जाता रहियो हकीम-डाक्टर के पास।

जीवन—और मेरा बच्चा···

मुनीम—मर नही जायेगा तेरा बच्चा। चल

जीवन—मुनीम जी ··मैं · मैं ·

(घसीटकर ले जाता है)

मुनीम—अबे चल चल। बातें वही चलकर बनाइयो।

(ये शब्द धीरे-धीरे विलीन होते हैं, और सेठ के सवाद उभरते हैं)

मेवालाल—क्यों बे जीवन के बच्चे ! किस कबर में उतर गया था तू जो इत्ते दिन मिला नही।

मुनीम—धोखा देने में तो बडा काईयाँ है सेठ जी। ढुँढवाते-ढुँढवाते मेरा चेता गरदान कर दिया। जब जाओ घर नही, जब जाओ घर नही।

सेठ—कहाँ रहता है बे तू ?

जीवन—मेरे घर बडी मुसीबत है सेठ जी। दो बालक हँसते-खेलते हुए उठ गये, बीबी मर गई, बच्चा बुखार में तडप रहा है।

मुनीम—और तब भी तू नवाबजादा ताडीखाने में गुलछर्रे उडाता रहता है।

सेठ—हमारे करजे का क्या हुआ ?

जीवन—(गिडगिडाकर) थोडी मोहलत दे दो सेठ जी। बच्चा अच्छा हो जाये तो सब चुकता कर दूँगा। तुम तो हमारे माई-बाप हो।

सेठ—यह बहाने तो मैं कई बार सुन चुका हूँ जीवन ! अब की बार ध्यान

खोल के सुन ले, अगर दो-चार रोज में सारी रकम अदा न की तो नालिश कर दूँगा।

मुनीम—और फिर देखना क्या होता है। हवालात की हवा खाओगे। अदालतो में बीस चक्कर लगाओगे। साल-डेढ साल जेल का पानी पियोगे, सारी नवाबी घर आ जायेगी।

जीवन—सेठ जी! मैं सारी रकम अदा कर दूँगा।

सेठ—आखिरी बार छोड रहा हूँ। अब की बार देर की तो देखना क्या हाल करता हूँ। हरामखोर कही के! लेने को हाथ पसार के लेंगे और देते समय इनके प्राण निकलने लगते है! हरामखोर कही के!

(स्वर-विलयन और अन्तराल सगीत)

जीवन—(हाँपता हुआ) जरा जल्दी कर दीजिये हकीम जी।

हकीम—ऐसी क्या आफत है? (फिर काम में लग जाते है) हूँ· हूँ

जीवन—हकीम जी! (तनिक अवकाश के पश्चात् साग्रह) हकीम जी!

हकीम—अरे भई कोई जलजीरा तो है नहीं कि एक कुल्हडा तुम्हारे हाथ पकडवा दूँ। दवा-दारू का मामला है।

जीवन—अभी-अभी सेठ जी से छुटकारा पा के आया हूँ हकीम जी! बडा जालिम आदमी है। वहाँ घर पर बालक मौत के मुँह में पडा है यहाँ सेठ मुझे तुम्हारे पास नही आने देता था।

हकीम—क्यो, तूने उसका क्या बिगाडा?

जीवन—किराये में जरा देर हो गई। बहुत जान को आ गया है। बडी मुश्किल से रिहाई हुई। भगवान् तुम्हे बनाये रखे। तुरन्त चलकर मेरे बालक को देख लो।

हकीम—भई चल तो मैं नहीं सकता जीवन।

जीवन—हकीम जी

हकीम—काम बहुत ज्यादा है आजकल। तुम्हारे सग जाऊँ तो पीछे कई मरीज़ लौट जायेंगे।

जीवन—बच्चे की हालत बडी खराब है हकीम जी! रह-रह कर कराह रहा है।

हकीम—तो मेरे पास क्या जादू है जो उसे पल भर में अच्छा कर देगा?

जीवन—मैं तुम्हारे पाँव पडता हूँ हकीम जी! मेरा मरता हुआ बालक बचा लो, हकीम जी!

हकीम—पुरानी रकम तो अब तक अदा की नही तू ने।

जीवन—बच्चा अच्छा हो जाये तो कही तुरत आये। राम जी करेगा मै सब चुकता कर दूँगा।

हकीम—लेकिन दिन बहुत पड गये है। हम भी बाल-बच्चो वाले है। आज-कल कैसा जमाना जा रहा है, लेकिन तुम लोग ऐसे तोताचश्म हो कि दवा-दारू लेकर चले जाते हो और जब मरीज तन्दुरुस्त हो जाये तो फिर तू कौन और मै कौन।

जीवन—नही वैद जी, मै ऐसा नही। तुम तो हमारे माई बाप हो हकीम जी! मै सारी रकम दे दूँगा। जरा बालक अच्छा हो जाय सारी रकम अदा कर दूँगा।

हकीम—अच्छा देखें, यह लो पुडिया दवा की। सौंफ के अर्क से दे देना।

जीवन—वह भी दिलवा दो न हकीम जी।

हकीम—मेरे पास खत्म हो गया है। कही किसी अत्तार से लेते जाना। चार-छः पैसे का…नही तो पानी ही से दे देना। (स्वर विलयन)

(पृष्ठभूमि से गहन सगीत धीरे-धीरे उभरता है)

जीवन—(अपने आप से) पुडिया दे दी साले ने दूसरे का दुख तो समझने-बूझने नही, बडे वैद बने फिरते है साले, हाँ। इससे क्या होगा? और बचेगा तो अब वह नही। उसका सर पटकना, कराहना और बदन की ऐंठन अच्छे लच्छन नही। गोमती और कन्हैया भी तो ऐसे ही करते थे। लेकिन मै क्या करूँ? अरे ऐसे जीवन पर धिक्कार है। घर दाई की कडवी-तीखी बातें सुनो और साले सुखवा की झिरकी सुनो। सेठ से गालियाँ खाओ और सुबह ठेकेदार की फटकार खाओ। और दे दी साले ने एक छोटी-सी पुडिया। जाय खड्डे में साली! यह गई। चुटकी भर नमक-वमक से कभी बीमारी जाती है। देखने को उसे समय नही, बडा आया लाट साहब।

(अतराल सगीत)

दाई—अरे सुखवा! दौड़ के आइयो मेरे पास।

सुखवा—क्या है चाची?

दाई—जा भाग के। बुला ला उस कर्मो-फूटे को। बालक तो ठडा हो गया।

सुखवा—मर गया?

दाई—मरता नही तो और क्या? कल रात भर सूखी टहनी-सा काँप रहा था और बदन की ऐंठन और फिर उसके ऊपर यह सर्दी।

सुखवा—वह कहाँ होगा?

दाई—हकीम के गया था ना।

सुखवा—तब का नहीं आया?

दाई—कहाँ आया। सारो कटरे भर में घूम आई है। हकीम के यहाँ भी फेरा कर आई लेकिन उसका न नाम है न निशान।

सुखवा—पडा होगा सुसरा ताडीखाने में।

दाई—वहाँ भी नही।

सुखवा—वहाँ भी नही, तो फिर कहाँ मर गया जा के ?

दाई—सारे घर वालो को खा मरा। एक-एक कर के नासपीटा। अच्छा जरा खोज तो कर उस नामुराद की। कफन काठी का सामान भी तो नही घर में।

सुखवा—अच्छा, जाता हूँ।

(अतराल सगीत)

सुखवा—अरे, तू यहाँ, इस कलवरिया मे औधा पडा क्या कर रहा है ?

जीवन—मे मे मे कहाँ हूँ ?

सुखवा—पडा है साले नशे में। धत्त ! पीछे घर उजड गया।

जीवन—अरे सुखवा ?

सुखवा—सुसरे नसई ! बच्चा तडप-तडप कर मर गया और तू यहाँ मौज कर रहा है।

जीवन—मै मौज कर रहा हूँ ?

सुखवा—सुराही के पिल्ले, जा पारो और जग्गू को भी अफीम देकर सुला दे। फिर निश्चिन्त होकर यहाँ डेरा जमाइयो। उन्हे क्यो छोड दिया ?

जीवन—अरे सुखवा मेरा क्या दोस है इसमें।

सुखवा—दोस क्या है। दोस तो उन बे बसो का है न, जिन्हे तू खा गया।

जीवन—मेरा कुछ दोस नही सुखवा, मेरा कुछ दोस नही। दोस इस कटरे का है। जहाँ आकर मे बरबाद हो गया।

सुखवा—अरे साले यह सायरी फिर छांटता रहियो। घर चल बच्चे का कफन-काठी कौन करेगा।

जीवन—बालक मर गया ?

सुखवा—लेकिन तुझे क्या ? कोई मरे तेरी बला से, कोई जिये तेरी बला से, तेरी तरग तो कभी नही टूटती ! तेरे सर्वनासी पेट में सभी उतर जायेंगे। साले आदम-खोर !

जीवन—(बिलकुल क्षीण स्वर में) मै, आदम खोर !

(सगीत)

६३. उपन्यास का रेडियो रूपान्तर—उपन्यास का क्षेत्र उपेक्षया अधिक विस्तृत है। उसमें बहुत सी घटना होती है, और मुख्य कथानक तथा सहायक कथानक से सम्बद्ध अनेक छोटे-बडे प्रधान और गौण पात्र। इसलिए उपन्यास का रूपान्तर अधिक समय लेता है और अपक्षेया कठिन है। वैसे तो उपन्यास के रूपान्तर शिल्प और कहानी के

रूपान्तर शिल्प में कोई सद्धान्तिक अन्तर नही पर क्योंकि समस्याएं नया है इसलिए उस शिल्प का नये रूप से प्रयोग अपेक्षणीय है।

उपन्यास के रेडियो-रूपान्तर की पहली और सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण समस्या है विस्तृत कथा का कुशल सक्षेप, जिससे कि मूल का भावार्थ तो सफलतापूर्वक व्यक्त हो जाये किन्तु आवश्यक विवरणो की उलझन में फँसे बिना। सबसे पहला काम है उपन्यास का अध्ययन। इसके बाद हमे उसकी साराश कथा लिख लेनी चाहिये। हम देखेंगे कि उपन्यास की मूल कथा या प्रधान कहानी के साथ अनेक अन्तरधारायें है, जो एक से अधिक घटनाक्रमो द्वारा व्यक्त होती हैं। और अनेक चरित्र ऐसे है जिनका पूरे उपन्यास के लिए तो महत्त्व है लेकिन उनके बिना भी कहानी को प्रस्तुत किया जा सकता है। इन सब चरित्रो का विकास किया गया है। इन सब चरित्रो से सम्बन्धित अनेक वृत्त और घटनाएँ है जिनको सविवरण प्रस्तुत किया गया है। हम देखेंगे कि इन चरित्रो को eliminate करने से हम उपन्यास के एक बहुत बडे भाग से बच गये है। हाँ, यह ध्यान रहे कि अगर अप्रधान पात्रो के कार्यकलाप का प्रधान पात्रो के विकास पर प्रभाव पडता हो या उनकी सहायता से प्रधान पात्रो के व्यक्तिगत रहस्यो की सूचना मिलती हो तो हमें उन पात्रो के उन महत्त्वपूर्ण वृत्तो को रूपान्तर में स्थान देना होगा, चाहे वह सकेतमात्र से ही क्यो न हो। इसके अतिरिक्त लेखक द्वारा दिये गये अनेक भाषण, वर्णन, व्याख्याएँ और समीक्षाएँ होंगी जो पढने में निस्सन्देह रोचक हो। पहले-पहल हमें इच्छा होगी कि इन सब 'साहित्यिक' टुकडो को रूपान्तर में ले लिया जाये, लेकिन कुछ विचार करने पर हमें मालूम होगा कि हम न केवल इन्हे आसानी से छोड सकते है बल्कि उनकी उपस्थिति से रेडियो-रूपान्तर की लय (tempo) बिगडती है। उपन्यास की इस लुभावनी 'माया' से बचना बहुत जरूरी है।'

साराश कथा लिख लेने के बाद रेडियो-रूपान्तर का प्रारम्भिक खाका या परिलेख बनाया जा सकता है। इसमें आवश्यक घटनाओं और महत्त्वपूर्ण चरित्रो की एक सूची-सी मिलेगी। आवश्यक घटनाएँ वे होगी जो कथाप्रवाह में नये मोड लाकर चरित्रो के सामने नयी समस्याएँ और नये सकट उपस्थित कर सकें, जिनके कारण उनके जीवन में महत्त्वपूर्ण और प्रकट परिवर्तन आ जायें। इन आवश्यक और महत्त्वपूर्ण कथा-तत्त्वो (story motifs) का पार्थक्य अनिवार्य है। इतना ही जरूरी है उन चरित्रो का सकेत जिन्हे हम महत्त्वपूर्ण समझते है। महत्त्वपूर्ण चरित्र वे होंगे जो या तो विशेष स्थितियो के आविर्भाव और विकास में सहायक होते है, या कहानी को नये मोडो से ले जाते हुए उसे परिणति तक पहुँचाते है।

प्रारम्भिक परिलेख के बाद, जो सकेतो की एक सूची मात्र से अधिक नहीं

होगा, हम अन्तिम परिलेख की रूपरेखा तैयार कर सकते हैं। यह परिलेख दागबेल होगी रूपान्तर के भवन की। इसमें दृश्यक्रम होंगे जिनसे हमें कहानी के प्रवाह, नाट्य-क्रिया की गति आदि की सूची मिलेगी।

अब सबसे पहला सवाल है कि रेडियो-रूपान्तर का आरम्भ कैसे हो? यह सवाल बहुत कठिन है, क्योंकि एक विस्तृत कथाप्रवाह में से एक आरम्भ बिन्दु विशेष का पार्थक्य सचमुच मुश्किल है। इस सवाल का जवाब ढूंढने के लिए हमें उपन्यास को फिर से पढ़ना होगा। इस बार रूपान्तर-निर्माण के लिए सामग्री एकत्रित करने की दृष्टि से नहीं, बल्कि एक प्रभावशाली आरम्भस्थल खोजने के लिए हम उसका अनुशीलन करेंगे। अनुभव बतलाता है कि इसके लिए सारे उपन्यास को खडो (sections) में विभाजित कर लना अच्छा रहता है। इस तरह महत्त्वपूर्ण और मूल नाट्यक्रियाओ को सरलता से उभारा जा सकता है। यह विभाजन हमें कहानी के विकास का रूपरेखा का परिचय अधिक सरलता से दे सकेगा। विशेषकर ऐसे उपन्यासो में जिसमें अनेक कथाक्रम और चरमोत्कर्ष है, जैसा कि अनन्तगोपाल शेवडे के उपन्यास 'मृगजल' में है, कहानी का विकासमार्ग आलोकित करना अनिवार्य है। कुछ उपन्यास जो पुरानी शैली के अनुसार लिखे जाते हैं अक्सर एक लम्बी-चौडी प्रस्तावना (exposition) से शुरू होते है, फिर धीरे-धीरे चरमसीमा और परिणति की ओर प्रगति करते हैं, और जब क्लाइमेक्स आ चुकता है, तब भी वह उसकी विस्तृत व्याख्या देते हैं। इस तरह की बहुत सी उलझनो में पडकर भी हमारा छुटकारा नही हो जाता, क्योंकि अभी उपसहार बाकी है। ऐसे उपन्यासो को रूपान्तरित करते हुए बहुत कतरव्योत जरूरी होती है। कुछ उपन्यास एक अति-नाटकीय विस्फोट-बिन्दु से शुरू होकर द्रुत गति से उत्कर्षोन्मुख कथानक का विकास करते चले जाते हैं। आरम्भ में समस्या को हमारे सामने लाया जाता है, मध्य में उसका विश्लेषण होता है, जो अक्सर कई परिच्छेदो में फैला होता है, और समस्या का अन्त तब आता है जब कि उसका अनेक दृष्टिकोणों से अध्ययन किया जा चुके। ऐसे उपन्यास प्राय. धीरे-धीरे एक शान्त परिणति पर जाकर समाप्त हो जाते हैं, या फिर आकस्मिक वेग से एक नये उत्कर्ष बिन्दु की ओर प्रगति करने लगते है, और एक ऐसे स्थान पर जाकर समाप्त होते हैं जिसके बाद बहुत कुछ हो सकने की सम्भावना है। जैसे यह निर्धारित करना कठिन होता है कि उपन्यास के कथानक में कौन-सी धाराएँ नाटक के लिए महत्त्वपूर्ण है, वैसे यह ढूँढना कम मुश्किल नही कि उपन्यास का वास्तविक चरमोत्कर्ष कहाँ पर है। विशेषकर ऐसे उपन्यासों में जिनमें अनेक चरमोत्कर्ष होते हैं। इस केन्द्र-बिन्दु या लक्ष्य को निश्चित रूप से निर्धारित करने पर ही रूपान्तर की रचना आरम्भ की जा सकेगी। दूसरे और प्रधान चरम-

बिन्दुओं का पार्थक्य करने में ही रूपान्तर की सफलता का रहस्य निहित है।

जब श्रोता रेडियो-रूपान्तर सुनता है तो वह मूल उपन्यास खोलकर अपने सामने नहीं रखता। रूपान्तर का आधार कुछ भी हो, उसमें किसी भी शैली या शिल्प का प्रयोग हुआ हो, सुनने वाला रूपान्तरकार से एक रोचक, सुगठित और प्रभावशाली नाट्य-रचना की आशा रखता है। रूपान्तरित रचना एक organic whole लगनी चाहिए जिसके आरम्भ, मध्यस्थल और अन्त में आनुपातिक सतुलन है।

जिन दो प्रकार के उपन्यासों की चर्चा ऊपर की गई है उनको रूपातरित करने के लिए दो विभिन्न साधनो का प्रयोग होगा। पहले प्रकार में, जिसमें विस्तृत भूमिका या प्रस्तावना हो, और जिसका कथानक मन्द गति से उठता और बढ़ता हो, हमें उस स्थान से शुरू करना होगा जहाँ कि प्रस्तावना समाप्त होती है। या तो प्रस्तावना को निरूपक संक्षिप्त रूप में कह देगा या एक छोटे से आमुख दृश्य से आरम्भ स्थल से पहले की घटनाओ की समीक्षा प्रस्तुत कर दी जायेगी, और मध्य-स्थल के सक्षेप के लिए, जहाँ वर्णन आदि अधिक समय ले रहा हो, हम प्रभाववादी (impressionistic) शिल्प का प्रयोग कर सकते हैं। एक सुरचित मोन्ताज दृश्यक्रम उपन्यास के एक बहुत बडे भाग को सक्षिप्त (summarise) कर देता है। स्थान और वातावरण विषयक वर्णन बडी सरलता से संवादो में समोये जा सकते हैं। बहुत सी घटनाओ को जो दूर-दूर बिखरी पडी हैं एक निश्चित परिधि में लाने के लिए यह आवश्यक होगा कि उनके नये-नये क्रम-समन्वय प्रयोग में लाये जायें। फ़िल्म और रेडियो परिभाषावली में हम इस सक्षेपात्मक सग्रह को 'Bunching' कहते हैं। इस तरह सकुचित अधिक्षेत्र में भी रूपान्तर का घटना या विवरण-क्रम वही सवेद (impression) देगा जो उपन्यास के विस्तृत रचना-विधान से प्राप्त होता था।

दूसरे प्रकार के उपन्यास में रूपातरकार को एक सुन्दर नाटकीय आरम्भ उपलब्ध है। नाट्य-सिद्धान्त की दृष्टि से अगर कही दोष है तो वह मध्य और अन्त में है। मध्य-स्थलो में चरित्र-विश्लेषण इतना स्थान घेरता है कि कथा-प्रवाह में वेग नही रहता। नाट्य-स्थिति में परिवर्तन भी बहुत धीमे-धीमे आते हैं। इतना कि वे श्रोताओ का ध्यान प्राय. नही खीच पाते। गम्भीर विश्लेषण एक तो बहुत समय चाहता है, दूसरे उसकी ग्रन्थियो में उलझकर कथा-क्रम भी विशृंखल-सा हो जाता है। लेकिन उपन्यास के इन भागो का बडा महत्त्व है। यहीं पर चरित्रों का रहस्योद्घाटन होता है और आगे चलकर होने वाली घटनाओ की छाया दिखाई देती है। इस महत्त्वपूर्ण सूचना के बिना चरित्रप्रधान उपन्यास का मर्म और आशय व्यक्त नही हो सकेगा। इसलिए रूपातरकार इसे नज़रअन्दाज नही कर सकता। यहाँ भी प्रभाववादी

शिल्प उसकी सहायता करेगा। उदाहरणार्थ, उपन्यास का एक चरित्र ऐसा जो अपने बाल्यकाल के मनोविकारो के कारण कोई निश्चय नही कर सकता। सद हैम्लेट की तरह 'है' और 'नहीं है' के बीच डोलता रहता है। उपन्यासकार इ त्रिशकु अवस्था का व्यापक विश्लेषण करेगा जिसमें विस्तृत व्याख्याएँ होगी, अने घटनाओ की चर्चा होगी जो इस ग्रन्थीपूर्ण चरित्र की वस्तुस्थिति की सूचना दें उपन्यास के इन विश्लेषणात्मक भागो को मोन्ताज दृश्य-क्रम द्वारा सक्षिप्त रूप प्रस्तुत किया जा सकता है। अगर उपन्यासकार ने बाल्यकाल की कुछ ऐसी घटना का वर्णन किया है जो सरलता और प्रभावजनक ढग से नाट्यमय रूप में प्रदर्शि हो सकती है तो वह विगताख्यान दृश्य-क्रम, अर्थात् (flash back scene) काम ले सकता है।

घटनाप्रधान उपन्यास में कथानक इतना विस्तृत और उलझा हुआ होता कि बिना निरूपक के उसकी समीक्षा नही की जा सकती। निरूपक का मुख्य उद्देश क्रियाओ का स्पष्टीकरण और कथानक का सक्षेप है। विशेषकर कथानक के उन अशो का जो आवश्यक तो है, लेकिन जो क्रिया की गति को मन्द करते हैं। देश और काल के परिवर्तनो, परिपार्श्व और वातावरण विषय विवरणो के सकेतात्मक वर्णन भी निरूपक द्वारा हो सकता है। निरूपक के विषय में एक बात ध्यान देने योग्य है। उपन्यास में घटनाओ का वर्णन कई प्रकार से होता है। कभी लेखक निस्सग होकर वस्तुनिष्ठ रूप से कहानी सुनाता है, कभी वह अपने पात्रों में से एक या अधिक के मुख से कहानी को कहलवाता है। कभी-कभी वह स्वय कहानी सुनाने वाला बन जाता है। इस अवस्था में कथा और वस्तु के प्रति उसका दृष्टिकोण आभ्यातरिक होता है। रेडियो-रूपातरकार को उपन्यास के निर्माण-विधान के अनुकूल शैली का प्रयोग करना चाहिए। अगर मूल उपन्यास में कथाप्रधान चरित्र की जबानी सुनाई जा रही है तो रूपान्तरकार का निरूपक प्रधान चरित्र ही होगा, निस्सग व्यक्तित्वरहित व्याख्याता नही। रूपान्तरकारो का अनुभव है कि निर्वैयक्तिक (impersonal) से वैयक्तिक (personal) निरूपक अधिक सफल सिद्ध होता है। अगर निरूपक पात्रो में से ही हो तो श्रोता के लिए उपन्यास की विविध कथा-धाराओ के साथ-साथ चलना आसान हो जाता है। निरूपण भी रजित और आकर्षक होते हैं। इस प्रकार के निरूपक से श्रोता का आत्मीय सम्बन्ध हो जाता है, और उसकी उत्सुकता क्षीण नही होने पाती। निरूपक नाटक का एक पात्र होने के नाते नाटक की परिधि से बाहर रहकर घटनाओ की चर्चा नही करता, बल्कि उन्हे अनुभव करता है। और श्रोता को अपना सहअनुभवी बनाता है। विशेषकर मनो-वैज्ञानिक उपन्यासो के लिए, जहाँ चरित्रो की मन-स्थितियाँ उनकी प्रतिक्रियाएँ

घटनाओं से अधिक महत्त्वपूर्ण होती है, आभ्यान्तरिक निरूपक का प्रयोग प्रायः अनिवार्य-सा है। श्रोता निरूपक की आँखों से देखता है, उसके कानों से सुनता है, उसके हृदय से अनुभूत करता है। ऐसे निरूपक का कथा-वर्णन अधिक आत्मीय और हृदयग्राही होता है।

जीवनी और रिपोर्ताज को रूपान्तरित करते समय भी चरित्र-युक्त निरूपक (character narrator) अधिक उपयुक्त रहेगा। रामचन्द्र तिवारी रचित जैनेन्द्रकुमार के उपन्यास 'त्यागपत्र' के रूपान्तर में इसका सफल प्रयोग हुआ है।

निरूपण लिखना वैसे आसान लगता है लेकिन वास्तव में बहुत कठिन काम है। रेडियो-रूपान्तर की सफलता निरूपण की सफलता पर निर्भर है। अगर निरूपक अनावश्यक घटनाओं से दो-एक शब्दों में निपट सकता है और नाटक को वेग दे सकता है वहाँ वह नाटक में इतनी 'बोरियत' भी भर सकता है कि श्रोता का मन डूब जाए। रेडियो-नाट्य के इतिहास में पहले-पहल निरूपक को रेडियो-नाटक का महत्त्वपूर्ण अंग समझा जाता था। फिर हम उससे इतने बेज़ार हुए कि सूत्रधार या निरूपक का अर्थ रह गया है 'बोर'। नि पक का परित्याग आधुनिक रेडियो-नाट्यकारों द्वारा इस लिए हुआ कि निरूपक नाट्य-रचना के प्रभाव की सहायता करने के स्थान पर उसे नष्ट करने लग गया है। रेडियो-रूपान्तरकार को निरूपक को तब बुलवाना चाहिए जब कि उसकी उपस्थिति के बिना काम न चलता हो। इसके अतिरिक्त निरूपक या वाचक को बहुत अधिक वाचाल नहीं होना चाहिए। उसे कम बोलना चाहिए, बहुत कम, ताकि उसका प्रत्येक शब्द महत्त्व रखने वाला हो। निरूपण का सबसे बड़ा दोष है पुनरुक्ति, जो कहानी के प्रगमन के लिए तो बुरी होती है, वह श्रोता को भी क्षुब्ध करती है। निरूपण में उन घटनाओं का वर्णन, निषिद्ध माना जाये जिनका नाटकीय प्रत्यक्षीकरण आगे आने वाले दृश्य में हो रहा है। और न ही घटित घटनाओं का चर्वित चर्वण ही अच्छा है। निरूपक का उद्देश्य श्रोता की उत्सुकता को जगाना और उभारना है, उसे क्षीण करना नहीं। निरूपण में उन ध्वनि-वर्णनों की भी बहुत चर्चा करना अपेक्षित नहीं जिन्हें ध्वनि-संकेतों द्वारा व्यक्त किया जा रहा हो, या किया जा सकता हो। निरूपण लिखते समय नाटक की लय का ध्यान रखना बहुत ज़रूरी है। अगर नाटक की लय उभरती जा रही है, तो निरूपक के वाक्यों में भी वेग आना चाहिए। निरूपक का समुचा व्यापक प्रभाव नाटक को वेगवान बना सकता है। इसके अतिरिक्त, mord या भाव का प्रश्न भी महत्त्व नहीं रखता। निरूपण को दृश्य में अभिव्यक्त भाव की पुष्टि करनी चाहिए। हो सके तो उसमें इष्ट परिवृद्धि करनी चाहिए। जो विचार रेडियो की भाषा-शैली के विषय में ऊपर प्रकट किये गये थे, वे निरूपण-शैली के विषय में भी सत्य हैं। शब्दों में संचित और

एकाग्र भाव अपेक्षित है। अन्त में, निरूपक का सब से बडा कर्तव्य है अपने अस्तित्व को मिटाकर नाटक के प्रभाव को बल देना। अगर निरूपक श्रोता का ध्यान चरित्रों से हटाकर अपनी ओर आकृष्ट करता है तो वह अपने सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कर्तव्य का पालन नहीं करता। उसका धर्म है कि वह नाटक की एकाग्रता भग न होने दे। उपन्यास के रूपान्तर में जहाँ विशेष रूप से प्रभाव में बिखरन आने का भय रहता है, यह अति-आवश्यक है कि सूत्रधार या निरूपक रचना के सभी अगो पर अधिकार रखे और कही पर भी 'समग्रता' और एकता के प्रभाव को क्षीण न होने दे।

अध्याय दूसरा

रूपक

रेडियो-नाटक की अपेक्षा रूपक (feature programme) का विकास बहुत बाद की घटना है, लेकिन जितने प्रश्न और समस्याएँ इस अति-आधुनिक नाट्य-रूप ने उठाई हैं, उतनी किसी दूसरे रूप या प्रकार ने नही उठाई ।

६४. परिभाषा—श्रव्य और प्रसारण कला के विद्वान् अभी तक इस शब्द की सन्तोषजनक परिभाषा तक प्रस्तुत नही कर सके। इस समय सभी ब्रॉडकास्टिंग संस्थाएँ नाटको की अपेक्षा रूपक अधिक प्रसारित करती है। रूपक के अनेक प्रकार है। अत कोई सर्वमान्य परिभाषा नही बन सकी। हाँ, इन विविध प्रकारो में उपस्थित सामान्य तत्वो का विश्लेषण करने के पश्चात् एक अधूरी-सी, काम-चलाऊ परिभाषा प्रचलित हो चली है। लॉरेन्स गिल्यिम ने, जो बहुत समय तक बी.बी.सी. के रूपक विभाग के अध्यक्ष थे, रूपक को 'वस्तु का रेडियो-नाटकीय प्रस्तुतीकरण' (Radio-dramatic presentation of activity) कहा है। इस प्रकार रूपक में कल्पित वस्तु की अपेक्षा यथार्थ वस्तु और उस सामग्री के नाटकीय माध्यम द्वारा प्रस्तुतीकरण पर बल दिया गया है। ऑल इण्डिया रेडियो की रिपोर्ट में रूपक की परिभाषा निश्चित करने का प्रयास करते हुए लिखा है ‥

" A feature programme is a method of employing all the available methods and tricks of broadcasting to convey information, or entertainment in a palatable form "

और रूपक के विस्तृत क्षेत्र का संकेत देते हुए कहा गया है—

"Feature programme may range from a description of some process of manufacture interspersed with sound effects, conversation with workers and so forth, to an arrangement of poetry and music compiled so as to present and develop an idea "

स्पष्ट है कि इन दो छोरो के बीच बहुत विस्तृत कृतिक्षेत्र है।

जितनी रूपक की परिभाषा अस्पष्ट है उतना ही अस्पष्ट उसका रूप है। यह कहना एक बेतुकी-सी बात होगी कि रूपक एक अस्पष्ट कलाकृति है लेकिन ऐसा

विषयो पर। उदयशंकर भट्ट ने ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और शिक्षा सम्बन्धी विषयो को लिया। रेवतीसरन शर्मा ने शरणार्थी पुन:स्थापन की समस्याओं पर लिखा। इस रूपक समूह में जितना विषय-वैविध्य था उतना ही प्रकार-वैविध्य भी था। प्रत्येक लेखक ने अपनी विविध सामग्री को नाटकीय रूप में प्रस्तुत करने के लिए अनेक शिल्प गत प्रयोग किये। रेडियो निर्देशको ने भी अनेक प्रयोग किये। इन सब प्रयोगो का उद्देश्य एक ही था—विषय का स्पष्ट प्रकटीकरण और श्रोताओ को प्रेरित करना। यह रूपकक्रम कोई दो वर्ष से ऊपर चलता रहा और श्रोता अनुसन्धान विभाग के आंकडो से पता चलता है कि नवभारत क्रम अत्यधिक लोकप्रिय था।

जैसा कि ऊपर कहा गया था रूपक रेडियो-नाट्य-शिल्प की सभी युक्तियो, रचनातन्त्र के सभी उपकरणो का उपयोग करता है। रामचन्द्र तिवारी के रूपक 'खेती' के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जायगी। यह देखना लाभप्रद होगा कि तिवारी किस प्रकार नीरस, वैज्ञानिक और सूचनात्मक सामग्री को रोचक बनाते है और किसी भी स्थान पर यह अनुभव नही होता कि लेखक श्रोता को अपने दृष्टिकोण की ओर जबरदस्ती ले जा रहा है। शिक्षात्मक रूपक की सफलता के लिए यह अस्पष्ट किन्तु निश्चित और स्वाभाविक विचार-परिवर्तन महत्त्वपूर्ण है। इस सम्बन्ध में शिक्षात्मक रूपक लिखने वाले के लिए कॉर्विन, माइकल बार्सले, लूई मेकनीस और वायजनगार्ड की रचनाओं को जरूर पढना चाहिए।

६८ प्रासगिक रूपक—प्रचारात्मक, सूचनात्मक और शिक्षात्मक रूपको के अतिरिक्त एक और प्रकार के प्रासगिक रूपक भी रेडियो से अक्सर ब्रॉडकास्ट हुआ करते है। डायरेक्टर का आदेश मिलते ही रूपक-निर्देशक सामग्री का सग्रह आरम्भ कर देता है। समय अधिक नही होता, इसलिए रूपक का आकार मुक्त ही रखा जाता है, ताकि ब्रॉडकास्ट से कुछ मिनट पहले भी अगर आवश्यकता पडे तो कोई महत्त्वपूर्ण सामग्री उसमें जोडी जा सके। आकार अनिश्चित होने पर भी इन रूपको का प्रभाव किसी तरह कम नही होता। पहले तो प्रभाव की पुष्टि वह वातावरण ही करता है, जिसमें से कि प्रस्तुत समस्या उठी है। उसके अतिरिक्त लेखक प्राय भाव-प्रधान शैली का आश्रय लेता है जिसकी अपील प्रत्यक्ष (Direct) और तात्कालिक (Immediate) होती है। गाधी-बलिदान ने अनेक रेडियो-लेखको को रूपक लिखने के लिए प्रेरित किया। इस तरह लिखे गये सब रूपक स्थायी महत्त्व नही रखते, पर कुछ ऐसी प्रासगिक रचनायें भी निर्मित हुई है जिनका मूल्य प्राय स्थायी है। उदाहरणार्थ उदयशकर भट्ट का एकपात्र रूपक 'एकला चलो' वल्लभभाई पटेल की मृत्यु के दूसरे दिन इलाहाबाद से प्रसारित किया गया प्रभाकर माचवे का 'अहिंसा के सेनानी' रूपक।

वैसे तो प्रत्येक लेखक विषय को अपने निजी ढंग से प्रस्तुत करता है। वास्तव में रूपक की सफलता उसकी मौलिकता और उसकी विशेषता पर ही निर्भर है, फिर भी एक रचना-योजना इस प्रकार के रूपको में सामान्य रूप से रहती है। रूपक का निर्माण एक (montage) के रूप में होता है। प्रायः दृश्यो में 'कथानक' का सम्बन्ध नही होता। होती है एक भाव-साम्यता अत. एक निर्माता केन्द्रीय भाव से सम्बद्ध और मुख्य वातावरण के अनुकूल छोटे-छोटे सवाद-क्रम सयोजित कर देता है जिनका सम्मिलित प्रभाव विचार की अभिव्यक्ति करता है। प्रभाववादी (impressionistic) रचना-शिल्प ही ऐसे रूपको के लिए ठीक रहता है।

९९. साहित्यिक रूपक—एक और प्रकार के रूपक भी ऑल इण्डिया रेडियो से प्रायः प्रसारित होते रहते है। इनका उद्देश्य न सूचना या प्रचार है, न किसी विशेष अवसर का समारम्भ। साहित्यिक रूपको की लोकप्रियता का क्षेत्र अपेक्षाकृत सीमित होता है। लेकिन यह अनुभव किया गया है कि प्रसारित साहित्य प्रकाशित साहित्य से अधिक प्रभावसम्पन्न है। इसलिए ऐसे कार्यक्रमो की सख्या बढती जा रही है। इस प्रकार का अविकसित रूप है साधारण काव्य-सयोजन। समान या विरोधी विषयो को एक वाचक द्वारा क्रमित कर दिया जाता है। निर्देशक इन विविध रचनाओ को भावोचित वाणियो द्वारा प्रस्तुत करता है। सगीत आदि आलंकारिक ध्वनि उपकरण, वर्णित वस्तु के प्रभाव की अभिवृद्धि करते है। यहाँ भी प्रभाववादी रचना-शिल्प प्रयुक्त होता है।

इसका विकसित रूप है 'भारतेन्दु कला' और उदयशकर भट्ट लिखित 'महाकवि कालिदास' ऐसा रूपक। लेखक प्रस्तुत विषय से सम्बद्ध सामग्री एकत्रित करता है। फिर एक पूर्व-निश्चित योजना के अनुसार उसे क्रम विशेष में सयोजित करते हुए विचार का विकास करता है। भारतेन्दु का जीवन, उसका साहित्य और इनसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण उसका युग इस रूपक मे पूरी तरह से प्रतिबिम्बित होता है। 'भारतेन्दु-कला' साहित्यिक रेडियो-रूपको में श्रेष्ठ माना जा सकता है।

१००. प्रतिकल्पना रूपक—प्रतिकल्पना रूपक का एक विकसित प्रकार है। क्योकि इस तरह की रचना का प्रभाव मुख्यत कल्पना और सूक्ष्म सकेत पर निर्भर है, यह रेडियो के लिए अत्यधिक उपयुक्त पाई गई है। स्वच्छन्द कल्पना, अरूप किन्तु वृहद् विचार, देश और काल के प्रतिबन्धो से मुक्त ये नव प्रसार-माध्यम से ही पूरी तरह अभिव्यक्त हो सकते है। प्रतिकल्पना बच्चो के लिए लिखी जाये या बडो के लिए उसका मूलभूत सिद्धान्त एक ही है। उचित वातावरण की सृष्टि द्वारा श्रोता का willing suspension of disbelief इनमें भी प्राय प्रभाववादी शिल्प ही प्रयुक्त होता है। एक सफल रेडियो प्रतिकल्पना लेखक के लिए ध्वनि के

व्यजनात्मक प्रभाव को समझना जरूरी है। इससे अधिक जरूरी है श्रव्य-नाट्य-शिल्प का ज्ञान। क्योंकि नाटक का प्रभाव अगर अधूरा भी रहता है तो कुछ-न-कुछ श्रोता तक पहुँच ही जायेगा। लेकिन अगर अतिकल्पना का प्रभाव अधूरा है तो वह बेतुकी शब्दावली और विसगत व विसवादी ध्वनि-समूह से अधिक कुछ नही होगा।

प्रस्तुत उदाहरण की सामग्री ऐतिहासिक है, किन्तु उसे काल्पनिक परिपार्श्व पर प्रस्तुत किया गया है।

सभ्यता के चरण

(एक अतिकल्पना रूपक)

(वियतनामी सगीत और उससे मिश्रित हवा की गहन सरसराहट)

अनाउन्सर—इस रूपक का केन्द्र दक्षिण-पूर्वी ऐशिया के कम्बोदिया प्रदेश में स्थित, अगकोरवत् का प्रधान देवालय है। इसका निर्माण ग्यारहवी और बारहवी शताब्दी में हुआ था। अगकोरवत् नगर उन सम्राटों की राजधानी था जिनकी राज-सत्ता से प्रभावित होकर १२० सामन्त उन्हें कर दिया करते थे, और जिनके पास पचास लाख सेना थी। ख्मेरो की राजधानी अगकोरवत् सातवी शताब्दी से लेकर चौदहवी शताब्दी तक दक्षिण-पूर्वी एशिया का सब से बडा सभ्यता-केन्द्र बना रहा। अब ख्मेरो की स्मृतिमात्र शेष रह गई है, और अन्य नगर अगकोरवत् साठ वर्ग मील के वन्य क्षेत्र में फैला हुआ एक खण्डहर-समूह बनकर रह गया है। वर्षो की खोज के पश्चात् इस खण्डहर-समूह में हमें एक ऐसी सभ्यता के चरण-चिन्ह मिले हैं, जो भारत से आविर्भूत होकर दक्षिण-पूर्वी एशिया में एक हजार वर्ष तक विकास और उन्नति करती रही।

(संगीत)

सूत्रधार—यह नाम बा-खङ्ग की पहाडी है, जिसके शिखर पर 'ख्मेर'-सम्राट शिव वर्मा ने, एक शिवालय स्थापित किया था। यहाँ वह प्रत्येक रात्रि को तारों की छाँव में अपनी उपास्य नाग-कन्या से भेंट किया करता था। इसके चारो ओर बृहद् और गौरवपूर्ण भवनो, राज्य-प्रासादो, विहारो और देवालयो का एक बहुत बडा समूह है। यह है प्रा-खान का गुरु-सोपान और उधर विस्तृत जलाशय पर स्थित, प्रा-रूप का देवालय ऐसा लगता है, जैसे किसी प्रभावशाली कल्पना वाले कलाकार ने पाषाण को द्रवित कर एक अनुपम कविता के रूप में ढाल दिया है और यह है कमल-पुष्प की भाँति तैरता हुआ विहार 'नीक-पैन' जिसके पटलो को वृहत्काय वृक्षो की भुजग-सदृश भुजाओ ने अपने सुदृढ आलिंगन में भीच रखा है, और यह है वृक्ष-सम्पन्न-उद्यान में स्थित ताप्राम्ह विश्वविद्यालय।

(अवकाश)

इस खण्डहर-समूह को देखकर ऐसा प्रतीत होता है जैसे धरती ने इन तिमिराच्छादित निर्जन मे वनस्पति और पाषाण में निरन्तर द्वन्द्व-युद्ध हो रहा है, और यह भव्य-भवन, यह बृहत् और प्रभावशाली देवालय, जड नही लगते, वरन् अबाध शक्ति और ओज से स्पन्दित लगते हैं ''इन सबके मध्य में खडा है—कम्बोदिया का प्रधान देवालय, अगकोरवत् ।

(पवन के महरावो और गोलाकार शिखरो में से होकर सनसनाने का गहरा शब्द, जो निम्नलिखित वर्णन की पृष्ठभूमि मे निरन्तर सुनाई देता रहता है)

सूत्रधार—सघन वृक्ष-समूह के लहलहाते सागर की लहरो से सिर उठाकर अगकोरवत् के त्रिकोणाकार शिखर, दूर से दर्शक को सकेत करते हैं । ये पाँच शिखर, धरती से दो सौ पन्द्रह फुट ऊँचे है, उलझे हुए और सकुचित वन्य-पथो को काटकर, जब दर्शक इस वृहत्काय देवालय के सम्मुख आ खडा होता है, तो उसका हृदय एक रोमाचकारी सिहरन से स्पदित हो उठता है । इसके चारो ओर एक हजार बीस गज लम्बा और आठ सौ चालीस फुट चौडा एक गर्त है, जो बडे-बडे नील-कमलो से अटा है । इसके ऊपर से कई सोपान गुजरते है, जिनके दोनो ओर नागो और गज-सेनाओ के भव्य चित्र अकित हैं ।

(क्षणिक अवकाश)

अगकोर आज भी ससार के लिए एक अद्भुत और वैचित्र्यपूर्ण घटना है । विशाल भारत की सस्कृति का यह भव्य स्मारक उस अद्वितीय और नृत्य की ओर सकेत करता है । जहाँ तक मानवीय कल्पना उडान कर सकी है जड पत्थर में से एक सजीव और शक्तिमान जीवन से ओत-प्रोत कलाकृति प्रस्तुत करना, महान् कलाविज्ञो का ही कार्य था । अगकोरवत् ने एक समूची जाति के हृदय में मचलने वाले स्वप्नो को पाषाण की वाणी द्वारा मुखरित कर दिखाया । उन्नत भारतीय सभ्यता का यह प्रतीक है । छ सौ वर्ष तक कवि के एक स्वर्णिम स्वप्न की भाँति रहस्य मे लुप्त रहा, यहाँ तक कि अट्ठारह सौ साठ में एक फ्रांसीसी यात्री हेनरी मूहो इस सघन वन में प्रविष्ट हुआ ।

स्वर १—हमें कुछ मालूम नहीं मोस्यो ! हम कुछ नहीं जानते । यह नगर कदाचित् देवताओ ने बनाया था ।

मोस्यो—देवताओ ने ?

स्वर २—इसे हमारे पूर्वजो ने नहीं बनाया था । भला यह मनुष्य का काम है ?

स्वर ३—मैंने अपने दादा को कहते सुना था ।

मोस्यो—क्या ?

स्वर ३—और उसने शायद अपने दादा की जवानी सुना था कि

मोस्यो—क्या ?

स्वर ३—कहते हैं मेरे दादा के दादा ने भी शायद यह गाथा अपने किसी वृद्ध विद्वान् पूर्वज से सुनी थी।

मोस्यो—क्या सुना था उसने ?

स्वर ३—कि यह नगर एक कोढी सम्राट ने बनाया।

मोस्यो—कोढी सम्राट ?

स्वर ४—नही, नही, मोस्यो, यह बिल्कुल मनगढन्त बात है। इन भव्य मन्दिरो, स्तूपो और विहारो का निर्माण किसी ने नही किया, ये अपने आप बन उठे, जैसे अगारो के समुद्र में से हमारी धरती जन्मी थी।

सूत्रधार—और इस प्रकार, वह फ्रांसीसी यात्री वर्षो तक इन रहस्यपूर्ण खडहरो में घूमा किया किन्तु उसे उस स्वप्न का अर्थ न मिल सका। वह सोचता ही रहा कि इस वैभवपूर्ण नगर के निर्माता कौन होगे ? सहसा वर्षा की एक रात (वृष्टि का शब्द उभरता है और फिर पृष्ठभूमि में बैठ जाता है) वह यात्री अपनी झोपडी में ज्वर की भट्टी में झुलस रहा था कि उसके मस्तिष्क में अनेक विचार दामिनी के वेग से मचल उठे।

(एक तीव्र सगीत-लहरी)

मोस्यो मोहो—इस घुप अँधेरे वन में कितने रहस्य छिपे हुए हैं। प्रत्येक भवन, प्रासाद और देवालय अपनी भव्यता द्वारा एक ओजपूर्ण गाथा कह सुनाता है। किन्तु मै वह भाषा नही समझता जिसमें अतीत के स्वप्न मुखरित हो रहे हैं। यह कितना बडा पाषाण मच है। यहाँ कदाचित् वह शक्तिशाली सम्राट जनता की प्रार्थना सुना करते थे। हाँ

(क्रमश ध्वनि-विलयन और एक चचल सगीत-लहरी के पश्चात् नये दृश्य का उदय)

मत्री—सम्राट की जय हो! इस कृषक की समस्त खेती मीकाग नदी के कोप का आहार बन गई है। मीकाग जनपद के अध्यक्ष की सूचना है कि इस उत्साही कृषक ने अपार परिश्रम के पश्चात् ऐसी खेती उपजाई थी, जिसके लिए आपकी आज्ञानुसार इसे राजकीय कृषि-विभाग की ओर से पुरस्कार मिलना चाहिये था। किन्तु बाढ ने इसकी सारी खेती नष्ट कर डाली है। इसकी प्रार्थना है कि इसे शासन की ओर से सहायता दी जाये।

सम्राट—परिश्रमी कृषक को उसके परिश्रम का पुरस्कार मिलना ही चाहिये।

प्राकृतिक कोप को हम नही रोक सकते, किन्तु हम उसे उसकी हानि के लिए उचित प्रतिफल तो दे सकते है। इसे एक ऐसे प्रदेश में भूमि प्रदान की जाये जहाँ बाढ नही पहुँच सकती।

(उसी संगीत की पुनरावृत्ति और विलयन वृष्टि का शब्द फिर सुनाई देता है)

मोस्यो—और अगकोरथाम के राज्य-भवन के समक्ष इस विशाल उद्यान में विराट समारोह होते होगे। यह प्रदेश, जो अब सिसकियाँ भरता प्रतीत होता है, जनरव से थरथरा उठता होगा। म्येरो के पाँच सौ वर्षों के इतिहास में ऐसे कितन ही अवसर आए होगे। काल की विकराल गति ने उन शक्तिशाली सम्राटो के भवनो के अधिकाश भाग को मिटा डाला है, किन्तु लगता है मानो अब भी ये खण्डहर उन वैभवपूर्ण समारोहो की आकाक्षा हृदय में बसाये हुए है। ये ऊँचे-ऊँचे प्रवेश-द्वार, यहाँ से गजो पर चढकर सम्राट और उसके सामत सभास्थल पर आते होगे।

(क्रमश. ध्वनि-विलयन और नये दृश्य के उदय हाथियों के चलने, शख और नगाड़े का शब्द)

एक स्वर—राजराजेश्वर महाराज सूर्यवर्मा की जय! (तीन बार)

काम्बोज नायक—महाराज! आज का समारोह आपको और आपके परिवार को शुभ हो। मैं काम्बोज की प्रजा की ओर से उनकी मगल-कामना आपके श्री चरणो में सादर अर्पित करता हूँ।

सूर्यवर्मा—धन्यवाद! हमारी शक्ति आपकी शक्ति है। आपके सहयोग के अभाव में हम इस द्वीप को कदापि सुख-सम्पन्न न कर सकते। आपकी सहायता से ही हमने म्येर वश के वैभव को बनाये रखा है। अपने सामन्तो से मेरा अनुरोध है कि अब पूर्व-वर्षो की भाँति इस वर्ष भी जन-कल्याण के लिए परिश्रम करने की शपथ लें।

सम्वेत स्वर—हम काम्बोज के अठारह सामन्त, जन-कल्याण के लिए परिश्रम करने की शपथ लेते है।

सूर्यवर्मा—भगवान् पशुपतिनाथ आपकी सहायता करें।

सम्वेत स्वर—राजराजेश्वर महाराज सूर्यवर्मा की जय!

(सगीत की पुनरावृत्ति और विलयन। वृष्टि का शब्द फिर उभरता है)

मोस्यो मोहो—और, और यह ताप्राम्हा का बृहद् विहार? यहाँ कदाचित् विश्वविद्यालय होगा, यह खण्डहर जो अब चुप पडे है कभी, कभी···

(विद्यार्थीगण वेद-मत्र उच्चारण कर रहे है। कुछ क्षणों के पश्चात् कुलपति का स्वर उभरता है)

कुलपति—इन कक्ष-समूह में एक हजार आठ नौ पुजारी रहते है, और

उधर, उस देवालय में दो हज़ार सात सौ पुजारी देवी-देवताओ की सेवा में तल्लीन रहते है। उन छात्रावासों में दो हजार दो सौ तीस विद्यार्थी रहते है, जो ज्ञान-विज्ञान का अध्ययन करने के लिए अनेक द्वीपो से एकत्रित हुए है। इस गुरू प्रकोष्ठ में दर्शन और धर्म-सम्बन्धी वाद-विवाद होते है। इन दिनो हमारे विश्वविद्यालय में तक्ष-शिला-विश्वविद्यालय से गणित के एक प्रसिद्ध आचा॑ पधारे है उन्होने

(धीरे-धीरे क्रमश. उभरते हुए सगीत में विलयन। क्षणिक अवकाश के पश्चात् नया दृश्य उभरता है)

आतिथ्य अधिकारी—इधर आओ मेरे आदरणीय अतिथि, आपका स्थान यह है। इस स्फटिक के सिहासन पर विराजिये, जिसके ऊपर आपके देश चीन के मुक्ताओ से जटित कौशेय छत्र है।

च्याऊ ता क्वान—ओह, कोटिश धन्यवाद! आपने मेरा आदर नहीं किया आतिथ्याधिकारी महोदय! वरन् मेरे देश का आदर किया है।

आतिथ्य अधिकारी—चीन हम सब को प्रिय है च्याऊ ता क्वान।

च्याऊ—सुनिये उधर उस प्रासाद के सामने उस मच पर पुष्पो से सुसज्जित वह फानूस कैसा है?

आतिथ्य अधिकारी—वह फानूस बहुत ही अद्भुत वस्तु है। अभी सध्यागमन के समय इसके भीतर दीपक प्रज्वलित कर दिये जायेंगे।

च्याऊ—फिर।

आतिथ्य अधिकारी—फिर जो होगा उसे मेरी वाणी वर्णन नही कर सकती प्रिय अतिथि। इस गोलाकार आवरण-पट पर ख्मेर वश के व्यवस्थापक शैलेन्द्र से लेकर हमारे सम्राट गुणवर्मा के राज्य-काल तक की महत्त्वपूर्ण घटनाओ की कथा छाया-चित्रो द्वारा प्रस्तुत की जायेगी।

च्याउ—(उत्सुकता से) अच्छा!

आतिथ्य अधिकारी—और उन केशरी फानूसो पर रामायण की घटनाओ को चित्र-बद्ध करके प्रस्तुत किया जायगा।

(शख-ध्वनि और बाजे का शब्द दूर से पास आता हुआ सुनाई देता है)

महाराज की सवारी आ गई!

(स्वर-विलयन और क्षणिक अवकाश के पश्चात् पुन स्वरोदय)

परराष्ट्र मन्त्री—परराष्ट्र सम्पर्क-विभाग की ओर से महाराज को नूतन वर्ष की मगल-कामना प्रस्तुत करता हूं। आज काम्बोज इस अपार हर्ष और आह्लाद के शुभ अवसर पर चीन, कामरूप, भारत, चम्पा द्वीप वारुण, मलय देशो के राजदूत उपस्थित है, और वे ख्मेर वश के शक्तिशाली वशज को मगल-कामना का सन्देश देते

है, और ये है सब अतिथियो के मुकुटमणि, च्याऊ तवा क्वान ''

च्याऊ—यूआन वश के उत्तराधिकारी, सूर्यकुल के यशस्वी सम्राट कुब्लाय की ओर से, और चीन की जनता की ओर से शुभ-कामना का सन्देश लाया हूँ। यह रहा मेरे राजदूत के पद पर नियुक्त होने का प्रमाण-पत्र। सम्राट कुब्लाय का स्व-हस्ताकित आदेश-पत्र।

सम्राट—हम काम्बोज में आपका स्वागत करते है।

च्याऊ—चीन-सम्राट की ओर से भगवान् बुद्ध की यह ताम्र-मूर्ति आपकी सेवा में भेंट की गई है। साम्राज्ञी की ओर से काम्बोज नरेश की पट्टमहिषी के लिए यह मुक्ता-माल। और यह रत्नमडित खड्ग राजकुमार के लिए है। ताप्राम्ह विश्व-विद्यालय के केन्द्रीय विहार के लिए यह पुस्तको और ग्रन्थो की मजूषा।

सम्राट—हम चीन सम्राट की शुभ कामना का आदर करते है और आशा करते है कि हमारे और चीन के सम्बन्ध पहले से भी अधिक घनिष्ठ और सुदृढ होगे।

परराष्ट्र मत्री—और भारत की ओर से यह ताम्र-पत्रो पर अकित जातक-कथाएँ और भगवान् बुद्ध और बोधिसत्वो की मूर्तियाँ।

सम्राट—हमारे पूर्व पुरुषो के देश भारत का यह उपहार हमें अत्यन्त प्रिय है। हम महाराज का धन्यवाद करते है कि उन्होंने यह मूर्तियाँ अगकोरवत् के देवा-लय में प्रतिष्ठित करने के लिए भेजी है। इन ताम्र-पत्रो पर अकित जातक-कथाओ के लिए हम विशेष रूप से अनुगृहित है और हम आकाक्षा करते है कि जल और स्थल दानो पथो से हमारी और भारत की मैत्री बढेगी। हम भूले नही है कि जो प्रकाश आज काम्बोज मे विद्यमान है, वह भारतीय सस्कृति की आलोक-शिखा से ही प्राप्त हुआ है।

(दृश्य संगीत में विलीन हो जाता है और वर्षा का शब्द पुनः उभरता है)

मोस्यो—इस देवालय की भित्तियो पर कैसे-कैसे अद्भुत चित्र अकित है। एक चित्र में शैव प्रभाव प्रत्यक्ष होता है, तो दूसरे में बौद्ध प्रभाव स्पष्ट है, और फिर यह गरुड़ और यह विशालकाय विषधर, यह अप्सरायें, यह देवी-देवता, गन्धर्व, किन्नर और लोकेश्वर। इधर बोधिसत्वो की शात और स्थिर मुख-मुद्रायें, और उधर शक्ति और सत्ता के मद में निमज्जित ध्वज लहराते हुए योद्धा। इधर भीषण सग्राम और उधर अन्तरीय भाग में पाषाण-पटो पर कोमल, किन्तु चचल शरीर वाली नर्तकियो के चित्र है, जिनकी प्रत्येक मुद्रा में दामिनी की त्वरा है। यह देव-ताओ और असुरो का मदराचल पर्वत को लेकर क्षीर-सागर का मन्थन'''लक्ष्मी का उदय ' और उधर राम-रावण युद्ध। वानर सेना का बड़े-बडे पाषाण-खडो को ग्रहण किये रण-क्षेत्र में आना। और फिर ''विजेताओ का परिहास और विजितो

उघर, उस देवालय में दो हज़ार सात सौ पुजारी देवी-देवताओ की सेवा में तल्लीन रहते हे। उन छात्रावासो में दो हजार दो सौ तीस विद्यार्थी रहते हैं, जो ज्ञान-विज्ञान का अध्ययन करने के लिए अनेक द्वीपो से एकत्रित हुए हे। इस गुरू प्रकोष्ठ में दर्शन और धर्म-सम्बन्धी वाद-विवाद होते हे। इन दिनो हमारे विश्वविद्यालय में तक्ष-शिला-विश्वविद्यालय से गणित के एक प्रसिद्ध आचा॑ पधारे हे उन्होने

(धीरे-धीरे क्रमश उभरते हुए सगीत में विलयन। क्षणिक अवकाश के पश्चात् नया दृश्य उभरता है)

आतिथ्य अधिकारी—इधर आओ मेरे आदरणीय अतिथि, आपका स्थान यह है। इस स्फटिक के सिंहासन पर विराजिये, जिसके ऊपर आपके देश चीन के मुक्ताओ से जटिल कौशेय छत्र है।

च्याऊ ता क्वान—ओह, कोटिश धन्यवाद! आपने मेरा आदर नही किया आतिथ्याधिकारी महोदय! वरन् मेरे देश का आदर किया है।

आतिथ्य अधिकारी—चीन हम सब को प्रिय है च्याऊ ता क्वान।

च्याऊ—सुनिये उधर उस प्रासाद के सामने उस मच पर पुष्पो से सुसज्जित वह फानूस कैसा है?

आतिथ्य अधिकारी—वह फानूस बहुत ही अद्भुत वस्तु है। अभी सध्यागमन के समय इसके भीतर दीपक प्रज्वलित कर दिये जायेंगे।

च्याऊ—फिर।

आतिथ्य अधिकारी—फिर जो होगा उसे मेरी वाणी वर्णन नही कर सकती प्रिय अतिथि। इस गोलाकार आवरण-पट पर म्येर वश के व्यवस्थापक शैलेन्द्र से लेकर हमारे सम्राट गुणवर्मा के राज्य-काल तक की महत्त्वपूर्ण घटनाओ की कथा छाया-चित्रो द्वारा प्रस्तुत की जायेगी।

च्याउ—(उत्सुकता से) अच्छा!

आतिथ्य अधिकारी—और उन केशरी फानूसो पर रामायण की घटनाओ को चित्र-बद्ध करके प्रस्तुत किया जायगा।

(शख-ध्वनि और बाजे का शब्द दूर से पास आता हुआ सुनाई देता है)

महाराज की सवारी आ गई!

(स्वर-विलयन और क्षणिक अवकाश के पश्चात् पुन स्वरोदय)

परराष्ट्र मत्री—परराष्ट्र सम्पर्क-विभाग की ओर से महाराज को नूतन वर्ष की मगल-कामना प्रस्तुत करता हूँ। आज काम्बोज इस अपार हर्ष और आह्लाद के शुभ अवसर पर चीन, कामरूप, भारत, चम्पा द्वीप वारुण, मलय देशों के राजदूत उपस्थित है, और वे म्येर वश के शक्तिशाली वशज को मगल-कामना का सन्देश देते

है, और ये हैं सब अतिथियो के मुकुटमणि, च्याऊ तवा क्वान ·

च्याऊ—यूआन वश के उत्तराधिकारी, सूर्यकुल के यशस्वी सम्राट कुब्लाय की ओर से, और चीन की जनता की ओर से शुभ-कामना का सन्देश लाया हूँ। यह रहा मेरे राजदूत के पद पर नियुक्त होने का प्रमाण-पत्र। सम्राट कुब्लाय का स्व-हस्ताकित आदेश-पत्र।

सम्राट—हम काम्बोज में आपका स्वागत करते हैं।

च्याऊ—चीन-सम्राट की ओर से भगवान् बुद्ध की यह ताम्र-मूर्ति आपकी सेवा में भेंट की गई है। साम्राज्ञी की ओर से काम्बोज नरेश की पट्टमहिषी के लिए यह मुक्ता-माल। और यह रत्नमडित खड्ग राजकुमार के लिए है। ताप्राम्ह विश्व-विद्यालय के केन्द्रीय विहार के लिए यह पुस्तको और ग्रन्थो की मजूषा।

सम्राट—हम चीन सम्राट की शुभ कामना का आदर करते हैं और आशा करते हैं कि हमारे और चीन के सम्बन्ध पहले से भी अधिक घनिष्ठ और सुदृढ होगे।

परराष्ट्र मत्री—और भारत की ओर से यह ताम्र-पत्रो पर अकित जातक-कथाएँ और भगवान् बुद्ध और बोधिसत्वो की मूर्तियाँ।

सम्राट—हमारे पूर्व पुरुषो के देश भारत का यह उपहार हमें अत्यन्त प्रिय है। हम महाराज का धन्यवाद करते हैं कि उन्होने यह मूर्तियाँ अगकोरवत् के देवा-लय में प्रतिष्ठित करने के लिए भेजी हैं। इन ताम्र-पत्रो पर अकित जातक-कथाओ के लिए हम विशेष रूप से अनुगृहित है और हम आकाक्षा करते हैं कि जल और स्थल दानो पथो से हमारी और भारत की मैत्री बढेगी। हम भूले नही हैं कि जो प्रकाश आज काम्बोज में विद्यमान है, वह भारतीय सस्कृति की आलोक-शिखा से ही प्राप्त हुआ है।

(दृश्य संगीत में विलीन हो जाता है और वर्षा का शब्द पुन. उभरता है)

मोस्यो—इस देवालय की भित्तियो पर कैसे-कैसे अद्भुत चित्र अकित हैं। एक चित्र में शैव प्रभाव प्रत्यक्ष होता है, तो दूसरे में बौद्ध प्रभाव स्पष्ट है, और फिर यह गरुड़ और यह विशालकाय विषधर, यह अप्सरायें, यह देवी-देवता, गन्धर्व, किन्नर और लोकेश्वर। इधर बोधिसत्वो की शात और स्थिर मुख-मुद्रायें, और उधर शक्ति और सत्ता के मद में निमज्जित ध्वज लहराते हुए योद्धा। इधर भीषण सग्राम और उधर अन्तरीय भाग में पाषाण-पटो पर कोमल, किन्तु चचल शरीर वाली नर्तकियो के चित्र हैं, जिनकी प्रत्येक मुद्रा में दामिनी की त्वरा है। यह देव-ताओ और असुरो का मदराचल पर्वत को लेकर क्षीर-सागर का मन्थन· लक्ष्मी का उदय · और उधर राम-रावण युद्ध। वानर सेना का बड़े-बडे पाषाण-खडो को ग्रहण किये रण-क्षेत्र में आना। और फिर···विजेताओ का परिहास और विजितो

ी क्षमा-याचना के चित्र । असीम जल-राशि पर कमलो की तरह डोलने वाली ये ौकाएँ, यान और महायान । कौनसी सभ्यता थी जिसके चरण-चिन्ह इतने गौरवपूर्ण और प्रभावशाली है । कहाँ है वह सम्राट, कहाँ

(सगीत का उदय और दृश्य-क्रम का अन्त)

सूत्र० १—इस प्रकार जब अगकोरवत् अगडाई लेकर जाग रहा था, तो मोस्यो हैनरी मूहो की नसो में लहू जमता जा रहा था, जब इस अद्भुत नगर ने आँखें खोली, मोस्यो मूहो की आँखें मुँद चुकी थी उन मूर्त्तियों, उन भवनो, उन खडहरो के सागर में, जैसे वह डूब गया था।

सूत्र० २—मोस्यो मूहो मर गया और उसके अन्त के साथ, अगकोरवत् की सभ्यता का रहस्य भी अन्धकार में लीन हो गया।

सूत्र० १—सत्तर वर्ष के अन्वेषण और गवेषण के पश्चात् इन मूक पाषाण-चित्रो की वाणी मुखरित हो उठी, खडहरो के इस समूह में से एक ही स्वर उभर रहा था।

खडहारों की गुजायमान वाणी—हम अगकोरवत्, अकोरथाम और ताप्राह्म के खडहर उस विभव-जीवन के जीर्ण-शीर्ण स्वप्न है, उस महान् सभ्यता के चरण-चिन्ह, जो गगा और यमुना के तटवर्ती प्रदेश में विकसित होकर दक्षिण की ओर बढ़ती गई, और फिर सागर-पथ से एशिया के विभिन्न प्रदेशो में अग्रसर होती गई

सूत्रधार—इतिहासकारो ने इस सास्कृतिक पर्यटन की गाथा स्वर्णमयी अक्षरो में लिखी है।

इतिहासकार—तीसरी शताब्दी तक भारत में आर्य-सस्कृति पूर्ण रूप से विकसित हो चुकी थी। इस पुष्प की सुगन्ध पूर्व और पश्चिम के सुदूर देशो तक फैल गई। इस विराट सस्कृति के प्रचार और भारतीय धर्म का यह कार्य साहसी जल-यात्रियो द्वारा सम्पन्न हुआ।

(बहते जल के प्रवाह का शब्द धीरे से उभरना आरम्भ होता है। आगे चलकर इसमें जल-यात्रियो का सम्वेत गान सम्मिलित हो जाता है)

ये जल-यात्रायें पहले-पहल विशाल प्रकृति की रहस्यपूर्णता का अन्वेषण करने के लिए ही आरम्भ हुई। धीरे-धीरे मानव-सम्पर्क के इस उन्नतिशील साधन द्वारा आर्य-सस्कृति पूर्व और पश्चिम की ओर विस्तारित और प्रसारित होती चली गई। जैसे ही यह जल-पर्यटन सफल हुए, भारतीय सन्तति नवोपलब्ध द्वीपो मे जाकर बसने लगी। उन्होंने अल्पशिक्षित जातियो को शिक्षित और सभ्य बनाया। पाँचवी शताब्दी से दसवी शताब्दी तक क्रमश अनेक पूर्वीय द्वीपो पर भारत से प्रयाण करने वाले राजकुमारो

और नायकों ने राज्य स्थापित किये । काम्बोज भी इसी प्रकार बसाया गया । जब ग्यारहवीं शताब्दी के राजनीतिक उथल-पुथल के कारण भारतीय सभ्यता का प्रासाद जीर्ण-शीर्ण होने लगा था तब काम्बोज, मलय, सुवर्ण और यवद्वीपो में सम्पूर्ण रूप से विकसित संस्कृति उन्नति के पथ पर अग्रसर थी ।

(संगीत कुछ क्षणों के पश्चात् इसका समावेश खूब लहलहाते हुए समुद्र के शब्द से होता है। नाविकों का गीत जो धीरे-धीरे मध्यम पडता गया था, फिर उभरता है, फिर धीमा पड़ जाता है, जैसे एक नहीं, अनेक जलपोत चले जा रहे हो)

दार्शनिक—(गम्भीर) प्रकृति मनुष्य की वैरी नही, वह कभी-कभी हमारा विरोध अवश्य करती है किन्तु वह हमें परास्त करने को नही होता, वरन् हमारा साहस परखने, हमें और जीवट बनाने के लिए होता है । सागर हमारा शत्रु नही है, सागर द्वारा ही हम इस वैचित्र्य-पूर्ण धरती के नाना भागो में वास करने वाले प्राणियो से परिचित होते है ।

चारुमित्र—सागर को क्षुब्ध हो लेने दो, फिर देख लेना उसकी मैत्री का प्रदर्शन !

दार्शनिक—सागर का क्षोभ उसके वैमनस्य का सूचक नही, जलधि की शक्ति की पराकाष्ठा है। हमें उससे न उलझना चाहिए और न ही उससे भयभीत होना चाहिए । हमे जलधि के सहयोग की कामना करना चाहिए ।

चारुमित्र—हम तो करते है किन्तु सागर·· ··

दार्शनिक—यह स्वीकार करके तो तुम मनुष्य के साहस की पराजय स्वीकार कर रहे हो । आर्य पराजय को नही जानता । वह केवल विजय से ही परिचित है, क्योंकि उसने सदा विजय ही पाई है । वह समय भूल गये हो जब आदिनाविको ने पहले-पहल जल-यात्रा का प्रयास किया था·· तब समुद्र को 'प्राण-धन विनाश का स्थान' कहा जाता था । किन्तु अगस्त्य ऋषि ने इस मिथ्या धारणा को असत्य सिद्ध कर दिया । अब भारतीय जलपोत पूर्व और पश्चिम दोनो दिशाओ में निर्भयतापूर्वक यात्रा करते है, इनसे पूछ लो।

व्यापारी—मैं गत दस वर्ष से पूर्वीय द्वीप-समूह से व्यापार कर रहा हूँ चारु-मित्र ! वहाँ से मेरे यान स्वर्ण, रत्न, मुक्ता, कर्पूर, पारद, मरीचिका और एला आदि लेकर दक्षिण भारत के नौकाश्रयों में आते हैं, वहाँ से कुछ तो स्वदेश में विक्रय हो जाता है, और शेष हम मिश्र, यवन और रोम के व्यापार-केन्द्रो में भेज देते है । मेरा ज्येष्ठ पुत्र कामरूप का हाथीदाँत स्थल और जल-पथो से ताम्र-लिप्त के नौकाश्रय तक पहुँचा देता है, वहां से मैं उसे अपने जलयानों में भरकर पश्चिम की ओर ले जाता हूँ, और वहाँ से हम रेशम इत्यादि भारत लाते है ।

(सागर की लहरों में से एक तीव्र सगीत-लहरी उभरती है)

स्वर्णगिरि—(उत्साह से भरी वाणी मे) वारुण, वारुण बहुत ही अद्‌भुत द्वीप है। नील जलधि में यूं स्थिति है जैसे सम्पूर्ण रूप मे विकसित एक कमल समुद्र-तल पर तैर रहा हो। बडे-बडे पर्वतो से आच्छादित हरी-भरी उपत्यकाये, असख्य नदियाँ, जो हरीतिमा मे से यूं इठलाती हुई वह रही है जैसे किसी अद्‌भुत शक्ति ने प्रकृति के हृदय में एक गुदगुदी-सी कर दी हो, और सघन वन, जिसमे अनेक प्रकार के वन्य पशु-पक्षी मिलते है, और राजकुमार! आप अपना तूणीर सँभाल लीजिये, सिंह के आखेट की लालसा थी न आपके मन मे, सो वहाँ आनन्द से पूर्ण कीजियेगा।

क्षत्रियकुमार—सच! वहाँ सिंह है, तब तो हम अवश्य वारुण की यात्रा करेंगे।

(उसी सगीत की पुनरावृत्ति)

गजमद—हे धान्यकटक के पल्लव राजकुमार! अपने पिता कुन्डकूर, पितामह शिवस्कन्द वर्मा और प्रपितामह परम विख्यात विष्णुकूर्च के नाम पर अब इस निरर्थक जल-यात्रा का अन्त करो। इन नील दिशाओ ने मुझे बिल्कुल विक्षिप्त कर दिया है।

अश्वतुग—तुम्हारी सम्मति है कि हम कांची लौट चलें।

गजमद—हाँ, मै वहाँ जाकर महाराज से क्षमा प्राप्त करने का प्रयास करूंगा और मुझे पूर्ण आशा है कि

अश्वतुग—गजमद! मुझे तुम्हारी अधीरता अच्छी नही लगती। मैने नाग-द्वीप से चलने से पूर्व ही तुम से पूछा था। अगर तुम्हारे हृदय में साहस नही था तो मेरे साथ क्यो आये? मुझे पिताजी ने स्वदेश से निष्कासित कर दिया है। अब मै किस मुंह से देश लौटूं? हाँ, एक उपाय है।

गजमद—वह क्या है? शीघ्र कहो?

अश्वतुग—मै उस समय भारत लौट सकता हूं जब मै अपने लिए एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना कर लूं।

गजमद—अच्छा! तो राज्य स्थापना की आकाक्षा है! धन्यवाद नही करते विधाता का, कि नाग-द्वीप के वन-मानुषो से छुटकारा मिला, अब'

अश्वतुग—जब तक मेरे सात सौ सैनिक मेरे साथ है, और मेरे नाविक मेरी सहायता कर रहे है, मै आशा का छोर नही छोडूंगा।

सेनानायक—हमें भी तो आपके साथ ही बहिर्गत किया गया था महाराज-कुमार अश्वतुग! हम आपकी सेवा में है। हम उस समय तक स्वदेश लौटने का विचार मन में न लायेंगे जब तक हम इस रहस्यपूर्ण सागर को मथकर अपने और

अपने वंशजो के लिए एक नये संसार की सृष्टि न कर लें ?

(तेज-तेज चप्पुओ का चलना और फिर दृश्य-परिवर्तन)

आदित्यस्वरूप—अच्छा तो आप नाग-द्वीप में जा रहे है।

बौद्ध भिक्षु—संकल्प तो यही है।

आदित्य—पर वहाँ तो नर-भक्षक बसते है,वहाँ अहिंसा-भक्त का क्या काम ?

बौद्ध—जहाँ हिंसा हो, वही तो अहिंसा के सन्देश की परम आवश्यकता होती है।

आदित्य—सो तो ठीक है महाराज ! किन्तु…

बौद्ध—कोई भी प्राणी जन्मत नर-भक्षक नहीं होता, परिस्थितियाँ उसे विकृत स्वभाववाला बना देती है। हमारा धर्म है कि हम उनसे प्रेम करें, घृणा नही।

आदित्य—आपकी बातें बहुत ही अच्छी है पर भिक्षु महाराज हम तो अपने प्राण सकट में डालकर उधर जाने का साहस नही करते।

बौद्ध—यदि आपके मन में दुर्बलता नहीं है, तो आपको भयभीत नही होना चाहिए। हमें वन-वासियो से डरना नही चाहिए। वे अपना पेट भरने के लिए पशुओ का हनन करते है। पशु नही मिलते, तो मनुष्य के भक्षण पर बाध्य हो जाते हैं। यदि हम उन्हें जीविका-प्राप्ति के सुगम और सभ्य साधन बता दें, जिन्हें आर्या-वर्त्त ने विकसित किया है, तो वे अपनी बरबरता को त्यागकर सभ्य और सुशील बन जायेंगे।

आदित्य—तो आपका कार्यक्रम वहाँ जाकर उन्हे सभ्य बनाने का है।

बौद्ध—जी हाँ ! मैं और मेरे साथी-भिक्षु, नाग-द्वीप के आदिवासियो में कृषि-विज्ञान का विस्तार करेंगे। उन्हें अन्न उपजाने की विधि से परिचित कराएँगे और भगवान् बुद्ध का निर्वाण-सन्देश उनके हृदय तक ले जायेंगे।

बौद्ध भिक्षु—आपने विचार किया है कि इस द्वीप का नाम नाग-द्वीप क्यो प्रख्यात है।

आदित्य—नाग-पूजा करते होगे वहाँ के वन पुरुष ?

बौद्ध—जी नही, प्राचीन काल में भारतवर्षीय नाग-वंश के एक साहसी नेता ने इसे जल-शून्य में से ढूंढ़ निकाला और इसे अपने वश का नाम दिया। फिर कुछ समय पश्चात् हमने उनसे सम्पर्क-विच्छेद कर लिया, इसलिए वे फिर उसी बरबरता की निद्रा में लीन हो गये। हम अपने पूर्वजों की भूल नही दुहरायेंगे। जिन द्वीपों में भारतीय-सतति बस गई है वहाँ की आदि-जातियाँ असभ्य और नर-भक्षक नहीं रहीं। वहाँ कला का विकास हो रहा है—और धर्म की उन्नति। यदि हम सब चलकर नाग-

द्वीप में आर्य-संस्कृति का प्रचार कर सकें तो क्या इससे भारत का सम्मान नहीं बढेगा ?

आदित्य—अवश्य ! तो लगर उठाइये, हम चलेंगे, पूर्व की ओर !

(सगीत और दृश्य-परिवर्तन)

(अट्टहास)

महानाविक हरिसेन—आप मुझे अनाडी समझ रहे हैं। मैं उन नाविको का वशज हूँ जिन्हे पीढियो तक जल की मैत्री का सौभाग्य प्राप्त रहा है। मेरे दादा ने स्वय एक महायान में बैठकर चारो दिशाओ की यात्रा की, और सामुद्रिक पथो के सकेत लिपिबद्ध किये। सुवर्ण, कसेयर, यव, वारुण इत्यादि सब की यात्रा मै कर चुका हूँ।

सेनानायक—ओह ! जभी आप आज तीन दिनों से इन शिला-खण्डों की परिक्रमा किये जा रहे हैं।

महा०—समुद्र में दिग भ्रम हो जाना कोई आश्चर्य की बात नही। मेरे दादा

सेना०—उन्हे भी दिग-भ्रम हो गया था ?

(सब की हँसी)

महा०—(सक्रोध) आप मेरा अपमान कर रहे है सेनानायक ! मै अपनी कला का अपमान सहन नही कर सकता। आपको ज्ञात है, मैं उस वश का उत्तराधिकारी हूँ जो सदा जल-स्वामी कहे जाते थे। आप मेरी जल-वाहन-कला का उपहास नही कर सकते।

सेना०—भावुक मत बनो महानाविक हरिसेन ! इसमें सन्देह नही कि तुम एक महापराक्रमी जल-वाहक चन्द्रकेतु के पुत्र हो, और तुम समस्त आध्र में जलयान-निर्माण में सिद्धहस्त माने जाते हो, पर इसमें भी सन्देह नही कि हम दिशा खो बैठे है। जभी हम इन शिला-खण्डों का परिभ्रमण किये जा रहे है और हमें अपने लक्ष्य काम्बोज का मार्ग नहीं मिल रहा।

महा०—बालादित्य, मेरे कक्ष में से वह पक्षियो का पिंजर तो लाओ।

बालादित्य—यह लीजिये महानाविक।

महा०—लीजिये मै इस काग को उडाये देता हूँ। यह जिधर जायेगा उस दिशा में ही हमारे महायान को जाना होगा।

सेना०—क्यों ?

महा०—क्योंकि यह काग उधर जायेगा जिधर भूमि होगी। हाँ, हाँ ! देखिये सेनानायक मेरा अनुमान बिल्कुल ठीक था भूमि पूर्व-दक्षिणीय दिशा में है। देखिये

काग उसी दिशा में उडा जा रहा है, और देखिये, देखिये, वह अब नीचे की ओर झुक रहा है।···कदाचित् काम्बोज ·

सेना०—आप इसी दिशा में चलिये महानाविक ! हमें काम्बोज पहुँचना है।

महा०—हाँ ! पर हम इतनी शीघ्र नही पहुँच सकेंगे राजकुमार।

सेना०—क्यो ?

महा०—क्योकि इस समय हम गम्भीर जल-राशि में घिर गये है। आप जिसे निरर्थक परिभ्रमण कह रहे थे, वास्तव में वह जीवन और मृत्यु का सघर्ष है। मै इस भमि के निकट जाना नही चाहता क्योकि यह मोगे की चट्टानो का एक समूह है। यदि हमारा महायान उनसे टकरा गया तो ·

सेना०—कदाचित् यह वही उप-द्वीप है जहाँ सुवर्ण की यात्रा करने वाले राजकुमार का त्रि-खड जलयान डूब गया था।

महा०—मेरा भय भी यही है। इसलिए पहले हमें इस जल-निहित शिला-खण्ड-माला से बचकर कही भी सुरक्षित भूमि पर पहुँचना चाहिए। वहाँ मैं अपने महायान का सस्कार इत्यादि करूँगा और फिर आरम्भ होगी हमारी काम्बोज गवेषणा। नाविको ! पालें खोल दो और··

(सागर का आलोडन, संगीत और दृश्य-परिवर्तन)

महा०—अब की वार हम अवश्य सफल होगे, शैलेन्द्र !

शैलेन्द्र—मेरे लिए अधिक समय तक धैर्य करना सम्भव नही महानाविक हरिसेन !

महा०—किन्तु आपका उत्साह तो क्षीण नही हुआ।

शैलेन्द्र—उसी के सहारे तो स्वदेश त्यागकर जल के शून्य में अपने भविष्य को खोजने चले है।

महा०—मलयकेतु ! तनिक मेरा दिशानिर्देशक यन्त्र मुझे देना।

मलयकेतु—यह लीजिये महानाविक।

महा०—हूँ ! इस समय हम दक्षिण-पूर्वीय दिशा में जा रहे है। मेरा अनुमान है कि हम कुछ दिनो की यात्रा के उपरान्त काम्बोज द्वीप पर जा लगेंगे। आज हमें विश्राम करना होगा।

शैलेन्द्र—क्यो ? क्या हम किसी प्रकार यात्रा जारी नही रख सकते।

महा०—बादल इतने घिर आये है कि मै उस पर्वत-माला की ओट में रुक जाना ही बुद्धिमत्ता समझता हूँ।

मलयकेतु—उधर देखिये महानाविक, क्षितिज की ओर।

महा०—भीषण झझावात के चिन्ह प्रस्तुत हो रहे है। (पवन के चलने का आभास)

मलयकेतु—पवन भी किस वेग से चलने लगा है ! (वृष्टि का शब्द)

शैलेन्द्र—अरे वृष्टि भी (पवन का वेग) और

महा०—सावधान ! सभी यात्री अपने-अपने कक्षो में रहे। पात के प्रागण में विक्षोभ फैलाने की कोई आवश्यकता नही। आपको इस अवस्था में देखकर मेरे नाविक उत्साहहीन हो जायेंगे।

(पवन, वृष्टि और जल-कोप का प्रभाव)

एक यात्री—इस प्रचड वृष्टि और झझावात में से बच निकलना सम्भव नही अब तो सागर ही अपनी समाधि बनेगा।

दूसरा—जलयान उद्वेलित हो रहा है जैसे-जैसे

तीसरा—भगवान् वरुण अवश्य कृपा करेगे उन पर, विश्वास करो।

(झझावात का शोर)

महा०—शैलेन्द्र ! हमारा यान शिला-खण्डो की ओर ढकेला जा रहा है। नाविको ! पालें खोल दो। अन्यथा पवन के वेग से हमारा यान लहरो का आहार बन जायेगा। और लघु-नौकाएँ तैयार रखो, मेरी तुरही का शब्द सुनते ही उन्हे सागर में उतार दिया जाये।

(जल का क्रोध बढता है। कुछ क्षणो के पश्चात् सहसा चीत्कार उभरता है, और सारा दृश्य सगीत-लहरी में विलीन हो जाता है)

शैलेन्द्र—भगवान् उमापति लोकेश्वर के अनुग्रह से और अनुकम्पा से आज हम उस स्वप्न की पूर्ति देख रहे हैं, जिसे हृदय में बसाकर हम अपने स्वदेश भारत से निकले थे। वर्षों की सकटपूर्ण जल-यात्रा के पश्चात् जब हमारे यान क्रूर झझावात के थपेडो को खाकर एक अपरिचित सघन वन-प्रदेश पर आ लगे थे ये तो किसे ज्ञात था कि हम इस सौभाग्य के अधिकारी होगे। आज मलय, सुवर्ण, यव, चम्पा और काम्बोज हमारे साम्राज्य में है। हम आपको विश्वास दिलाते है कि मै और मेरे वशज उस जन-तन्त्रीय परम्परा का परिपालन करेंगे जो हमारे देश भारत की विशेषता है, इस व्यवस्था में न कोई वन्दी है न वन्दी करने वाला। परिग्रह और जातीय वैमनस्य का इसमें कोई स्थान नही। हमारे नौकाश्रयो में जहाँ पूर्वी यात्री आते है, वहाँ अरब और रोमन यात्री भी। हमारी नीति है अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार व्यवस्था का सुसचालन।

(सगीत की पुनरावृत्ति और नये दृश्य का उदय)

जयवर्मा—मै जयवर्मा, मलय, सुवर्ण और यव-द्वीप के सम्राट शैलेन्द्र के आदेश से आपकी सेवा करने के लिए यहाँ भेजा गया हूँ। अत. आप मुझे और मेरे इन

साथियों को सन्देह की दृष्टि से न देखिये। हम अपना कर्तव्य जानते हैं। आपको भी चाहिए कि आप अपने कर्तव्यों का पालन करें। यह मत भूलिये कि सम्राट केवल अस्त्र-शस्त्र के बल पर राज्य नहीं होता वरन् एक महान् दैवी शक्ति के बल पर। सम्राट होना एक महान् कर्तव्य का पालन करना है, जो हमारे ऊपर ईश्वर की ओर से डाला जाता है। इस वनस्पति सम्पन्न पर्वत पर और इस पावन शिवालय के प्रागण में खड़े होकर हम शपथ लेते हैं कि हम सदा जनता की सेवा करने का प्रयास करेंगे।

(संगीत की पुनरावृत्ति और नये दृश्य का उदय)

यशोवर्मा—यह ठीक है कि हमारे द्वीप का शैलेन्द्र के राज-पुरुष द्वारा अनुशासित होने का आदेश मिला था, किन्तु हमें स्वतन्त्र होने का अधिकार है। पर-राष्ट्र के आधीन रहना उस जनपदीय परम्परा का अनादर करना होगा जिसकी स्थापना भारत से आने वाले हमारे पूर्व-पुरुषों द्वारा हुई। मैं आज इन्द्र का खड्ग 'श-खान' हाथ में लेकर शपथ लेता हूँ कि मैं काम्बोज को स्वतन्त्र कराऊँगा।

(नगाड़े पर चोटें, जनरव और विजय-घोष। महाराज विश्ववर्मा की जय इत्यादि)

(कुछ क्षणों के पश्चात् अन्तरसूचक सगीत में विलीन)

महादण्डनायक—मीका प्रदेश के विद्रोही नेता को वन्दी बना लिया गया है। आज्ञा हो तो उसे सम्राट के सम्मुख उपस्थित किया जाये।

सूर्यवर्मा—आज्ञा है।

महा०—वन्दी उपस्थित है।

सूर्य०—वन्दी, तुम्हें ज्ञात है कि तुम्हें किस अपराध के लिए वन्दी बनाया गया है।

मीका नायक—जी, मेरा अपराध यही है कि मैंने जनपदीय अधिकारों के सरक्षण के लिए अपनी ध्वजा लहराई।

सूर्य०—जनपद के लिए या वैयक्तिक स्वार्थ के लिए ?

मीका०—यदि सम्राट से न्याय न मिले तो जनता को अधिकार है कि वह उसकी दमन-नीति का विरोध करे।

सूर्य०—किसने किया तुम से अन्याय ?

मीका०—मीका प्रदेश के राजुकसिंह घोष ने मेरी कन्या का वरण करना चाहा, मैंने उसके प्रस्ताव का विरोध किया। इस पर उसने मुझ पर द्रोह का अभियोग लगाकर मेरी सारी भूमि छीन ली।

सूर्य०—हूँ ?

मीका०—आपके राजुक की अवस्था पचपन वर्ष की है और मेरी कन्या से बड़ी

उसकी दो कन्यायें हैं। किन्तु उसकी कामुकता की अग्नि अभी तक शान्त नहीं हुई। हम दीन हैं सम्राट, किन्तु अपनी सम्मान रक्षा का बल हमारी भुजाओं में है। मेरे प्रतिकार करने पर उसने हमारे वन्य-भवन पर छापा मारा और मेरी कन्या का अपहरण करके ले गया। उस पर मैंने और मेरे ग्राम के कृपकों ने कर देना अस्वीकार कर दिया। जब तक मेरी कन्या मुझे नही लौटा दी जाती और आपका राजुक मीका जनपद से क्षमा-याचना नही करता हम एक कौडी कर नही देंगे।

सूर्य०—तुम्हारे साथ अन्याय हुआ था तो तुम्हें हमारे पास आना चाहिए था राज्य-व्यवस्था को भग करने का तुम्हें कोई अधिकार नही।

मीका०—शैलेन्द्र के वशज! तुम इन वैभवपूर्ण गगनचुम्बी ऐश्वर्य-भवनों में विहार करते हो। अप्सराओं ऐसी नर्तकियों के नृत्य देखते हो और भूल जाते हो कि तुम्हारी प्रजा पर अत्याचार होते हैं और वह लहू के आँसू पीकर रह जाती है। किन्तु हमने निश्चय कर लिया है हम उस समय तक अन्याय का विरोध करते रहेंगे जब तक मेरी धमनियों में रक्त का एक भी बिन्दु शेष है।

सूर्य०—उत्तेजित होने की आवश्यकता नही मीका नायक! महादण्डनायक हमें खेद से कहना पडता है कि आपकी न्याय-व्यवस्था अभी अपूर्ण है। हम आज्ञा देते है कि सूर्यास्त से पूर्व मीका प्रदेश के जन-नायक की कन्या उसे लौटा दी जाये और राजुकसिंह घोष को बन्दी बनाकर हमारे सम्मुख उपस्थित किया जाये।

(सगीत और दृश्य परिवर्तन)

राजपुरोहित—यज्ञ समाप्त हुआ सम्राट! अब आप अपने पावन करों से प्रधान देवालय का शिलान्यास कीजिये।

(सगीत, हर्ष-ध्वनि इत्यादि)

चित्रसेन—मैं काची नरेश सम्राट चालुक्य चोल कुलोतुग की ओर से आपको इस शुभ अवसर पर मगल-कामना प्रस्तुत कर रहा हूँ। ये शिल्पी, निर्माता शास्त्रिका और वास्तु-कलाकार उन महान् निर्माताओं के वशज है जिन्होंने महाराज नरसिंह वर्मा पल्लवेन्द्र के आदेशानुसार महामल्लपुरम् के सात पगोडे बनाये थे। ये मूर्ति-कलाकार उन प्रसिद्ध मूर्तिकारों के पौत्र हैं जिन्होंने पीगू और नाग द्वीप को विजय करने वाले राजेन्द्र चोल गगायेकोंड के जीवन-काल में अपूर्व सौन्दर्य सम्पन्न और वैभवपूर्ण राजधानी गगायेकोन्डपुरम् का निर्माण किया। इनमें से कुछ शिल्पाचार्य जव द्वीप में बूबुंदूर के महास्तूप के निर्माण में सहायक हो चुके है।

सम्राट—हम सम्राट चालुक्य चोलकुलोतुग के इस मैत्रीपूर्ण सकेत का आदर करते हैं कि उन्होंने दक्षिण-भारत के सर्वगुणसम्पन्न कलाविज्ञों और निर्माताओं को हमारी राजधानी के प्रधान देवालय के निर्माण में सहायता करने के लिए काम्बोज

भेजा है। भगवान् की दया से इस स्थान पर एक ऐसे अद्वितीय देवालय की स्थापना होगी जिसमें उन सब कलाकारों की ओजमयी कल्पना प्रतिबिम्बित होगी जो इस समय यहाँ एकत्रित हुए हैं।

(संगीत और दृश्य-परिवर्तन)

कन्या—(सहमी हुई-सी) बाबा, सुना है कि थाइ सेना हमारी रक्षा-पंक्ति तोडकर राज्य प्रासाद में प्रवेश कर गई है। उन्होंने अंकराथाम सम्राट की और उनके परिवार की हत्या कर दी है और सब बड़े-बड़े नायकों, नेताओं को बन्दी बना लिया गया है।

वृद्धजन—हूँ।

कन्या—अंगकोरवत् और वेयान देवालय में जन-कल्याण-यज्ञ किया जा रहा है।

वृद्धजन—हूँ।

कन्या—अब क्या होगा ?

वृद्धजन—कुछ नहीं होगा बेटी, कुछ नहीं होगा। आज पाँच सौ वर्ष हो गये हैं, सम्राट बदलते रहे हैं किन्तु जनता नहीं बदली, क्योंकि वह अमर है। जीवन की भाँति अनन्त और अविनाशी।

(गम्भीर संगीत)

सूत्रधार—जनता वास्तव में अविनाशी है, और अविनाशी हैं जनता के स्वप्न, उनके विचार और अनुभूतियाँ। दर्शन और परम्पराएँ कभी नहीं मरती, क्योंकि उनका निर्माण एक ऐसे तत्त्व से होता है, जिसे राजनीतिक क्रान्तियाँ नष्ट नहीं कर सकतीं। वे स्वप्न जनता की कला में प्रतिबिम्बित होते हैं। जहाँ कहीं सभ्यता के चरण पड़ते हैं, वहाँ चिरस्मरणीय चिन्ह रह जाते हैं। सभ्यता की प्रकाश व्यक्ति में नहीं समष्टि के प्रत्यक्ष होती है। आज भी जब कि छै सौ वर्ष तक वैभवपूर्ण राज्य करने वाला वंश शेष नहीं रहा, अंगकोरवत् वहीं पर है, जहाँ वह आज से सात सौ वर्ष पूर्व स्थापित किया गया था।

वेयान्, ताप्राम्ह, प्राख्न, अंकोरथाम और अंगकोरवत् सब जीवित हैं। ये उस संस्कृति के चरण-चिन्ह हैं जिसका क्षेत्र, जीवन के समान विशाल है। साम्राज्य बदलते रहे, किन्तु पाषाण-लिपि में रचे हुए भारतीय संस्कृति के ये सूत्र अभी तक शेष हैं।

(आमुख संगीत की पुनरावृत्ति)

१०१. **एक-पात्र रूपक**—एक-पात्र रूपक की चर्चा पहले भी की जा चुकी है।

स्वगत भाषण को नाट्य के क्षेत्र में से प्राय बहिष्कृत कर दिया गया था। रेडियो ने उसका पुन स्थापन किया। माईक्रोफोन स्वगत की आत्मा को इस पूर्णता और मार्मिकता से व्यक्त करता है कि इसके आधार पर रेडियो-नाट्यकारो ने पूरे कार्यक्रमों की कल्पना की है। यह प्रयोग काफी हद तक सफल रहा है। उदयशकर भट्ट के रूपक 'एकला चलो' विष्णु प्रभाकर के एक-पात्र नाटक 'धूम्र' और 'सडक' का अध्ययन इस बात की पुष्टि करेगा। प्रस्तुत उदाहरण 'स्मृतिपट' इसी प्रकार का रूपक है। लेकिन इसमें एक और विशेषता भी है। मुक्त-स्मृति-सवेदना Free association के अतिरिक्त इसमें सज्ञा-प्रवाह-पद्धति 'Stream of consciousness' का प्रयोग किया गया है। इस तरह श्रोता नाटक को तीन कालो में घटित देखता है। 'स्मृति-पट' की प्रेरणा का सकेत रूपक में दी गई कविता 'Elegia a morte Gandhi Cecilia Merrieles' की पक्तियो से मिला।

स्मृति-पट

(पृष्ठ-सगीत पिछले प्रहर का कोई शान्त प्रकृति का राग, जो बहुत ही धीमे स्वरो मे बजाया जाये फिर सम्पूर्ण शान्ति)

मित्तल —दिशाएँ चुप है चारो ओर अँधेरा है, हल्का और शीतल अँधेरा, ऊपर नीला आकाश है जो अधखुली नजरो से नीद में खोई प्रकृति को निहार रहा है। नीचे अन्धकार में लिपटी हुई मधुर स्वप्न की तरह कोमल घास पर ओस की बूँदें मेरे पाँव का स्पर्श कर रही है। मै अकेला हूँ और मेरे कदम अनायास उस पावन स्थान राजघाट की ओर बढते जा रहे है।

(काष्ठ तरग की स्वर-लहरी सगीत)

उसे मार डाला जब वह लोगों को आशीर्वाद दे रहा था।

(आवृत्ति)

रात के समय मैने ये करुण पुकार सुनी।
जैसे ये किसी पक्षी की चीत्कार हो।
और जागकर मै एक स्थान ढूँढने लगी।
एक सुदूर और बोधहीन स्थान !
तो क्या ये तुम ही थे जिसने धीरे मे सिसकी ली ?
जब अन्तिम रक्त-धार निकल रही थी ?
कही दूर तुम्हारी ही हड्डियाँ थी ?

इन्सान अभी वहशी है भद्र महिला !

इन्सान अभी वहशी है भद्र महिला !

(सगीत)

उसे मार डाला । जब वह लोगो को आशीर्वाद दे रहा था ।

(सगीत आरोह की लहरी)

ये शब्द मेरी पूर्ण लेखनी का विषाद बन गये हे । हृदय में कैसा तीव्र मन्थन हो रहा है ?

हमने उसे क्यो मारा, क्यो ?

यह आदमी क्या चाहता था ?

यह आदमी ससार में क्यो आया ?

उसने कहा था—"मै माटी के प्याले से बढकर नही हूँ ।"

जब उसे मेरी आवश्यकता नही रहेगी वह मुझे गिरा देगा ।

(फेड इन सगीत)

भगवान् ने तुम्हे गिरा दिया अचानक अचानक···

अभी तो एक घूँट रक्त भीतर ही रहता था ।

तुम्हारा हृदय अभी शुष्क नही हुआ था ।

ओ वीरता की छाया-मूर्ति !

साँझ की हवा आती है । जाती है, भारत और ब्राजील के बीच, और यह थकती नही ।

सब से ऊपर अहिंसा है । मेरे भाइयो ·

पर सभी की जेबो में तो धूआँ छोडते पिस्तौल है ।

वस्तुत एक तुम ही थे, पिस्तौल-विहीन, जेब-विहीन और असत्य-विहीन ।

एकदम बे हथियार, न बीते हुए कल की परवाह, न आने वाले कल की चिन्ता ·

(काष्ठ तरग सगीत-लहरी उभरती है)

मै यहाँ प्रायश्चित करने आता हूँ, क्योकि मै समझता हूँ कि वह मरा ही एक भाई था जिसने उस आलोक को हम से छीन लिया । जो·तूफानी समुद्र में आशा ज्योति के समान था · तारो की छाँह में मै यहाँ आता हूँ और अपने आँसुओ के फूल बापू की समाधि पर चढाकर लौट जाता हूँ । ·मेरी तपस्या मेरे प्रायश्चित का अर्थ कोई क्या समझे ? बापू कहता था कि सत्य ही जीवन है, प्राण है । सत्य परमात्मा है और परमात्मा सत्य, इसलिए सत्य को खोजो, सुमिरण से चिन्तन से, सत्य तुम्हारे भीतर है, इसलिए अपने भीतर झाँको ! ईश्वर प्रेम मे बसता है, इसलिए प्राणि

मात्र से प्रेम करो। शत्रु से भी प्रेम करो। पतित को उबारना ही धर्म है, इसलिए जो गिर पड़ा हो उसे उठाओ और घावों पर प्रेम और हमदर्दी का मरहम रखो, उसकी सहायता करो उसके जीवन का सहारा बनो।

मैं अपने भीतर देख रहा हूँ लेकिन अभी तक वहाँ प्रकाश की कोई रेखा नहीं। वहाँ अँधेरा छाया हुआ है जैसा इस समय नींद में खोई प्रकृति पर छा रहा है। अन्दर और बाहर अँधेरा है। वह कहता था मन की वाणी सुनो लेकिन लेकिन मेरे मन से कोई आवाज नहीं आती, वहाँ नीरवता है खामोशी है।

(संगीत)

सत्य-पथ पर काँटे बिछे हैं और वह बहुत ही कष्टपूर्ण है, लेकिन सत्य पथ ही सच्चा पथ है। सत्य की आराधना ही सच्चा योग है। सत्य-आचरण ही आदर्श जीवन है, इसलिए बलिदान-पथ पर चलो। पर क्या मैं सत्य-पथ पर चलता रहा हूँ? क्या मेरे पाँव सत्य-पथ पर बिछे काँटों से घायल नहीं हुए हैं। नहीं नहीं मेरे कदम घायल नहीं हुए लेकिन मेरा मानस घायल हुआ है क्योंकि मैंने कर्तव्य से आँख चुराई और सत्य-पथ पर नहीं चला, मैंने नीति को नैतिकता से अधिक महत्त्व-पूर्ण, अधिक सफल समझा। मेरे पास धन-दौलत है, मान-सम्मान है, समृद्धि और उन्नति के सभी साधन हैं। क्या यह धन-दौलत सच्चे जीवन के लिए बाधा नहीं है? क्या यह मान-सम्मान झूठा नहीं, क्या मेरी समृद्धि मिथ्या नहीं है? पर जीवन तो अनवरत है, उसकी धारा कभी अवरुद्ध नहीं होती। जीवन में अवसरों की कमी नहीं। बापू ने कहा न था, तुम जब भी राम-नाम का सुमिरण करोगे तुम्हारा जीवन शुद्ध हो जायेगा। वह कहता था जिस तरह गायन विद्याविशारद सुर मिलाने के लिए तार कसता रहता है और फिर उसे अकस्मात् योगद्द स्वर मिल जाता है उसी तरह हम भी भावपूर्ण हृदय से राम-नाम का उच्चारण करते रहें तो किसी-न-किसी वक्त अकस्मात् ही हृदय के छिपे हुए तार एक तान हो जायेंगे। पर मैं सोचता हूँ वह समय मेरे जीवन में भी आयेगा। शायद आ जाये, शायद न आये। लेकिन मैं निराश नहीं हूँ। मेरे भाई, बापू कहता है तुम परिश्रम करो, फल की चिन्ता वह करेगा। सो मैं परिश्रम कर रहा हूँ सत्य-पथ पर चलने का

(संगीत)

डा०—है! यह मेरे स्मृति-पट पर किसका चित्र उदित हुआ? कौन है यह? नहीं, मैंने इसे कहीं कभी नहीं देखा किन्तु ऐसे ही दीन, अनाथ, भूख और रोग से पीड़ित व्यक्ति जिनका समाज में कोई स्थान नहीं, मैंने अनेकों देखे हैं।

(संगीत)

मैंने गांधी को नहीं देखा? मैं उसे कभी न देख सका, लेकिन मैं उसे जानता हूँ।

ठा०—तुमने उसे देखा नही फिर उसे कैसे जानते हो ?

हमारे शरीर में प्राण है उन्हें कौन देख सकता है, कौन छू सकता है ? पर क्या हम कह सकते है कि हम प्राणो का अस्तित्व नही मानते, मै उसे जानता हूँ उसका अनुभव हर सांस में करता हूँ।

उसने कहा था ओह ! मै कितना अभागा हूँ कि मैं उसे कभी न देख सका। जिसने मेरे जीवन की काया-पलट कर दी, जिसने पवित्र मन्दिरो के दरवाजे खुलवा दिये। हम सुना करते थे एक गाधी है जिसने छूत-छात को मिटाने का निश्चय कर लिया है, मैंने एक दिन अपने ठाकुर से भी कह दिया था, ठाकुर जी अब जमाना बदल रहा है, गाधी हमें अछूत नही रहने देगा, हम भी तुम्हारे कूओ मे पानी भरेंगे, तुम्हारे मन्दिरो में भगवान् की पूजा करेंगे। मुझे अच्छी तरह याद है वह हँस दिया था, बहुत देर तक हँसता रहा था। पर मुझे यह भी याद है कि वही ठाकुर मुझ से गले मिला था, हमारे चौके में जीमा था और हमें साथ हवेली में खाना खिलाया था। हमें खुद अपने मन्दिर में ले गया था।

एक दिन मैंने सुना था गाधी की गाडी हमारे गाँव के पास वाले कस्बे से गुजर रही है। सुबह सवेरे उठकर मैंने काम खत्म किया। नहा-धोकर उजले कपडे पहने और सांझ पडते ही पन्द्रह कोस का सफर काटकर कस्बे के स्टेशन पर जा पहुँचा। वहाँ सैंकडो लोग इकट्ठे थे, मुझे किसी ने आगे न बढने दिया। कहा, अगर बापू तुम्हें इतना प्यारा था तो पहले आये होते। हमें देखो हम सुबह-सवेरे से आकर बैठे हैं। रेल आई, सबने जोर से पुकारा, 'गाधी बाबा की जय हो ! 'सेवाग्राम के सन्त की जय !' रेल कुछ क्षणो के लिए रुकी। जो आगे थे उन्होंने बापू के दर्शन किये लेकिन मै·· ·

धुएँ के बादल उडाती रेल मेरी आँखो से ओझल हो गई। एक-एक करके सभी अपने-अपने घर को चल दिये, लेकिन मैं वही खडा रहा प्लेटफार्म के बाहर बबल के पेड से लगा हुआ। कभी मन को भ्रान्ति होती तुम्हें अपनी आँखो ने धोखा दिया है, तुमने बापू को देखा है। वह मुस्करा रहा था उसकी प्यार-भरी आँखें तुम्हे देख रही थी लेकिन फिर मन कहता, नही तुमने बापू को नही देखा। अगर तुम्हे बापू प्यारा होता·· (सिसकी) · मेरी आंखो में आंसू थे और मन भरा हुआ है। बहुत देर तक मैं वही खडा रहा। रात पड गई और तारे निकल आये। फिर न जाने कब मेरे कदम अपने आप उठे, रास्ते में मुझे एक बुढिया मिली जो राम-नाम जप रही थी, हँस रही थी, इतनी खुश थी कि ·ओह ! मैंने इतना खुश चेहरा कभी नही देखा। माँ क्या बात है, तुम बहुत खुश हो ?

बोली खुश क्यो न होऊँ मैंने अब बापू को जो देखा है।

तुमने बापू को देखा है। एक कदम तो तुम चल नही सकती।

पगले! अगर बापू को देखने के लिए हमें कही जाना पडे तो हमारा बापू कैसा हुआ, वह हमेशा मेरे पास रहता है। अब भी है। तुमने उसके दर्शन कैसे किये ? जब लोग हँसते, मुस्कराते राम-नाम जपते और बापू की जय पुकारते अपने-अपने घर जा रहे थे तो मै बापू के दर्शन कर रही थी। चमकते-दमकते चेहरों में, आशा-भरी आँखो में, उत्साह भरे कदमो में

(सगीत)

और मैं भी कहता हूँ कि मैने गाधी को इन आँखो से नही देखा, लेकिन मेरे मन की आँखो से वह कभी ओझल नही हुआ। वह मेरे मन में बसता है। जैसे शरीर में प्राण बसते हैं। हम लोगो की दशा देखकर उस भगवद्भक्त का हृदय चीत्कार कर उठा था।

उसने कहा था यदि ईश्वर ऊँच-नीच और छुआछूत को मानता है तो मै उसे ईश्वर नही मान सकता।

(सगीत)

गाधी देवता है न इन्सान! वह तो एक शक्ति है। विश्व की आत्मा है जो न कभी मरी है और न मरेगी।

(सगीत)

हाँ, याद आया, वह विचारक भी एक अजीब आदमी था। गाधी की मृत्यु ने सारे राष्ट्र को शोकातुर कर दिया था।

रोते क्यो हो ? मैं इसलिए रोता हूँ कि बापू ही गरीब की सुनता था, उसका दिल गरीब के साथ रोता था, अब वह हमसे छिन गया है। हम अब अकेले और असहाय रह जायेंगे। हमारे दुखो को, हमारी पीडा को कौन जानेगा, समझेगा।

यह ठीक है, पर कौन कहता है कि गाधी मर गया है ? विचार भी मर सकते है भला ? आत्मा कब नष्ट हुई है ?

डा०—मै उससे देर तक बहस करता रहा था और वह बार-बार यही कहता था

मै गाधी को शक्ति के रूप में स्वीकार करता हूँ। सत्य-प्रेरणा के रूप में जभी उसने हड्डी पिंजर-मात्र किसानो, मजदूरो को एक शक्तिशाली साम्राज्य की सत्ता से टकरा दिया। सैकडो वर्षो की गुलामी की नीद में खोये गरीब के बोझ के नीचे पिसने वाले चालीस करोड भूखे और दुर्बल इन्सानो के दिलो में आग भर दी, उन्हें तोप-बन्दूक के सामने खडे होकर मुस्कराने का साहस दिया। यह इन्सान का काम नही हो सकता और देवताओ को मै मानता नहीं। क्योकि समझता हूँ जिन्दगी

उद्देश्य भी है और उद्देश्य को पाने का साधन भी है।

तुमने देखा नही था जब लाठियां चलती थी, बन्दूकें आग बल्कि मौत बरसाती थी तो लोग छाती ताने अपने राष्ट्रीय झण्डे की आन के लिए आगे बढते चले जाते थे। गोलियो का जवाब था 'महात्मा गाधी की जय ! भारत माता की जय ! वन्दे-मातरम् !' यह किस शक्ति का प्रताप था ? एक वक्त था जब लोग इस साहस को पागलपन कहते थे, उसकी हँसी उडाते थे। लेकिन तुमने देखा दुर्बल हड्डियो के पिंजर मात्र निहत्थे किसान, मजदूरो ने ही देश को आजाद कराया।

(सगीत)

ठा०—हां, मुझे याद है एक वक्त था जब मै खुद यही सोचा करता था, बिना रक्त-पात के क्रान्ति नामुमकिन है। जब तक हिन्दुस्तानी हथियार नही उठायेगा, मुल्क को आजाद नही करा सकता। गाधी कहता है कि मै देश को अहिंसा से आजाद कराऊँगा। हूँ. अहिंसा से, भावुकता, कोरा आदर्शवाद, इतिहास में कभी ऐसा हुआ है जो अब होगा। किन्तु मानव-इतिहास में एक नया अध्याय लिखा गया, एक नये क्रान्तिकारी सिद्धान्त ने जन्म लिया, दुनिया दांतो-तले उँगली दाबकर रह गई। इस सिद्धान्त के पीछे अहिंसा का बल था, जो डरपोक का शस्त्र नही, बल्कि वीरो का धर्म था और सत्य का जो ईश्वर है और न्याय का जिसके बिना मानव-समाज कभी सुखी नही हो सकता।

(संगीत)

तुम भारतीय हो ?

हां।

तुमने गाधी को देखा है ?

हां।

उसे बातें करते सुना है ?

हां।

उससे बातें भी की हैं ?

हां।

तुमने उसके शरीर का स्पर्श भी किया है ?

हां।

मुझे भी अपने शरीर का स्पर्श कर लेने दो।

क्यो नहीं ?

किन्तु नही ! तुम्हारे शरीर ने गाधी का स्पर्श भी किया है, वह पवित्र हो गया है। मै अपने स्पर्श से उसे अपवित्र नही करना चाहता। वह देवता था। जग

की आग में झुलसी हुई दुनिया आज उसकी शान्ति और प्रेम का सन्देश सुनने को आतुर है। उसने हिटलर से कहा था जग किसी के लिए लाभकर नहीं हुई। इससे दुनिया के मिट जाने का डर है। आज हम गाधी की बात की सच्चाई परख रहे हैं। दुर्बल मन सोचता है यह अपना है, वह पराया है। यह अच्छा है, वह बुरा है। यह प्रिय है, वह प्रिय नही। लेकिन शुद्ध और आत्मबल वाला मन सोचता है कोई पराया नही है सभी अपने हैं। गाधी एक देश का नही सारे ससार का था। यही कारण था कि जब उसकी मृत्यु की खबर सुनी तो शायद ही कोई आँख होगी जो गीली न हुई थी। शायद ही कोई दिल होगा जो उदास न हुआ था। उस एक दु खद घडी में भौगोलिक सीमाएँ और जातियो के बन्धन दूर हो गये थे और सारी दुनिया एक हो गई थी। दूर देशो में रहने वाले कैसे बिलख-बिलखकर रोये थे।

और हाँ, कैसा बिलखकर रोया था वह सरहद-पार का पठान जो महीनो बाद एक समाधि के सामने बैठकर रोता जाता था और यह दुआ पढता जाता था—

"या अल्लाह, गाधी मलग की रूह को अम्न बख्श, वह तेरा सच्चा खादिम था, वह तेरा एक वली था, क्योकि उसने हम सब को आदमजाद को सीधा रास्ता दिखलाया। हम लोग तेरे नाम पर लडते-झगडते हैं, उसने हमको बतलाया ईश्वर-अल्लाह एक है और हम सब उसके बच्चे हैं। या अल्लाह ! हमको अब अक्ल बख्श ताकि हम गाधी का सबक कभी न भूलें। ईश्वर-अल्लाह तेरे नाम।"

कितना पवित्र था उसका हृदय। और कितना दृढ था उसका विश्वास। मेरा विश्वास भी कभी उतना ही दृढ होगा। और मै कह सकूँगा इन्सान वहशी नही है, भद्र महिला !

इस काली रात में कौन है जो उस आलोक को नही खोजता। इस तूफानी रात को कौन ह जो शान्ति और परस्पर प्रेम के लिए व्याकुल नही है ? हे ज्योति-पुज ! मै कब तक अन्धकार में भटकता रहूँगा, मेरे कानो में कब तक पिस्तौल की गोलियो का शोर गूजता रहेगा।

(सगीत की एकाध सरगम)

रात ढल चुकी है, और सितारे एक-एक करके ओझल होते जा रहे है। अभी दिन निकल आएगा और इस पावन-समाधि पर यात्रियो का ताँता बँध जाएगा। यह शान्त और मौन स्थान अनेक स्वरो से गूंज उठेगा जैसे निशा के आते ही आकाश अनेक तारो-नक्षत्रो से खिल उठता है। मगर मेरे हृदय में खामोशी होगी, निराशा होगी, नीरवता होगी और होगी अशान्ति। मेरे आंसू भी मुझे छोड गए है। किन्तु मैं सुमिरण और चिन्तन करता रहूँगा। जब तक गाधी का स्वप्न सच्चा न हो जाए। वर्ग-हीन समाज और प्रेम के सूत्र में बँधी एक दुनिया का और मै कह सकूँ, भद्र

महिला देख इन्सान वहशी नही है ।

(सगीत)

१०२. रेडियो-रिपोर्ताज—कुछ समय हुआ रिपोर्ताज भी रेडियो से प्रसारित होने लगे है । विष्णु प्रभाकर का 'सोन के किनारे', नरेश मेहता का 'हड्डियो के पिरामिड', प्रभाकर माचवे का 'चित्रकूट' और 'क्षमचिल' विशेप रूप से उल्लेखनीय है । विष्णु का रिपोर्ताज कल्पना-प्रधान, नरेश का अतिकल्पना-प्रधान और माचवे का वस्तु-प्रधान है । शैली-भेद के होते हुए भी इन तीनो रचनाओ में एक-सा शिल्प प्रयुक्त हुआ है । रेडियो के लिए लिखे गये रिपोर्ताज में इस बात का खास ख्याल रखा जाता है कि कोई शब्द ऐसा न हो जिसका पूरा अर्थ उच्चारण-मात्र से व्यक्त न होता हो । विचारो का विकास छोटे-छोटे क्रमो के रूप में किया जाता है ताकि श्रोता के समझने में आसानी हो । इसके अतिरिक्त यथासम्भव प्रेक्षित वस्तु को वर्णन की अपेक्षा नाटकीय रूप में प्रस्तुत किया जाता है, क्योंकि रेडियो-रिपोर्ताज के प्रस्तुतीकरण में एक से अधिक वाणियां भी प्रयुक्त हो सकती है, और अनेक ध्वन्यात्मक और सगीतात्मक उपकरणो की सहायता भी ली जा सकती है । इसलिए प्रभाव और रोचकता की दृष्टि से यह रेडियो-रिपोर्ताज साधारण प्रकाशित रिपोर्ताज से अधिक सफल रहता है ।

१०३. हास्यरूपक—हास्यरूपक रेडियो-रूपक का सब से अधिक लोकप्रिय प्रकार है । किन्तु सब से अधिक और अविकसित । लोक-प्रियता का कारण खोजने की आवश्यकता नही । स्पष्ट है कि गम्भीर की अपेक्षा मनोरजक 'लाइट' को साधारण श्रोता अधिक पसन्द करेगा । पर इस प्रकार के अविकसित रहने के कारणो पर विचार करना आवश्यक है ।

इसका एक साधारण और स्पष्ट कारण तो हमारे साहित्य में हास्य का अभाव है । जनपदीय हास्य-परम्परा साहित्य-परम्परा से आत्मसात नही हो पाई । शिक्षा की असमता के कारण विभिन्न वर्गों में हास्य के प्रति रुचि मे भी अन्तर है । माइक्रोफोन द्वारा प्रसारित हास्य को विशाल जन समूह की रुचि-विभिन्नताओ का ध्यान रखना होता है । नाटक या भाषण के विषय में यह पहले से ही कहा जा सकता है कि अमुक रचना किस वर्ग को प्रभावित करेगी । लेकिन हास्य के विषय में अनुमान सुगम नही । फिर भी यह देखा गया है कि ग्रामीणो के खुले मजाक एक शिक्षित परिष्कृत रुचि के श्रोता को फूहडपन लगते है । इसी तरह शहरी मजाक, जिनकी अपील अकसर बुद्धि के लिए होती है, अशिक्षित और अल्पशिक्षित श्रोताओ को नही हँसा सकते । इस कारण रेडियो-हास्य का क्षेत्र बहुत ही सीमित है । वस्तु के प्रश्न के अतिरिक्त वातावरण का प्रश्न भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । सामान्यत. हास्य की अपील

मनुष्य की समूहवृत्ति की ओर लक्षित होती है। बर्गसा ने अपनी विश्वविख्यात पुस्तक L. Rire में इस विषय की सविस्तार चर्चा की है। बहुत-सी दिलचस्प बातों में से एक बात यह है कि 'ह्यूमर' की सफलता के लिए एक विशेष प्रकार का मुक्त और स्वच्छन्द वातावरण अनिवार्य है जिसमें सब मिलकर भाग ले रहे हो। एक प्रहसन जो रगमच पर प्रेक्षकों के पेट में बल डाल सकता है, एकान्त में बैठकर सुनने वाले के लिए प्राय. निष्प्रभाव होता है। जो परिहास खाने की मेज पर या किसी पार्टी में हमें 'ब्रिल्लियेन्ट' लगता है घर के शान्त और उत्तेजनार-हित वातावरण में बिल्कुल शुष्क और नीरस प्रतीत होता है। ब्रॉडकास्टिंग एक सामूहिक activity नहीं है। "The mike speaks to ones or twos, or threes, seldom to Companies" (Hilda Mathieson)

अतः इन दो बातों के होते हुए रेडियो-हास्य लिखने वाले के लिए दो प्रश्न आते हैं। एक, श्रोताओं की हास्य-प्रेरणा के एक नये प्रकार का विकास, दो, एक ऐसे सामूहिक वातावरण की सृष्टि जिसका क्षेत्र सीमित किन्तु प्रभाव व्यापक हो। पहले का सम्बन्ध प्रधानत लेखन से है, दूसरे का प्रस्तुतीकरण से। रेडियो के लिए हास्य लिखने वाला प्रयत्न करता है कि उसकी हास्य-रचना न तो इतनी भड़कीली (Loud) हो जो एकान्त में सुनने वाले श्रोता को अखरने लगे, न इतनी सूक्ष्म और स्फूर्ति-रहित कि उसका प्रभाव प्राय न होने के बराबर हो। श्रोता के आकर्षण को केन्द्रित रखने के लिए वह प्राय एक वाक्चपल और तीव्रबुद्धि वाचक या सूत्रधार का उपयोग करता है। इस पात्र का प्रमुख कर्तव्य है हास्य-रूपक के विभिन्न अंगों, विविध रचनाओं को एकसूत्र करना और बात में से बात पैदा करते हुए, एक को दूसरे से सम्बन्धित करते जाना। लेकिन इसके अतिरिक्त वह एक और महत्त्वपूर्ण काम भी करता है। सूत्रधार की हल्की-हल्की नोक-झोंक आदि उस उचित वातावरण की सृष्टि में सहायक होती है जो हास्य की सफलता के लिये अत्यन्त आवश्यक है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए निर्देशक कभी-कभी स्टूडियो श्रोताओं (Studio audiance) की सहायता भी लेते हैं। जैसे एक चुभता हुआ चुलबुला सा वाक्य आया कि वातावरण एक मुक्त अट्टहास से गूंज उठा। अपने कमरे के एकान्त में बैठा श्रोता भी अपने आपको उस श्रोता समूह का एक अंश समझने लगता है और स्वाभाविक रूप से प्रत्येक अट्टहास में अपना स्वर मिला देता है। अत उसे ठीक वही वातावरण उपलब्ध हो जाता है जो उसे एक गपशप मंडली या थियेटर में प्राप्त होता। इसी युक्ति के आधार पर बी. बी सी ने अनेक लोकप्रिय और सफल कार्यक्रमों का विकास किया है। Much binding in the marsh, Variety Bandbox, Itma, take it from here आदि कार्यक्रम रेडियो-हास्य के इतिहास में

महत्त्वपूर्ण प्रयास है।

हमारे यहाँ 'म्यूजिक हाल परम्परा' तो नही है फिर भी हास्य की लोक-परम्परा में कुछ सुन्दर रूप यहा प्रचलित कर रहे हैं। उनका पुनर्आविष्कार रेडियो-हास्य के विकास में महत्त्वपूर्ण योग दे सकता है। उदाहरणार्थ भाड प्रत्येक भारतीय ग्राम का विशेषता है। इसी प्रकार दक्षिण भारतीय 'कथाकार' हैं जिनके कटाक्ष और व्यग्य किसी पाश्चात्य हास्यकार के परिहासो से कम दिलचस्प नही होते। इन ग्राम्य 'Forms' को थोडा बहुत परिष्कृत करने भर की आवश्यकता है।

१०४. रंगारंग प्रोग्राम की संरचना—हास्य-रूपक का साधारण प्रकार छोटी-छोटी हास्यात्मक या व्यग्यात्मक नाटिकाओ का एक सयोजन है। प्रत्येक नाटिका का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व होता है, किन्तु एक ही भाव से सप्राण होने के कारण समूचे कार्यक्रम में एकता आ जाती रही है। इन हास्य-नाटिकाओ में से कुछ घटना-प्रधान (Situational) होती है, और कुछ शाब्दिक (Verbal); अर्थात् कोई-कोई नाटिका एक छोटी-सी हास्यात्मक स्थिति पर आधारित होती है, उसमें कथानक होता है जैसा किसी नाटक में होता है। दूसरी प्रकार की नाटिका में कोई कथानक नही होता 'बातें' होती है, लेकिन ये ऐसी जो अपनी मौलिकता, वैचित्र्य, मनोरजकता के कारण श्रोता को तुरन्त मोहित कर सके। ऐसी रचना के प्रभाव की सफलता वाक्य-चातुर्य, लेखक की तीव्र सूझबूझ, और अभिनेता के वाणी-विन्यासो पर निर्भर रही है।

एक घटना पर आधारित नाटिका या झलको की निर्माण-याजना बहुत सरल है। स्थिति ऐसी चुनी जाती है जो श्रोता के औत्सुक्य और कौतूहल को जाग्रत करे। इस स्थिति का विकास होता है, उस चरमोत्कर्ष बिन्दु तक, जहा यह स्थिति साबुन के बुलबुले की तरह फट जाती है, समस्या का समाधान हो जाता है। उदाहरणार्थ ' स्तुत झलकियाँ इस निर्माण-युक्ति का एक अच्छा उदाहरण है।

इश्तिहार

लेखक—के० ऐन० मल्लिक

पति—क्यों, मानती हो या नही ?

पत्नी—वाकई तारीफ नही हो सकती।

पति—अजी दाद देने का मौका तो तब आएगा जब इश्तिहार पढकर लोग धडाधड खरीदने दौडेंगे।

पत्नी—मुझे तो डर है कि आप इतने खरीदारो की मांग पूरी क्योंकर करेंगे ? कुल पांच ही तो लाए हैं आप !

पति—अजी पाँच तो अपने साथ लाया हूँ। बीस का ऑर्डर जो बुक करके आया हूँ। जहाँ ये बिके, और मैंने ऐक्स्प्रेस तार दिया कि बाकी बीस फौरन भेज दो।

पत्नी—लेकिन पेशगी रुपया लिये बगैर वह लोग भेज भी देंगे ?

पति—यही तो कमाल है। सारी बम्बई में अपनी वह धाक बिठा के आया हूँ कि पचास हजार का माल आँख झपकते में, फकत एक पोस्टकार्ड भेजकर मँगा सकता हूँ। और फिर खुद सेठ मोतीकंठ ने मुझे दिल्ली और पंजाब का सोल एजेंट मुकर्रर करने का वादा किया है। जहाँ दस-बीस हार बिके और सोल एजेन्सी का परवाना आया।

पत्नी—क्यों जी, खूब कारोबार चलता होगा सेठ मोतीकंठ का ?

पति—बस कुछ न पूछो, कंठ ब्रादर्ज की धूम है इस वक्त हिन्दुस्तान में। क्या इन्सान, क्या हैवान, हर एक उनके नाम की माला जपता है। चार भाई हैं—मोतीकंठ, हीराकंठ, लालकंठ और नीलकंठ। दालान के बीचो-बीच गाव तकिया के सहारे सेठ मोतीकंठ बिराजमान - तीन तरफ हीराकंठ, लालकंठ और नीलकंठ जलवा अफ्रोज। चारों तरफ बीसियों मुनीम, कारिन्दे, हरकारे, दरबान, दरजनों टेलीफोन, सैकड़ों बहियाँ-खाते, क्या बताऊँ।

पत्नी—हाँ, यह तो बताया नहीं, मुनाफे की क्या सूरत होगी ?

पति—यह बड़े राज़ की बात है, लेकिन तुम तो खैर अपनी ही बीवी हो ना, तुम से छिपाना कैसा ? सुनो (धीमी आवाज़ में) पान्सौ रुपया कीमत है एक हार की। इसमें दस फीसदी हमारा, बाकी नब्बे फीसदी कम्पनी का।

पत्नी—गोया दो हार बेचने से एकदम सौ रुपये का नफा !

पति—जी हाँ, और इसी हिसाब से पाँच हार बेचने से एकदम ढाई सौ का, और दस हार बेचने में पान्सौ का, और पचास हार बेचने से ढाई हजार का मुनाफा होगा।

पत्नी—(उछलकर)—फिर तो सचमुच हमारा नसीबा जाग उठा !

पति—अजी अभी क्या है, तुम देखती चलो, कैसी-कैसी तरकीबें लड़ाता हूँ। (फिर धीमे स्वर में) एक ऐसी घुण्डी रख दी है इस इश्तिहार में कि एक-एक हार पर पाँच-पाँच, छः-छः सौ का मुनाफा।

पत्नी—(जैसे कलेजा धक से रह गया हो) पान्सौ का ! एक-एक हार पर—यह मैं क्या सुन रही हूँ।

पति—हूँ—लो ज़रा पढ़ो तो इश्तिहार (पत्नी दबी आवाज़ में कुछ पढ़ना शुरू करती है) यों नहीं, ऊँची आवाज़ मे पढ़ो।

पत्नी—तेरह मोतियों का छोटा जेब हार। हर एक मोती नूर का दाना, आँखें चौंधिया जायें। अँधेरे में ले जाकर देखिए तो एक-एक मोती सूरज की किरण-सा नजर आए, फी अदद पान्सौ रुपया।

पति—समझी कुछ ?

पत्नी—साफ तो है।

पति—कीमत के मुताल्लिक क्या समझी ? पान्सौ रुपया किसकी कीमत ?

पत्नी—एक हार की और किसकी।

पति—(एक अट्टहास के पश्चात्) अरे इसी को तो घुण्डी कहते हैं। ज़रा पान्सौ रुपये के पहले का तो फिकरा पढ़ो फिर से।

पत्नी—(पढ़ती है) एक-एक मोती सूरज की किरण नज़र आए। फी अदद पान्सौ रुपया।

पति—सुना सा'ब—एक एक मोती · ···

पत्नी—(लपककर) तो गोया फी अदद से आपकी मुराद फी मोती है, जिसकी कीमत पान्सौ रुपया है ?

पति—यही तो कमाल है! तेरह मोतियों के हार के साढ़े छह हज़ार नकद!

पत्नी—आपके मुँह में घी-शक्कर!

(दरवाजे पर दस्तक होती है)

'पति—(दबी ज़बान से) बोहनी का वक्त आन पहुँचा। ज़रूर कोई खरीदार बैठा होगा। भई देखना बेगम वह गुलदान ज़रा ले जाकर बाहर रख दो। न मालूम कितने दिनों के बासी फूल हैं। लेकिन पहले ज़रा इस तिपाई के लिए मेज़पोश तो ला देना। और हाँ, नन्हे के जूते इस सोफे पर रखे हैं, उनको भी लेती जाना।

(फिर दस्तक)

(घबराहट बढ़ जाती है) और हाँ, वह हार कहाँ रखा है ?—ऐं हार किधर गया—ठीक है मिल गया!—अच्छा तुम जल्दी आ जाना तुम्हारी ज़रूरत होगी। (कुछ ऊँचे स्वर में) कौन है साहब, मैं हाजिर हुआ।

(दरवाज़ा खुलने का शब्द)

आदाब अर्ज़ है, तशरीफ रखिए।

आगन्तुक—आदाब। मैं आपका इश्तिहार पढ़कर हाजिर हुआ हूँ। सुबह-सुबह तकलीफदिही की मुआफी चाहता हूँ।

पति—अजी वाह, तकलीफ तो आपको हुई, जो यहाँ तक चल के आना पड़ा। मुझे इत्तला कर देते, मैं हार लेकर खुद हाज़िर हो जाता।

आगन्तुक—बन्दानवाज़ी है। आपके अखलाक की तारीफ नही की जा सकती।

पति—आओ बेगम बेखटके चली आओ। आप उसी हार के सिलसिले में तशरीफ लाये है। मुआफ फरमाइएगा, इस्मेगिरामी!

आगन्तुक—आदाब बजा लाता हूँ बेगम साहिबा! जो बन्दा मरगूबअली खान कहलाने का गुनहगार है।

पति—खूब! खूब! हाँ तो बेगम, खाँ सा'ब को वह हार तो दिखाओ। इनकी तबीयत खुश हो जायगी।

आगन्तुक—इसमें क्या शक है!

पत्नी—लीजिए, मुलाहिज़ा कीजिए।

आगन्तुक—ठीक, बिल्कुल ठीक। मैं किस ज़बान से आपका शुक्रिया अदा करूँ कि आपने मेरा खोया हुआ हार सही सालिम मुझे लौटा दिया। मैं आपका ऐहसान कभी नही भूल सकता—

पत्नी और पति—जी—

आगन्तुक—यह हार शादी के मौके पर मैने अपनी बेगम को तोहफा दिया था। शुक्र है यह मिल गया। आपकी इनायत से हमारी परेशानी—

पति—लेकिन मरगूब साहब—इस हार के मुतालिक—

आगन्तुक—जी मै और मेरी बेगम

पत्नी—मुआफ फरमाइए, आपको इस मामले में यकीनन ग़लतफहमी हुई है।

आगन्तुक—ग़लतफ़हमी की गुंजाइश हार को देखने और पहचानने के बाद नहीं रही बेगम साहिबा।

पति—लेकिन हजरत, यह हार हमने हरगिज-हरगिज कही पडा हुआ नही पाया, बल्कि इसकी कीमत देकर खरीदा है, और अब फिरोख्त का इरादा है।

आगन्तुक—जी क्या फरमाया फिरोख्त का इरादा है! गोया कि आप इस की क़ीमत चाहते है। आप ऐसे माकूल इन्सान ऐसे जजबाती मामलों में तजारती खयालात को दखल देते है।

पति—अजी सा'ब, मै दुरुस्त अर्ज कर रहा हूँ। मैने इश्तिहार इस गरज से दिया था कि इसे बेच सकूँ—आप मेरे मनसूबो पर पानी फेरना चाहते है।

आगन्तुक—लेकिन यह क्या तमाशा है। इश्तिहार देते वक्त अखबार वालो को यह हिदायत तो दे दी जाए कि इश्तिहार को सही कालम में छापा जाए।

पत्नी—जी क्या मतलब?

आगन्तुक—जी आपका इश्तिहार इस कालम में छपा है—'Lost and

Found' यानी खोई और पाई हुई चीजो के बारे में···· ··

पति—(हक्का-बक्का रह जाता है) तो क्यो, मेरा इश्तिहार ?

आगन्तुक—हाथ-कगन को आरसी क्या है—लीजिए पढ लीजिए—खैर सा'ब तो इजाजत दीजिए ताकि बन्दा अपनी बेगम के आँसू पोछे। आदाब अर्ज है।

(प्रस्थान)

पत्नी—(कुछ अवकाश के पश्चात्) तो गोया यह भी आपके इश्तिहार की एक घुण्डी थी!

(संगीत)

घर

लें०—आवारा

हकीम—यूँ ही, तो हमने सोचा कि बस···समझ गये ?

चुन्नन—बहुत ठीक सोचे, बडी हकीमायित की बात है।

हकीम—हाँ, यह सोचे कि बस बना ही डालें···अभी भई चुन्नन बैठे है।

चुन्नन—आज तो हकीम जल्दी थक गये।

हकीम—दिन है मियाँ थकने के। आधी सदी दुनिया देखी अब भी न थकोगे।

चुन्नन—आप साठ की लपेट में आ गये सो नही कहते।

हकीम—सच कहते हो चुन्नन, जभी तो सोचे कि बस बना ही डालें घर, और बीमार वही आया करें।

चुन्नन—वाह हकीम जी, यह भी दूर की कौडी लाए!

हकीम—वही तो हमने सोचा कि लाओ भई चुन्नन से पूछ लें, वह क्या कहते है ?

चुन्नन—कहेंगे क्या, ठीक ही कहेंगे।

हकीम—तो है राय ?

चुन्नन—पक्की!

हकीम—सोची-समझी!

चुन्नन—सौ फीसदी!!

हकीम—फिर न कहना हकीम जी कहाँ ईंट-चूने में रुपया झोक दिया।

चुन्नन—यह उल्टी गगा मै बहाऊँगा, ऐसी बेतुकी मैं हाँकूँगा ?

हकीम—हाँ! फिर यह कहने को न हो कि उम्र भर यार रहे। मरने को बैठे तो जगल में जा मरे।

चुन्नन—हकीम जी, मर के देख लो, चुन्नन जो तुम्हें मरने दे ।

हकीम—बस तो हो गई । जरा अपनी छडी तो देना [जमीन पर छडी से लकीरें बनाते हुए] तो देखो भई, सोचा यह है कि जैसे यह रहा जमीन का टुकडा। है न ? पूरब में बुद्धसेन की आराजी

चुन्नन—चलिए, जानी-बूझी है, जिस पर आजकल सरसो लहलहा रही है ।

हकीम—और भई यह दक्खिन-रुख पटवा ताल भरता है ।

चुन्नन—हकीम जी जाडो भर मुरगाबी का शिकार है, पर देखना चुन्नन को न भूलना !

हकीम—यह भी कोई बात है, और यह पच्छिम में ढाक का जगल है ।

चुन्नन—ईंधन ही ईंधन !

हकीम—और यह उत्तर में कई बीघे खाली जमीन है, जिस पर

चुन्नन—हाँ हाँ, इस पर अभी कुछ न बनाना ।

हकीम—चलिए नहीं बनाया । अब देखो यह तो हो गई चारदीवारी ।

चुन्नन—हो गई । और यह पूरब रुख सद्र दरवाजा । आगे चलिये ।

हकीम—आ जाओ भीतर । तो यह हुआ चबूतरे के आगे दालान दर दालान, अगल-बगल कमरे ।

चुन्नन—ठीक बन रहा है । चले चलो । गरमी-जाडे दोनो का इन्तजाम हो गया ।

हकीम—बरसात-बरसात छत पर खपरैल मे रहा करेंगे ।

चुन्नन—हाँ हाँ सा'ब, मच्छर पिस्सू से बचोगे हल्की-हल्की पछवा होगी, छमछम बूंदियाँ और दूदूर के कौदें । हकीम जी घर नही जन्नत बना रहे हो ।

हकीम—अभी देखे जाओ । चबूतरे से उतरे हो, लो यह रहा बावर्चीखाना, और उससे मिली हुई यह नाज-पानी की कोठरी, और यह रही ईंधन-लकडी की बुखारी । और देखो भई चुन्नन यह सद्र दरवाजे से मिला हुआ मरदाना । आप भी उठें-बैठें, बीमार भी यही आए, मेहमान भी ठहर गये । जब चाहा पिछैत के किवाड मोड दिए, मरदाने का जनाना हो गया । क्यो भई क्या कहते हो ?

चुन्नन—कहता क्या हूँ हकीम जी ! अब तो हमने भी चलते-चलाते घर बना डाला । तुम्हारे उत्तर-रुख की खाली इराजो का कल ही ब्याना दिया, परसो रजिस्ट्री करवाई, और दूसरे दिन नीवें खुदने लगी ।

हकीम—क्या कह रहे हो चुन्नन ? होश में हो !

चुन्नन—कोई तुम से घट के हूँ, यह घर तो बना ।

हकीम—यूँ नही चुन्नन ! लो यह छडी घर की दाग बेल डाल चलो । यह

हमारी उत्तरी दीवार तुम्हे खूब मिली।

चुन्नन—देखो अभी डौल डालता हूँ [छडी से लकीरें खीचता है] देखो, यह आसपास के कमरे। बीच में तीन दर का दालान और हमारे है ही कौन ? बेटा है, उसकी बहू है, बच्चे-कच्चे अभी है नही। बहुत है। आँगन बडा रखूंगा। फ़सल-फसल की सब्जी-तरकारी, एक आध निब्बू का बिरवा। दस-पांच फूल के दरख्त। और हकीम जी जो तुम भूले वह इस घर में, यह देखो पक्की कुइयां !

हकीम—[हँसकर] उल्लू ही समझा तुमने हमको ! अरे कुइयां कैसी चुन्नन भय्या, यह मेरे नक्शे में है, इक्कीस हाथ पानी का तली तोड कुआं।

चुन्नन—हां साहब है, हम हारे। बस तो अब हमारे नक्शे पर आ जाओ। गरमी-बरसात लडका रहेगा कोठे पर, मैं चबूतरे पर बरसाती डाल लूंगा।

हकीम—वह किस रुख बनेगी ? पानी किधर जाएगा ?

चुन्नन—अजी उधर को।

हकीम—यानी मेरी छत पर, तुम्हारे परनाले गिरेंगे ?

चुन्नन—और क्या चारा है ?

हकीम—चुन्नन, यह तो न होगा।

चुन्नन—और कही गेर नही सकते।

हकीम—गेरें न गेरें, अपनी बला से। मेरी छत पर नही गेर सकते, कानून खुला हुआ है।

चुन्नन—कानून कानून अपने घर में बघारो हकीम जी, चुन्नन के परनाले तो उत्तर ही गिरेंगे।

हकीम—मैं नालिश ठोक दूंगा, तामीर रुकवा दूंगा, अदालत को मौके पर लाकर खडा कर दूंगा।

चुन्नन—हकीम जी ठीक है सब। पर यह सब बाद की बात है। पहले यह घर बनेगा, इसमें बरसाती बनेगी, और बरसाती के परनाले उत्तर वाली छत ही पर गिरेंगे। कर लो क्या करते हो ?

हकीम—मैं तुम्हे कैद करा सकता हूँ। मैं तुम्हे जमीन ही नही लेने दूंगा, शुफा करूंगा, अब बोलो ?

चुन्नन—करो। हार जाऊंगा। अपील लडूंगा। वहां भी हारा, सद्रबोरड जाऊंगा, कमिश्नरी, लिफ्टन्टी तक पीछा करूंगा। परनाले तो हकीम जी वही गिरेंगे, जहां चुन्नन के मुंह से निकला है।

हकीम—चुन्नन ने कहा तो झक मारो।

चुन्नन—देखना हकीम जी, जामे में रहते हुए ··

हकीम—नही तो क्या करोगे ?

चुन्नन—बना बनाया घर बिगाड़ दूँगा।

हकीम—वही तो पूछता हूँ कैसे ?

चुन्नन—[पांव से हकीम का नक्शा रगड़ते हुए] ऐसे ! यह लो अपना घर। और जब यह मिटा तो फिर अपना भी कैसा घर !

हकीम—अर रे ! यह क्या किया ?

चुन्नन—किस जुगत मे थे हकीम जी, यह जमीन तो मुनसिपल्टी की है !!

[सगीत]

सोसाइटी आफ़ विमन हेटर्ज़

ले०—श्यामलाल सीम

युवक—(दूर से) क्या अन्दर आ सकता हूँ ?

प्रेजीडैन्ट—(चौककर) ऐं हां हां अवश्य अवश्य।

युवक—धन्यवाद। क्या आप ही सोसाइटी आफ विमन हेटर्ज के प्रेजीडैन्ट है ?

प्रेजीडैन्ट—जी हां, जी हां, विराजिए। कहिये आपकी क्या सेवा करूँ ?

युवक—धन्यवाद मै आपकी सोसाइटी का सदस्य बनना चाहता हूँ।

प्रेजीडैन्ट—अवश्य, अवश्य, लेकिन क्या आप जानते है कि हमारी शर्ते बहुत कड़ी है ?

युवक—मै उन्हे जानना चाहता हूँ।

प्रेजीडैन्ट—जरूर, जरूर, यह तो हमारी सोसाइटी के नाम ही से प्रकट है कि हमें स्त्रियो से सख्त नफरत है उनकी सूरत तो क्या नाम तक से घृणा है।

युवक—बहुत अच्छी बात है।

प्रेजीडैन्ट—क्या अपनी जिन्दगी में आपने किसी स्त्री से प्रेम किया है ?

युवक—(कुछ झिझककर) जी ? जी नही'' बचपन में मुझे अपनी आया से अवश्य प्रेम था परन्तु वह—

प्रेजीडैन्ट – (टोककर) उसे छोड़िये। मेरा मतलब उस प्रेम से है जो प्राय' एक पुरुष को एक स्त्री के साथ हुआ करता है।

युवक—जी अभी तक तो ऐसा अवसर प्राप्त नही हुआ।

प्रेजीडैन्ट—खैर, हमारा सदस्य बन जाने के पश्चात् तो बिल्कुल ही न होगा। जी, हमारी सब से बड़ी शर्त यही है कि आप उम्र भर किसी स्त्री से प्यार नही करेंगे।

युवक –उसका कोई विशेष लाभ ?

प्रेजीडेंन्ट—लाभ ? यदि कोई लाभ न हो तो हमारी सस्था का सदस्य वनने से क्या लाभ ? हमारे प्रत्येक सदस्य का यह विश्वास है कि पुरुष की हर मुसीवत की जिम्मेदार स्त्री है। यदि स्त्री न होती तो न हम पैदा होते, और न ही पुरुष ससार के दु खो में फँसते।

युवक—(हँसकर) वात तो आपने ठीक ही कही।

ेजीडेंन्ट—आगे सुनिये ' हमारी सोसाइटी का उद्देश्य यह है कि न कोई पुरुष किसी स्त्री से प्रेम करे और न व्याह ही, ताकि वह स्वय भी स्त्री जाति की मुसीवतो से वच सके और किसी को मुसीवतो में फँसने का निमन्त्रण भी न दे। इस सम्वन्ध में आपको प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करने होगे कि आप उम्र भर शादी तो क्या किसी स्त्री की ओर नजर उठाकर भी न देखेंगे।

युवक—उसका कोई विशेष लाभ

प्रेजीडेन्ट—(झुँझलाकर) फिर वही विशेप लाभ ? क्या आप जानते है कि हजरते आदम को वहिश्त से क्यो निकाला गया था ?

युवक—क्योकि उन्होने हव्वा के कहने पर खुदा की आज्ञा के विरुद्ध

प्रेजीडेंन्ट—(कुछ तेज होकर) क्या आप जानते है कि ऐंटोनी की मृत्यु का कारण कौन था ?

युवक—किलोपत्रा।

प्रेजीडेंन्ट—(और तेज) क्या आप जानते है कि शाह ऐडवर्ड को इग्लिस्तान के राज्य से वचित क्यो होना पडा ?

युवक—क्योकि उन्हे एक स्त्री से प्यार था जिसे

प्रेजीडेंन्ट—(वहुत तेज) और तव भी आप पूछते है कि स्त्री से प्रेम न करने का कोई विशेष लाभ क्या है।

युवक—परन्तु यह सव तो हम आपकी सोसाइटी का सदस्य वने वगैर भी कर सकते है।

प्रेजीडेंन्ट—(दृढता से) नही कर सकते है। अव पूछिये क्यो ?

युवक—वताइये, क्यो ?

प्रेजीडेंन्ट—(समझाते हुए) क्योकि हम आपकी आदतो की छान-वीन करेंगे। आप पर प्रतिवन्ध लगाएँगे। प्रतिज्ञा-पत्र पर आपके रक्त-हस्ताक्षर लेंगे। और सव से वडी वात तो यह है कि सदैव आपको यह याद दिलाते रहेंगे कि यदि आपने स्त्री से प्यार किया तो आप विन आई मौत मर जायेंगे।

युवक—क्या मै पूछ सकता हूँ कि कही आपने किसी स्त्री से प्यार तो नही किया था ?

प्रेजीडेन्ट—किसने ? मैने ? अजी महाशय, मैने तो क्या मेरे स्वर्गवासी पिताजी ने भी खैर जाने दीजिये तब आप पूछेगे कि मै पैदा कैसे हुआ ?

युवक—(हँसता है) जी, वह तो आपका निजी विषय है खैर आपकी मैम्बरशिप फीस ?

प्रेजीडेन्ट—केवल चार आने मासिक।

युवक—इतना बडा काम और केवल चार आने मासिक फीस ?

प्रेजीडेन्ट—ताकि भारतवर्ष के अधिक-से-अधिक नवयुवक हमारी सेवाओ का लाभ उठा सकें। यह नाम मात्र फीस भी इसलिए रख छोडी है कि इश्तहारबाजी का खर्चा निकलता रहे तथा अधिक-से-अधिक सदस्य बनें। आपको विश्वास नही आएगा कि केवल पिछले मास, तीन हज़ार पुरुषो ने हमारा मेम्बर बनकर तथा स्त्री-जाति पर लानत भेजकर अपना भविष्य सँवारा है।

युवक—आप भारत के सच्चे सपूत है !

प्रेजी०—आपकी दया से।

युवक—आप तो देवता है !

प्रेजी०—धन्यवाद !

युवक—लाइये प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर कर दूँ।

प्रेजी०—अच्छी बात सैक्रेटरी !

सैक्रेटरी—(दूर से) जी !

प्रेजी०—प्रतिज्ञा-पत्र का फार्म लाइये और आपके रक्त-हस्ताक्षर लीजिये।

सैक्रेटरी—अच्छा जी।

(सगीत)

एक युवती—(फेडईन) आ सकती हूँ ?

प्रेजीडेन्ट—(बौखलाकर) जी ?

युवती—निवेदन किया, अन्दर आ सकती हूँ ?

प्रेजीडेन्ट—(स्थिरता से) जी नही।

युवती—(निकट आते हुए) शायद आप मजाक कर रहे है, वरना किसी लडकी को आने से कौन मना करता है ?

प्रेजीडेन्ट—(कठोरतापूर्वक) मै बिल्कुल मजाक नही कर रहा और न ही मुझे लडकियो से मजाक करने की आदत है। आपका यहाँ आने का मतलब क्या है ?

युवती—जरा बैठ तो लेने दीजिये (गहरा निश्वास छोडते हुए) सीढियाँ चढते-चढते साँस फूल गया और आप है कि बैठने के लिए भी नही कहते एक ग्लास

पानी मिलेगा ?

प्रेज़ीडेन्ट—(कुछ लाचार होकर) देखिये, मैंने कहा कि यह दफ्तर स्त्रियों के बैठने की जगह नही है। आपको जो कहना हो कहिये और जाती दिखाई दीजिये। यदि किसी ने आपको यहाँ देख लिया तो हमारी मान-प्रतिष्ठा मिट्टी में मिल जायगी।

युवती—(हल्की हँसी के साथ) लो, आप फिर मज़ाक पर उतर आए और अभी आप यह कह रहे थे कि लडकियो से मजाक करने की आदत नही · तो भी आप है बहुत ही दिलचस्प। आप से मिलकर बहुत प्रसन्नता हुई।

प्रेज़ीडेन्ट—परन्तु मुझे आपसे मिलकर जरा भी प्रसन्नता नही हुई। आप जानती है कि यह सोसाइटी आफ विमन हेटर्ज का हेडक्वार्टर है, यानि नारियो से घृणा करने वालो का बड़ा दफ्तर। इस कारण आपको यहाँ कभी नही आना चाहिए था।

युवती—(ठडी साँस भरकर) परन्तु मुझे विवश होकर यहाँ आना पडा। जब कही नौकरी न मिली तो खाक छानते-छानते यहाँ पहुँची। लेकिन मुझे मालूम न था कि···

प्रेज़ीडेन्ट—(व्यग से) चलो अब तो मालूम हो गया कि यहाँ भी आपका काम नही बन सकेगा। क्या एक बार मुझे फिर कहना पडेगा कि आप यहाँ से चली जाएँ ?

युवती—(निराशापूर्वक) मैं स्वय ही चली जाऊँगी विश्वास कीजिये। मैंने सोचा था कि आत्म-हत्या से पहले आखिरी बार अपने भाग्य को परख लूँ ··(हिच-कियाँ)·· परन्तु आप तो पूरे पत्थर-दिल निकले।

प्रेज़ीडेन्ट—(बिफर कर) देखिये, आप आँसुओ के मोती दिखाकर प्रभावित करने का प्रयत्न न कीजिये। हम लोगो पर स्त्रियो के आँसुओ या कहकहो का कोई प्रभाव नही पडता।

(हिचकियो की गति और भी तीव्र हो जाती है)

प्रजीडेन्ट—(परेशान होकर) अरे ! आपने तो सचमुच रोना शुरु कर दिया। सैक्रेटरी·· सैक्रेटरी (युवती से) ईश्वर के लिए हमारी इज्जत का कुछ तो ख्याल कीजिए। कोई देखेगा तो क्या कहेगा ?

(सैक्रेटरी आता है)

(सैक्रेटरी से) तुम बोलते क्यो नही सैक्रेटरी ? तुम ही इन्हे समझाओ यह क्या तमाशा बना रखा है ?

सैक्रेटरी—(युवती से) देखिये देवी जी, आप यहाँ से चली जाइये।

युवती—(रोते हुए) ओ ओ आपको भी मुझ पर तरस नही आता • आप भी •

प्रेजीडेन्ट—ओह माई लार्ड आप जायँगी या मै

युवती—(हिचकियो में) आप मेरी बात तो सुन लें।

प्रेजीडेन्ट—आप नही जाएँगी ? (दूर जाते हुए) तो मैं जाता हूँ मैं जाता हूँ।

(हिचकियाँ एकदम बन्द हो जाती है)

युवती—(लहजा बदलकर) सैक्रेटरी साहब !

सैक्रेटरी—देखिये, मेरी राय से आपका यहाँ बैठना उचित नही। यदि बुरा न मानें तो आप चली जाएँ ?

युवती—(इश्किया साँस भरकर) क्या आप भी मेरी व्यथा नही सुनेंगे ?

सैक्रेटरी—(अस्थिरता से) ज ज जी आखिर आखिर आप चाहती क्या है ?

युवती—(रूमानी साँस छोडते हुए) आप कितने अच्छे हैं सैक्रेटरी साहिब • कितने अच्छे ! कम-से-कम आप मेरी बात सुनने पर तो राजी हो गये। (निकट आते हुए) आप कितने भद्र पुरुष है।

सैक्रेटरी—(घबराकर) देखिये देखिये जरा दूर से बात कीजिये किसी ने देख लिया तो तो

युवती—(अदा से झुझलाकर) ओह आपको तो किसी का दिल रखना भी नही आता। आपके सीने में दिल की जगह पत्थर है जो किसी लडकी को सकट में देखकर पिघलना भी नही जानता।

सैक्रेटरी—(विनम्र) मैं विवश हूँ देवीजी इस सस्था का मुख्य सदस्य होने के कारण में आपकी कोई सेवा नही कर सकता।

युवती—(फिर निकट आते हुए, अरमानभरा साँस भरकर) क्या मेरे लिए आप कुछ भी नही कर सकते ? कुछ भी ?

सैक्रेटरी—मै आपको किसी और दफ्तर में नौकरी दिला सकता हूँ, क्योकि क्योकि मुझे आप से

युवती—(बात काटकर) सहानुभूति हो गई है (कुछ हँसकर) या कुछ और ?

सैक्रेटरी—(शर्माकर) जी हाँ, यही बात है। मुझे आप से •

युवती—(प्यार से) धन्यवाद !

सैक्रेटरी—(हौले से) काश ! मैं आपके लिए

युवती—(उसके मुँह पर हाथ रखते हुए) चुपचाप · कोई आ रहा है।

(पद-ध्वनि)

प्रेज़ीडैन्ट—(निकट आते हुए आप आप अभी तक यही बैठी है ? सैक्रेटरी · तुम ने इन्हे ·

युवती—(बात काटकर) इन्हे कुछ न कहिये·· यह बड़े भले आदमी है · अब मै जा रही हूँ। मेरा काम बन गया ?· ·

प्रेजीडैन्ट—(घबराकर) क्या कहा ?· आपका काम बन गया ? कैसा काम बन गया ? (सक्रोध) सैक्रेटरी।

सैक्रेटरी—(भयभीत) जी।

प्रेज़ीडैन्ट—(डाँटकर) तुमने इन्हे क्या वचन दिया है ?· बोलो !

युवती—इन्हे कुछ न कहिये· ·ईश्वर के लिए इन्हे कुछ न कहिये·· यह बडे नेक आदमी है· बड़े भद्र पुरुष है।

प्रेज़ीडैन्ट—(व्यग्य से) इसे अभी भद्रता का मजा चखाता हूँ।· ··· सैक्रेटरी !

सैक्रेटरी—ज···ज·· जी

प्रेज़ीडैन्ट—यह क्या कह रही है ? बोलो, तुमने इन्हे क्या वचन दिया है ?

सैक्रेटरी—मै अभी आता हूँ।

प्रेज़ीडैन्ट—(स्वगत) चला गया···सैक्रेटरी चला गया· क्यो· ·आखिर क्यो चला गया ·अवश्य कोई ऐसी-वैसी बात हुई होगी· ·जरूर दाल में कुछ काला है। (युवती से) आप बताइये उसने आपसे क्या कहा था ? बताइये उसकी आँखो में कैसी शर्म थी ?

युवती—(कुछ हँसकर) उन्होने मुझे नौकरी दिलाने का वचन दिया है ·· (अकडकर) अब मुझे आपकी दया की कोई आवश्यकता नही ·कोई आवश्यकता नही, क्योकि उन्हे मुझ से···

प्रेज़ीडैन्ट—(हकलाकर) प · प · प्यार हो गया है···यही ना ?

युवती—मै क्या जानूँ ? मगर कुछ हुआ है जरूर···तभी तो उन्होने मेरी सहायता करने का वचन दिया है।

प्रेज़ीडैन्ट—इस मरदूद की यह हिम्मत ?· यह मजाल· ·यदि इस नाबदार को मजा न चखाया तो मेरा नाम भी श्री ख्यालीराम गुप्ता नहीं···परन्तु उसने ऐसा किया क्यों ?· क्यों ?

युवती—क्योकि वह एक पुरुष है।

प्रेज़ीडैन्ट—और मैं पुरुष नही ?

युवती—यह तो आप ही जान सकते है, मेरे कहने या न कहने से क्या हासिल ? हाँ, इतना अवश्य कह सकती हूँ कि यदि आप पुरुष होते तो एक लड़की को सकट मे देखकर अवश्य पिघल जाते ।

प्रेजीडेन्ट—यानी वह मुर्दार पिघल गया है ना ? और मै पिघला नहीं इसलिए पुरुष भी नही यही ना ?

युवती—(खिलखिलाकर) शायद ।

प्रेजीडेन्ट—उसने आपको नौकरी दिलाने का वचन दिया है इसलिए वह पुरुष है।

युवती—जी हाँ ।

प्रेजीडेन्ट—और यदि मै कही नौकरी दिलाने की बजाय आपको स्वय यहाँ नौकर रख लूं तो ?

युवती—सच ? तब तो आप उनसे भी शानदार पुरुष होगे ।

प्रेजीडेन्ट—(स्वगत) अगर वह इस से वादा कर सकता है तो मै क्यो नही कर सकता ? हमारी सोसाइटी के नियम वह भी तो भली भांति जानता है (भाव-परिवर्तन) नही नही ऐसा नही हो सकता (व्यग्य से) इसलिए कि मै पुरुष नही इसी लिए ना ? नही-नही मै पुरुष हूँ मै पुरुष हूँ नारी से लाख नफरत सही तो भी सकट में किसी की सहायता करना तो मानव का कर्तव्य है मैं अवश्य इसकी सहायता करूंगा जरूर करूंगा (युवती से) सुनिये ।

युवती—जी ?

प्रेजीडेन्ट—मै आपको इसी दफ्तर में नौकर रख सकता हूँ बशर्ते कि

युवती—(अश्रु से) देखिये शर्त-वर्त कुछ नही आपको नौकर रखना है तो सीधी तरह नौकर रखिये और वेतन दीजिये बस मेरे अच्छे प्रेजीडेन्ट ।

प्रेजीडेन्ट—आप बडी शोख है ।

युवती—आप बड़े भोले है और अच्छे भी और पुरुष भी मै जानती थी आप अवश्य मेरी बात मान लेंगे जरूर मुझे पसन्द करेगे ।

प्रेजीडेन्ट—इसमें आपको पसन्द करने का सवाल क्योकर पैदा हुआ ? (कठोरता से) आप हद्द से ज्यादा

युवती—बिल्कुल नही बढ रही मै जानती थी कि आप कलाकार है ।

प्रेजीडेन्ट—आपने कैसे जाना ?

युवती—क्योकि आपकी नाक बिलकुल यूनानी है, मेरे प्रेजीडेन्ट, और यूनानी नाक वाले प्राय कलाकार होते है और हर कलाकार को सुन्दर चीजें पसन्द हुआ करती है ।

प्रेज़ीडैन्ट—(झेंपकर) धन्यवाद।

युवती—अच्छा 'तो अब आज्ञा है ?

प्रेज़ीडैन्ट—जी नही, आप चाय पिये बिना नही जा सकेंगी' 'ऐसी सर्दी में तो दुश्मन को भी चाय पिलाए बिना नही भेजा जाता।

युवती—हम भी तो आपके दुश्मन ही हैं।

प्रेज़ीडैन्ट—(हौले से) ऐसा क्यो कहती हैं आप तो मेरा दिल तोडने लगी 'देखिये 'जी नही, इधर मेरी आंखो की ओर 'यह तो दुनिया को बहकाने का ढकोसला बना रखा है वरना सच पूछिये तो मेरे सीने में भी एक धडकता हुआ दिल है जो धडकने के साथ-साथ तडपना भी जानता है।

युवती—सच ?

प्रेज़ीडैन्ट—हां, बिलकुल सच।

युवती—तब तो आपको ज़रूर मुझ से '

प्रेजीडैन्ट—धीरे बोलिये, कोई सुन न ले।

(लड़की हँसती है, पहले हौले-हौले फिर जोर-जोर से, मजाक उडाने के ढंग में)

प्रेज़ीडैन्ट—(कठोरता से) आप इस प्रकार क्यो हँस रही है ?

युवती—इसलिए कि मै सोसाइटी आफ मैन हेटर्ज़ की एक मेम्बर हूँ। पुरुषो से नफरत करने वालियो की सभा की एक तुच्छ सदस्य 'कहिये क्या ख्याल है ''नमस्ते'''मै जा रही हूँ। (दूर से) हा हा !

(संगीत)

कभी छोटे-छोटे चुटकले लोकोक्तियो आदि को शृंखलित कर दिया जाता है। प्रत्येक परिहास (Joke) वास्तव में एक छोटी-सी नाटिका के समान होता है। ऐसे कार्यक्रम की सफलता का रहस्य जितना परिहासो की मौलिकता में निहित है उतना उनके सयोजन में भी है। सयोजन इस तरह होना चाहिए कि कार्यक्रम की लय (tempo) बढती चली जाये। परिहास-संयोजन का एक उदाहरण प्रस्तुत है।

यह गलत नम्बर है !

(ले०—मदनमोहन खन्ना)

मोहन—(टेलीफोन डायल करता है) पांच चार' तीन'''दो ''एक। हैलो ! शर्मा साहब ?

दूसरी आवाज़—जी वर्मा साहब कनाट पलेस गये हैं।

मोहन—कौन कनाट पलेस गये हैं ?

दूसरी आवाज़—वर्मा साहब।

मोहन—कहाँ से बोल रहे है आप ?

दूसरी आवाज़—ग्यारह बारह खम्भा रोड से।

मोहन—ओहो ! माफ कीजिये गलत नम्बर है। (चोगा रख देता है। फिर डायल करता है) पाँच चार तीन दो एक। आप शर्मा साहब के घर से बोल रहे है ?

तीसरी आवाज़—जी हाँ।

मोहन—कौन बोल रहा है ?

तीसरी आवाज़—नौकर हूँ हुजूर।

मोहन—जरा शर्मा साहब को टेलीफोन पर बुला दो।

तीसरी आवाज़—मगर हुजूर उनका तो स्वर्गवास हो गया।

मोहन—(चिन्तित) हैं ! स्वर्गवास हो गया !

तीसरी आवाज़—जी हाँ, हुजूर !

मोहन—परमात्मा उनकी आत्मा को शान्ति दे। क्या हुआ था ?

तीसरी आवाज़—हार्ट फेल हो गया था सरकार !

मोहन—(घबराहट से) ओहो, मगर कब ?

तीसरी आवाज़—कोई साल भर हो गया हुजूर।

मोहन—(सक्रोध) साल भर हो गया ? कल तो अच्छे-भले थे। गधा कहीं का ? (टेलीफोन का चोगा रख देता है) कम्बख्त न जाने कहाँ से बोल रहा था ? (फिर डायल करता है)

मोहन—हैलो ?

चौथी आवाज़—(यह आवाज बहुत भारी है) हैलो।

मोहन—कहाँ से बोल रहे है आप ?

चौथी आवाज़—जहन्नुम से !

मोहन—क्या कहा ?

चौथी आवाज़—जहन्नुम से !

मोहन—जहन्नुम से ?

चौथी आवाज़—जी, कोई एतराज ?

मोहन—जी नही।

चौथी आवाज़—तो ?

मोहन—खुशी है।

चौथी आवाज़—क्यो ?

मोहन—कि आप ऐसे लोग वहाँ भी मौजूद है।

चौथी अवाज़—अपनी-अपनी किस्मत है। कहिये तो आपके लिए भी एक सीट रिज़र्व करवा लूं।

मोहन—जी, अभी तो नहीं।

चौथी आवाज़—क्यों डर गये ?

मोहन—इस वक्त तो मुझे जल्दी है। आपसे फिर कभी बात करूँगा।

चौथी आवाज़—ज़रूर।

मोहन—क्या नम्बर है आपका ?

चौथी आवाज़—डायरेक्टरी में देख लीजियेगा।

मोहन—और नाम।

चौथी आवाज़—नम्बर के साथ नाम भी दिया होता है जनाब !

मोहन—ओहो सिल्ली ! (टेलीफोन रख देता है) वाहियात ! नामालूम कहां से बकवास कर रहा था। सारे शहर का नम्बर मिल गया, लेकिन शर्मा साहब का नहीं मिलता। (डायल करता है)

हैलो

औरत—फुरसत मिल गई ?

मोहन—क्या कहा ?

औरत—वक्त मिल गया हजूर को। कब से इन्तजार में बैठी हूँ।

मोहन—इन्तजार में ?

औरत—तुम क्या जानो इन्तज़ार क्या होता है? ऐसा मालूम होता था जमीन साकिन हो गई है। दुनिया भर की घडियां खडी हो गई है और आज मेरे लिए साढे पांच न बजेंगे। खैर छोडो इन बातो को। शुक्र है तुमने टेलीफोन किया तो।

मोहन—माफ कीजिये, मैं··

औरत—माफी मांगने की जरूरत नहीं। मैं जानती हूँ तुम अक्सर भूल जाते हो। कोई नई बात नहीं। हां, वह तुम्हारा वादा कब पूरा हो रहा है ?

मोहन—वादा ?

औरत—तेरे वादे पर जिये हम, तो यह जान झूठ जाना—
कि खुशी से मर न जाते अगर ऐतबार होता।

मोहन—देखिये आप ··

औरत—काश ! मैं पहले समझ जाती, मगर क्या करूँ इस कम्बख्त दिल के हाथों मजबूर हूँ।

मोहन—मगर मेरी सुनिये तो···

औरत—बहुत सुन चुकी हूँ। अब एक न सुनूंगी।

मोहन—देखिये मैं वह नहीं हूँ जिस से आप ··

शर्मा—(पहचानते हुए) हैलो मोहन ! मोहन बोल रहे है क्या ?

मोहन—माफ कीजिये, यह गलत नम्बर है। (चोगा रख देता है)

(सगीत)

इसके अतिरिक्त और भी अनेक प्रकार है, जिनकी विस्तृत चर्चा सभव नही है। हाल में एक अत्यन्त रोचक प्रयोग किया गया है, उसकी चर्चा आवश्यक है। लखनऊ, पटना के द्रो के प्रस्तुतकर्ता एस० पी० कौशल ने 'रग तरग' शीर्षक से एक नये हास्य-कार्यक्रम का आयोजन किया है, इसमे प्रान्तीय भाषाओ, विशेषकर जनपदीय परिहासो को एक गायक सूत्रधार द्वारा क्रम-बद्ध करके प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया गया है। इस प्रकार यह परिहास-कार्यक्रम मनोरजकता के साथ-साथ शिक्षात्मक मूल्य भी ग्रहण कर लेता है।

लीला चिटनिस, वी० एन० मित्तल और वनमाला
एक रेडियो द्वारा प्रसारित नाटक मे भाग लेते हुए

अध्याय तीसरा

डाक्यूमैन्टरी अर्थात् आलेख रूपक

१०५ **मूलभूत सिद्धान्तों का विकास**—डाक्यूमैन्टरी, रूपक का एक बहुत विकसित प्रकार है। जितने शिल्प-गत प्रयोग इस रूप के क्षेत्र में हुए हैं उतने नाटक या साधारण रूपक के क्षेत्र में नही हुए। इसे प्रचलित हुए अभी बीस वर्ष भी नही हुए, लेकिन इस नये रूप ने अपनी अद्भुत मौलिकता और जनोपयोगिता के कारण रेडियो-नाट्य के क्षेत्र में एक विशिष्ट और आदरणीय स्थान बना लिया है। बल्कि मेरा मत तो यह है कि टैलीविजन की प्रगति के बाद रेडियो-नाट्य शैली और शिल्प का विकास आलेख-रूपक की दिशा में ही होगा।

अपने देश में डाक्यूमैन्टरी का विकास बिल्कुल नही हुआ। इसके कई कारण है। सब से अधिक महत्त्व का कारण आर्थिक है। अभी तक हमारी रेडियो-विकास योजनाओ का उद्देश्य केवल रेडियो का विस्तार, प्रसार हो रहा है। शिल्प-विषयक साधना अभी तक अधूरी है। ऑल इण्डिया रेडियो जैसी इतनी बड़ी ब्रॉडकास्टिंग सस्था का कोई विभाग ऐसा नही जिसमें शिल्प सम्बन्धी विशेष शिक्षा देने का प्रबन्ध हो। न ही, दूसरे देशो के विकसित ब्रॉडकास्टिंग कार्यालयो में जाकर विशेष शिक्षा प्राप्त करने की ओर उचित ध्यान दिया गया है। डाक्यूमैन्टरी एक अति विशेष कलारूप है। रेडियो-शिल्प सम्बन्धी ज्ञान और अनुभव इसके लिए कम है। टैक्नीकल सुविधाएँ भी बहुत देर से उपलब्ध हुई हैं। रुपये की कमी के कारण यह अब तक सम्भव नही हो सका कि एक 'मोबाइल डाक्यूमैन्टरी' यूनिट की स्थापना की जाये। भारत जैसे विशाल और वैविध्यपूर्ण देश में यह यूनिट कितना काम कर सकता था, इसकी कल्पना ही अत्यन्त सुन्दर है। यद्यपि डाक्यूमैन्टरी को विकसित करने का कोई विशेष प्रयत्न नही हुआ, फिर भी इस अति-आधुनिक नाट्य-रूप ने रेडियो-नाट्य के क्षेत्र में अपने लिए एक विशिष्ट-सामान्य स्थान बना लिया है।

युद्ध-कालीन ब्रॉडकास्टिंग में रूपक के विकास के साथ श्रव्य-कलाकार, प्रोग्राम-अध्यक्ष और कदाचित् श्रोता का ध्यान वस्तु-प्रधान रूपक की ओर आकृष्ट हुआ। ज्यो-ज्यो सामाजिक चेतना का क्षेत्र विकसित होता जा रहा है वस्तु-प्रधान और सोद्देश्य-कला का मूल्य बढता जा रहा है। डाक्यूमैन्टरी का विकास इसी चेतना-धारा के फलस्वरूप हो रहा है। स्वतन्त्रता के पश्चात् जितना विकास हुआ है उतना पिछले दस या उससे अधिक सालो में नही हुआ था। हालांकि बी० बी० सी० (जहां से

इस सम्बन्ध में प्राय सब कुछ सीखा गया) ने युद्ध से पहले ही डाक्यूमैन्टरी के बहुत ही सफल प्रयोग किये थे। स्वतन्त्रता के पश्चात् ब्रॉडकास्टिग ने एक नये युग में प्रवेश किया। राष्ट्रीय विकास की योजनाएँ बनाने वालो ने सोचा, केवल मनोरजन ही श्रव्य प्रसार का उद्देश्य नही है। स्वतन्त्रता से जो राष्ट्रीय भावना, जो रचनात्मक प्रेरणा जगी है, उसने एक दायित्वपूर्ण-कला और सोद्देश्य कलाविधान को अपनाया है। यद्यपि आज भी भावुकता-मयी कलाकृतियो का बाहुल्य है फिर भी यह स्पष्ट रूप से अनुभव कर लिया गया है कि वस्तु-निष्ठ कला का महत्त्व आज के जन-जीवन के लिए अधिक है। इसके साथ रेडियो ने समाज की समस्याओ की ओर ध्यान दिया है और साहसपूर्वक उनका कारण और कुछ स्थितियो में उनका हल ढूंढ़ने की सक्रिय चेष्टा भी की है।

श्रव्य-आलेख का उद्गम डाक्यूमैन्टरी फिल्म के विकास से प्रभावित हुआ। यद्यपि दोनो का प्रेरणा स्रोत एक ही था—सामाजिक चेतना। शब्द 'डाक्यूमैन्टरी', सुप्रसिद्ध फिल्म-निर्माता और सिद्धान्त-व्याख्याता, ग्रियर्सन द्वारा प्रचलित हुआ। उन्होने यह शब्द फ्रासीसी भाषा के शब्द 'documentaire' से अपनाया, जो वहाँ यात्राचित्रो के लिए प्रयुक्त होता था।

डाक्यूमैन्टरी-विकास के प्रारम्भिक काल में केवल सीधी समाचार फिल्में (newsreel) बनाई गई। इस विकास-प्रक्रिया का चरमोत्कर्ष 'The World of Plenty' जैसी पूर्णरूप से विकसित डाक्यूमैन्टरी फिल्मो में विद्यमान होता है। इन दो छोरो के बीच कुछ ऐसी फिल्मो का इतिहास भी है जिनका कलात्मक महत्त्व तो अधिक नही है, लेकिन ऐतिहासिक महत्त्व निश्चय ही है। यह मँझली कड़ी है Record Film। जैसा कि ब्रिटेन के डाक्टर डायन ने १६१० में सर्जीकल ऑपरेशन आदि की फिल्में बनाई। हर्बर्ट पेन्टिग की यात्रा-फिल्म 'With Scott in the Antarctic' और ब्रिटिश काउन्सिल की फिल्म 'Surgery in chest diseases'। इन शिक्षात्मक चित्रो का उद्देश्य एक विचार या टैकनीक की व्याख्या था ताकि और बहुत से लोग उससे लाभ उठा सकें। आलेख का उद्देश्य प्रसारमात्र ही था।

शिक्षात्मक चित्रो के अतिरिक्त ब्रिटेन में प्रचारात्मक फ़िल्में बनाई गई, जैसे कि 'Defeat Tuberculosis', Defeat Diptheria, Blood Tranfusion' आदि। विख्यात रूसी फिल्म 'Jus_ice In Coming' भी उसी प्रकार का चित्र था। इसमें वास्तविक घटनाओं के वास्तविक चित्रो का उपयोग किया गया। निर्माता ने अपने कौशल-चातुर्य से नात्सी अत्याचारो का हृदयस्पर्शी चित्रण करते हुए इस दृढ विश्वास का उदय होते दिखाया कि अत्याचारी की पराजय अवश्यम्भावी है। नात्सी प्रचारको ने भी रिकॉर्ड-फिल्म को शक्तिशाली प्रोपेगेंडा

यत्र के रूप में प्रयोग किया। पोलैंड की पराजय पर बनाई गई फिल्म 'The Taptism Of Fire' में जर्मन वायुसेना के प्रचण्ड विध्वस बल को प्रचारित किया गया। यह फिल्म आसपास के निसग देशो में भी दिखाई गई, ताकि जर्मन Wehrmacht की धाक उनके दिलो में बैठ जाये।

अगर फिलम को देखने के तुरन्त बाद कुछ वैयक्तिक क्रिया परिणाम रूप में नही होती तो वह साधारण सूचनात्मक फिलम कहलायेगी। लेकिन अगर फिलम का उद्देश्य वैभक्तिक क्रिया और किसी प्रकार का अपेक्षित व्यवहार है तो वह फिल्म प्रचारात्मक होगी। डॉक्यूमैन्टरी शब्द का प्रयोग करते समय ग्रियर्सन के मन में दोनो प्रकार के चित्र थे। रावर्ट फ्लाहर्टी के चित्र 'Nanook of the North' (१६२२) को सब से पहले डॉक्यूमैन्टरी फिलम कहा जा सकता है, यद्यपि यह भी पूर्ण विकसित रूसी डॉक्यूमैन्टरी से बहुत पीछे थी फिर भी इसमें डॉक्यूमैन्टरी रचनातत्र का प्रयोग किया गया था। इसलिए फ्लाहर्टी का नाम फिल्म के इतिहास में प्रसिद्ध है। पहली बार उसने कैमरे को स्टूडियो से बाहर निकलकर खुली प्रकृति का अवलोकन करने का अवसर दिया। उसका उद्देश्य था जीवन का यथार्थ चित्रण। स्टूडियो में इस यथार्थ की प्रतिकृति तो बन सकती थी, परन्तु उस चित्र में एक प्रकार की निष्प्राणता आ जाना स्वाभाविक था। बहुत प्रयत्न करने पर भी चित्र में उस वैविध्य और मौलिकता का अभाव रहता जो प्रकृति के साधारण चित्रो में होती है। 'Nanook' का उद्देश्य कदाचित् कलात्मक नही था, बल्कि वाणिज्य-प्रेरणा इस चित्र-सृजन का कारण थी, किन्तु फिर भी, चूंकि चित्रकार एक सच्चा कलाकार था, उसकी रचना में अपने आप स्थायी कलात्मक महत्व के तत्वो का समावेश होता गया। पॉलरोथा ने इस फिलम के विषय में लिखा—

"Nanook differed from the previous and many later natural material pictures in the simplicity of its statement of the primitive existence led by the Eskimos, put on the screen It brought alive the fundamental issue of life in the Sub-Arctic-the struggle for ford . ... In short it established an entirely new approach to the living scene"

और ग्रियर्सन ने भी इस प्रयोग की प्रशसा की। उसने देखा कि यह चित्र एक ऐसी दिशा का सकेत कर रहा है जिधर बहुत विकास की सम्भावना है।

"It was a record of everyday life too selective in its details and sequence, so intimate in its 'Shots', and so appreciative of the nuances of common feeling, that it was a drama in many ways more telling than anything that had come out of the manufactured sets of Hollywood"

फ्लाहर्टी के प्रयोग का महत्त्व इसमें है कि पहली बार उसने एक ऐसी फिल्म बनाई जिसे Creative treatment of actuality कहा जा सकता है। 'नानूक' एक साधारण सूचनात्मक चित्र नही था। न्यूज़रील और 'नानूक' में यह अन्तर था कि न्यूजरील घटनाओ का वर्णनमात्र होती है, लेकिन यह चित्र घटनाओ की व्याख्या थी, एक सृजनात्मक व्यक्तित्व के दृष्टिकोण से। इसे बनाने के लिए फ्लाहर्टी स्वय अपने (Subject) के सन्निकट जाकर रहा, उनके जीवन और उसकी समस्याओ को, उनकी ही दृष्टि से देखा। इसलिए फलाहर्टी के चित्रण में वस्तु और अभिधा का उपयुक्त सामजस्य मिलता है। उसका विश्लेषण सहानुभूति और आत्मीयता के तत्वो से रसवत् है। जीवन के इस प्रबल मोह को लेकर उसने जीवन-सौन्दर्य को कैमरे की सहायना से चित्रबद्ध किया। अन्तत बहुत सी चित्र-सामग्री में से आवश्यक और महत्त्वपूर्ण को चुन लिया। और उसे एक पूर्वनिश्चित आलेखन की रूपरेखा के अनुसार निर्मित किया।

फ्लाहर्टी के डॉक्यूमैन्टरी शिल्प को आदर्श नही कहा जा सकता। किन्तु उसकी निर्माण-प्रणाली में सभी तत्त्व आ गये है जिनके विकास के फलस्वरूप विकसित आलेख का उद्गम होता है यह तत्व है वस्तु का निरीक्षण (observation) और व्याख्या (Interpretation), और वस्तु का निर्माणात्मक चयन। यथार्थनिष्ठ शैली का प्रयोग करते हुए भी फ्लाहर्टी एक रोमैंटिक व्यक्ति था एक चित्रकार। ग्रियर्सन की दृष्टि एक समाज-व्याख्याता की थी। १६२६ में बनाई गई फिल्म 'Drifters' इन दो निर्माताओ के सूक्ष्म विभेद को स्पष्ट कर देती है। यह चित्र रूसी सेनीशिल्प और यथार्थनिष्ठ शैली से प्रभावित है। इस चित्र में मछुओ के जीवन का चित्रणमात्र नही किया गया बल्कि यह दिखाया गया है कि इस सकुचित क्षेत्र के जीवन का समूचे देश के जीवन से क्या सम्बन्ध है ? ग्रियर्सन के नेतृत्व में आलेख फिल्म का एक नया स्कूल शुरू हुआ जिसके अन्तर्गत अनेक चिरस्मरणीय डॉक्यूमैन्टरी फिल्में निर्माण की गई। कदाचित् 'Drifters' में भी सामाजिक चेतना उतनी सजग नही थी जितनी कि भावी फिल्मो में, उदाहरणार्थ यह बात "The World of Plenty', मे दिखाई देगी, फिर भी इसे डॉक्यूमैन्टरी स्कूल की आधारशिला कहना अत्युचित नही है।

१६३२ मे 'Cinema Quarterly' के शरद् अक में ग्रियर्सन ने डॉक्यूमैन्टरी सिद्धान्त के मूल सूत्रो को शब्दबद्ध किया। इन सिद्धान्तो की चर्चा रेडियो डाक्यूमैन्टरी के स्वरूप और विकास को समझने में सहायता देगी, क्योकि इसी वातावरण में लारेंस गिल्लियम (जो बी बी सी के डॉक्यूमैन्टरी विभाग के अध्यक्ष रहे है) ने १६३८ में पहला डाक्यूमैन्टरी रूपक प्रस्तुत किया। माध्यम दूसरा था, किन्तु

शिल्प, और उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त वही था जो ग्रियर्सन और उसके दूसरे साथी अपना चुके थे। ग्रियर्सन ने लिखा था—

पहला सिद्धान्त—हमारा विश्वास है कि सिनेमा स्टूडियो से बाहर निकलकर जीवन का अध्ययन कर सकता है। और इस नई वृत्ति को एक नवीन और शक्तिशाली कलारूप के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है। स्टूडियो फिल्में प्राय. वास्तविक संसार के अध्ययन-पूर्ण चित्रण की सम्भावना की उपेक्षा करती रही है। वे चित्रित करती है अभिनय-कहानियाँ, एक कृत्रिम पृष्ठभूमि पर। डॉक्यूमैन्टरी प्राकृतिक जीवन और सजीव कथा को चित्रित करेगी।

दूसरा सिद्धान्त—हमारा विश्वास है कि प्राकृतिक अभिनेता और प्राकृतिक दृश्य वस्तु आधुनिक जीवन की कही अधिक प्रबल अभिव्यक्ति कर सकते है, क्योकि उनका क्षेत्र स्टूडियो-ससार से कही अधिक विस्तृत है।

. तीसरा सिद्धान्त—हमारा विश्वास है कि इस प्रकार जीवन से सीधी ग्रहण की हुई वस्तु और कथायें, अभिनीत जीवन से अधिक सत्य और प्रभावशाली होगी। जितनी आत्मीयता और सूक्ष्म सवेदना इस चित्र में होगी वह स्टूडियो-निर्मित अलकारपूर्ण और अनेक प्रयत्नो के बावजूद कृत्रिम चित्र में नही हो सकती।

विरोध में यह कहा गया कि कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए जीवन को हूबहू सेल्युलायड पर नही उतारा जा सकता। चित्रित वस्तु को सुन्दर बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उसे अलकृत किया जाये। अगर कैमरा जीवन की विस्तृत अनन्विति का चित्र प्रस्तुत करे तो उसमें एक प्रकार की कुरूपता आ जाने का भय रहेगा। इसके उत्तर में ग्रियर्सन ने १६३३ की Cinema Quarterly के वसन्त अक में लिखा।

"Beauty will came in good time to inhabit the statement which is honest and lucid and deeply felt, and which best fulgills the best ends of citizen-ship The self-conscious pursuit of beauty, (to the exclusion of jobs of work and other pedestriān beginnings) was always a reflection of selfish wealth, selfish leisure and aesthetic decadence "

कुछ वर्ष बाद ग्रियर्सन ने इस बात पर बल दिया कि डॉक्यूमैन्टरी कलाकार के लिए जीवन का गम्भीर अध्ययन और उसमें गुफित समस्याओ का विश्लेषण आवश्यक है, क्योकि बिना इसके वह कभी प्रभावशाली और सच्चा जीवन-चित्र उपस्थित नही कर सकता। सो उसने कहा 'Observe and Analyse. Know and Build'। पर उसने अपने साथियो को सावधान किया था कि यह विश्लेषण-वाद सहानुभूति के अभाव में ऐसी कलाकृति को जन्म देता है जिसका वैज्ञानिक मूल्य भले ही हो, लेकिन कलात्मक और मानवीय मूल्य कुछ नहीं होगा।

"The only point at which art is concerned with information is the point at which the flame shoots up and the light kindles, and it enters into the soul and feeds itself there Informational indeed can be a dangerous business, if the kindling process is not there Most professors are a dreary warning of what happens when the informationist fails to become a poet"

इस यथार्थनिष्ठ और सोद्देश्य कला का एक और रूप, या यो कहा जाये, कि वर्तमान समस्याओ के प्रति अधिक सजग और सामाजिक कर्तव्यो के प्रति अधिक जागरूक रूप, पॉलरोथा की डॉक्यूमेन्टरी शैली में स्पष्ट प्रकट हो रहा था। ग्रियर्सन और उसके साथी औद्योगिक जीवन के विविध सौन्दर्य के सुन्दर चित्रण से सन्तुष्ट थे। पॉलरोथा औद्योगिक क्रान्ति से प्रस्फुटित सामाजिक समस्याओ और मानसिक विषमताओं के विश्लेषण और उनके उपचार में अधिक दिलचस्पी रखता था। ग्रियर्सन ने रूसी फिल्म की यथार्थवादी परम्परा के शिल्पगत सिद्धान्तो को ग्रहण किया था। लेकिन पॉलरोथा इस नये शिल्प की आधारभूत विचारधारा से भी प्रभावित हुआ, कि चित्रित वस्तु की सुन्दरता प्रभावोत्पादकता और भव्यता से अधिक महत्त्वपूर्ण है उसकी सत्यता, जीवन से उसका सम्बन्ध, और जनता के लिए उसका महत्त्व और लाभ। व्यक्तिवादी रसवाद (Individualistic aestheticism) फिल्म के लिए घातक है, जैसा कि वह चित्रकला कविता और दूसरे आख्यान साहित्य के लिए सिद्ध हुआ है। क्योकि ऐसी कला का विषय रहता है—"The personal struggles and experiences of unimportant individuals, seeking satisfaction in an Imaginary worldevoid of human relationships on a significant scale." और सिनेमा चूंकि एक जनकला है अत उसका क्षेत्र जीवन के समान विस्तृत होना चाहिए, उसे जनता के निकट और उनके जीवन के लिए वास्तविक रूप से महत्त्वपूर्ण और सार्थक होना चाहिए। इसलिए आवश्यक है कि कला स्वस्थ और रचनात्मक उद्देश्यो से परिपूर्ण हो और 'Real and creative thought must be about real things इसलिए सिने-कलाकार को चाहिए कि वह सहज प्रकृति और साधारण जीवन को अपनी कलाकृति का आधार बनाये।

"Let cinema attempt the dramtisation of the living scene and the living theme, springing from the living present instead of from the synthetic fabrication of the studio Let cinema attempt film interpretation of modern problems and events, of things as they really are today and by so doing perform a definite function"

रोथा यथार्थ के साथ-साथ उद्देश्य पर बल देता है, और इस प्रकार डाक्यू-मैन्टरी दूसरे विश्वयुद्ध से पहले एक नया कदम उठाती है, नयी दिशा में प्रगति करती है। रटमैन के चित्र 'Berlin' और रोथा के चित्र 'The World of plenty की तुलना से स्पष्ट होता है कि डॉक्यूमैन्टरी शैली में निश्चित रूप मे परिवर्तन आ गया था। रेडियो डाक्युमैन्टरी पर भी इस परिवर्तन का गहरा प्रभाव पड़ा।

एक और शिल्पगत प्रयोग था जो रेडियो डॉक्यूमैन्टरी का अंग बना। वह था, चित्रवस्तु की व्याख्या के लिए संगीत का अधिक विचारपूर्ण प्रयोग और ध्वनि-प्रभावों और संवादो का प्रयोग। १९३६ में कवलकांति (Cavalcanti) द्वारा निर्मित आलेख चित्र 'नाईटमेल' में ध्वनि-प्रभावो का बहुत ही सफल उपयोग किया गया, और यही इस चित्र की मुख्य विशेषता थी। रेलगाडी के अनेक ध्वनि आभास, डाक छाँटने वालो और डाक कुलियो की बातचीत आदि को ध्वनि प्रभाव के तौर पर प्रयोग किया गया, जिससे चित्रित वस्तु अत्यन्त सजीव हो उठी। इसके अतिरिक्त W. H. Auden की एक कविता भी प्रयुक्त हुई, जो ध्वनि के लय-वैविध्य के अनुरूप थी।

कवलकान्ति के एक और चित्र 'The Coal Face' मे भी ध्वनि और संगीत-प्रभावो का विशेष उपयोग किया गया, जो ग्रियर्सन के निर्देशन में William Goldstream और Stuart Legg द्वारा रिकार्ड किये गये। इससे पहले आम तौर पर निरूपक की वार्ता संगीत की पृष्ठभूमि पर बोली जाती थी, प्राय इन दो का समन्वय नही हो पाता था। अब निरूपक के वर्णन और व्याख्या को संगीत से एकात्म करके रिकार्ड किया गया। इस प्रकार निरूपण अब डॉक्यूमैन्टरी का एक अंग बन गया। इसके अतिरिक्त निरूपण के प्रभाव की पुष्टि करने के लिए और उसमें वर्णित अथवा व्यक्त भाव विशेषताओ की अभिव्यक्ति के लिए समूहगान का भी प्रयोग किया गया। इस युक्ति से न केवल उचित वातावरण की सृष्टि में सहायता मिलती थी बल्कि human tonch के प्रभाव को भी बल मिलता था। इस प्रयोग को भी रेडियो डॉक्यूमैन्टरी ने अपनाया।

इसी के साथ एक और तत्त्व का प्रादुर्भाव हुआ जिसे आगे चलकर रेडियो डॉक्यूमैन्टरी ने अपनाया। वह है 'Spot Interviews' यानी स्टूडियो के बाहर रिकार्ड किए हुए प्राकृतिक कथोपकथन, प्रश्नोत्तर आदि। 'Housing Problem' नामक डॉक्यूमैन्टरी में कैमरे से अधिक माइक्रोफोन ने काम किया। इस चित्र में Slums में रहने वालो के शब्दो में उस अभिशप्त क्षेत्र की कहानी सुनने को मिली। यह इन्टरव्यू पहले से लिखे नहीं गये थे वरन् वार्तक को माईक्रोफोन के सामने लाकर बिना किसी रिहर्सल आदि के रिकार्ड किये गये। इनकी भाषा सरल रूप से प्रभाव-

युक्त, और चित्र की सत्यता को प्रमाणित करने वाली थी।

जैसे-जैसे डॉक्यूमैन्टरी में सामाजिक चेतना का उदय होता जा रहा था, जैसे-जैसे कलाकार जनजीवन के प्रति दायित्वपूर्ण होता जा रहा था, उसके चित्रो में यथार्थता और उसके विचारो में प्राजलता आती जा रही थी।

भारत में भी डॉक्यूमैन्टरी रूपक का विकास प्राय इसी प्रकार का हुआ है। जैसा कि रूपक की चर्चा में कहा गया था, आलेखरूपक का उद्गम और विकास साधारण रूपक की प्रगति के परिणामस्वरूप हुआ। स्वतन्त्रता से पूर्व भी बम्बई केन्द्र की साईकल चलाने वालो पर प्रस्तुत की गई डॉक्यूमैन्टरी, और दिल्ली केन्द्र की 'यह दिल्ली है' कार्यक्रम प्रसिद्ध है। इन रूपको की सामग्री रिकार्डिंग मशीनें बाहर ले जाकर ध्वनि-अकित हुई और बल दिया गया, वस्तु और यथार्थ पर। पहली बार श्रोताओ ने अनुभव किया कि यथार्थ भी उचित प्रस्तुतीकरण द्वारा कल्पनात्मक ऐसा रोचक और आकर्षक बनाया जा सकता है, और इसमें जो बहुमूल्य सजीवता और शक्ति है, वह कृत्रिमतापूर्ण रोमानी नाटको में नही। स्वतन्त्रता के पश्चात् इस दिशा में अनेक प्रयोग बहुत वेग से होने लगे। दिल्ली केन्द्र का कुरुक्षेत्र शरणार्थी कैम्प पर गोपालदास द्वारा प्रस्तुत आलेख रूपक प्रसिद्ध है। अयाज असारी के निर्देशन में प्रस्तुत मुहम्मद हसन का रूपक 'लखनऊ का चौक' भी एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग था, यद्यपि उसमें रिकार्डित और स्टूडियो में निर्मित प्रभावों का सन्तोषजनक समन्वय न होने के कारण, सफलता अधूरी ही रही। बाल-घर केन्द्र ने जो रूपक पजाब के उद्योगों पर प्रस्तुत किये उनमें एक विशेष दोष था। ध्वनिप्रभाव बिल्कुल असली, लेकिन पात्रों की बातचीत नितान्त अप्राकृतिक और अस्वाभाविक थी। परिणाम यह हुआ कि सब कुछ-पूर्व निश्चित और कृत्रिम लगता था। दिल्ली केन्द्र के उल्लेखनीय आलेखरूपक है—नीलोखेड़ी, गगाखादर, कुम्भपर्व, उर्स ख्वाजा गरीबनवाज, एटावा प्रोजेक्ट, और गिरिजाकुमार माथुर रचित नृत-रूपक—'दामोदर घाटी योजना'।

१०६ आलेखरूपक का निर्माण-शिल्प—आलेखरूपक, यानी डॉक्यूमैन्टरी का निर्माण-शिल्प फिल्म टेकनीक के समान है, यानी पहले एक सुनिश्चित रूपरेखा के अनुसार सामग्री एकत्र की जाती है, फिर उस समुच्चय में से महत्त्वपूर्ण चीजो का सकलन होता है, अन्त में इसी सकलित आलेख वस्तु को एक कथानक द्वारा क्रमबद्ध किया जाता है। प्राय इस अन्तिम रचना को भी काट-छाँटकर सुगठित करने का प्रयास किया जाता है। यह रचना-प्रक्रिया बिल्कुल फिल्म निर्माण-क्रिया से मिलती-जुलती है। अर्थात् फिल्म कथालेखन, चित्रीकरण सयोजना, (सिनेरिया शूटिंग, कम्पोजिंग और सम्पादन (एडिटिंग)।

हम इस प्रक्रिया की विस्तारपूर्वक और सविवरण चर्चा कर सकते है। इस चर्चा में उन सब समस्याओ पर भी प्रकाश पडेगा, जो रचना प्रक्रिया में डॉक्यूमैन्टरी प्रोड्यूसरो के सामने आती है।

१०७. परिलेख—सबसे पहले प्रोड्यूसर विषय का अध्ययन करता है और उससे सम्बन्धित सामग्री एकत्रित करता है; यानी रियासतो के विलयन पर डॉक्यूमैन्टरी लिखने के लिए लेखक को रियासतो की ऐतिहासिक पार्श्वभूमि से परिचित होना होगा, और वहाँ की जनता की समस्याओ की जानकारी प्राप्त करनी होगी, और फिर स्वतन्त्रता के वाद जो परिवर्तन वहाँ की शासन-व्यवस्था में आया उसे समझना होगा। सबसे अधिक महत्त्व की वात इस क्रान्ति के मूलभूत विचारो को केन्द्र मानकर इन सब वातो का सही मतलब समझने और जो प्रभाव इस कदम से समूचे देश पर पडेगा उसका मूल्याकन करने का प्रयास उस रूप में होगा। अगर उसमें लिखित सामग्री का वाहुल्य हो तो वह रचना, डॉक्यूमैन्टरी की श्रेणी में नही आ सकेगी। डॉक्यूमैन्टरी कहलाने के लिए उसमें अधिक-से-अधिक यथार्थ वस्तु का होना अनिवार्य है। इसलिए ऐतिहासिक ससस्याओ का और प्रभावो का मूल्याकन आदि अधिक प्रत्यक्ष दृश्यो द्वारा होगा, वर्णित या अभिनीत दृश्यो द्वारा नही। उदाहरणार्थ राजाओ और उनके दरवारियो के शोषण की चर्चा एक वस्तुनिष्ठ रूपक की भावना-शून्य व्याख्या नही होगी, वलिक एक अतिवृद्ध किसान की जवानी होगी, जिसके स्वरमात्र से वर्षो का शोषण पुकार उठेगा। इस तरह पिछडे हुए वर्गो का प्रतिनिधित्व करेगा एक भूमिहीन किसान या सम्पत्तिहीन श्रमिक। अत सामग्री का सग्रह इस दृष्टि से किया जाएगा कि अधिक-से-अधिक वस्तु सजीव पात्रो द्वारा प्रकाशित हो सके। डॉक्यूमैन्टरी निर्माता की सफलता का आधार यही वास्तविकता की सवेदना (Actuality Sense) है। वर्णित वस्तु का प्रयोग केवल सक्षेप के उद्देश्य से होगा और वह भी कम-से-कम। जैसे नाटक का असली अर्थ पात्र, क्रिया और गति से व्यक्त होता है, भाषणो या व्याख्याओ से नहीं, उसी तरह डॉक्यूमैन्टरी के लिए भी निरूपणो और व्याख्याओ की अपेक्षा सजीव दृश्य अधिक सफल और प्रभावजनक रहते हैं। विषय के अध्ययन के वाद निर्माता एक साधारण रूपरेखा निश्चित करता है। ठीक उसी तरह जिस तरह कि नाटककार लिखने से पहले नाटक का परिलेख निर्मित करता है। इसी रूपरेखा के आधार पर वह वस्तु-सामग्री (Actuality Material) का संग्रह करेगा। जैसे सिनेरियो को लेकर फिल्म निर्माता शूटिंग करता है।

१०८. 'वस्तु संग्रह'—डाक्यूमैन्टरी के निर्माण के लिए कुछ वस्तु तो अध्ययन से ही प्राप्त हो जायेगी, विशेषकर सूचनात्मक या वैज्ञानिक सामग्री, लेकिन अधिक महत्त्व की वस्तु हमें निर्मित करनी होगी। अध्ययन और कल्पना के सामजस्य से वह

वस्तु प्राप्त होगी जो आलेखरूपक का वास्तविक स्वरूप निर्धारित करेगी। इस वस्तु का निर्माता लेखक नही है, लोग है। वास्तव में एक घटना या तथ्य की क्रियात्मक और सार्थक अभिव्यक्ति तब तक नही हो सकती जब तक हम उसे अनेक दृष्टिकोणो से न देख लें। ये लोग समस्या को अनेक दृष्टिकोणो से देखने में लेखक की सहायता करते है। इसके अतिरिक्त जो जानकारी या तथ्यनिरूपक के शब्दो में नीरस और निष्प्रभाव बनकर रह जाते हैं, वही किसी साधारण वक्ता के सम्भाषण द्वारा सजीव हो उठते हैं। अनुभूति वस्तु का प्रभाव केवल वर्णित वस्तु से कही अधिक होता है। जब सूचना में धडकनो का समावेश होता है तब जाकर वह सप्राण होती है। आलेख-रूपक का रहस्य यही है कि सग्रहित यथार्थ वस्तु को भावना (feeling) की एक अन्तरधारा निरन्तर रजित करती रहे।

इस वस्तु को अनेक रूपो में प्रयुक्त किया जाता है—इटरव्यू, वक्तव्य, साधारण प्रश्नोत्तर या केवल उद्धरणमात्र। यहाँ सबसे बडी समस्या यह उठती है कि वैसे तो एक व्यक्ति खुलकर, बिल्कुल स्वाभाविक भाषा में अपना मन प्रकट करता है, पर जैसे ही उसे यह बताया जाता है कि अब से उसके शब्द रिकार्ड किये जा रहे हैं, तो उसमें एक प्रकार की अस्वाभाविकता, एक तरह की जकडन तथा विकृति आ जाती है। कई लोग अपनी सहज भाषा को छोडकर 'साहित्यिक' भाषा बोलने लगते हैं। कोई स्वाभाविकता लाने के लिए 'गोया कि', 'तो मेरा मतलब है', 'बात यह है, बात यह है' आदि पुछल्ले अपनी सीधी-सादी बातचीत से जोडना शुरू कर देते है। कई बार-बार यही बात दोहराये जाते है, कोल्हू के बैल की तरह एक ही विचार की धुरी पर घूमे जाते हैं, और कोई इतने उत्तेजित हो उठते हैं कि उनकी आम बोल-चाल की व्याकरण भी कलाबाजियाँ खा जाती है। और वह विच्छृखल विचारो को जितना व्यवस्थित करने की कोशिश करते है उतना ही गडबड-घोटाला ज्यादा होता है। अपने प्रति सजग होते ही थोडी-बहुत उत्तेजना तो स्वाभाविक है, लेकिन अगर वक्ता के विचार मछुए के जाल में मछलियो की तरह तडप उठें, तो वह बिचारा क्या करे ? इस भावातिरेक को शान्त कर सकना डाक्यूमैन्टरी निर्माता के लिए आवश्यक है। उसका अपना व्यक्तित्व ऐसा होना चाहिए कि बोलने वाला साधारण रूप से अपना मन खोल कर रख दे। जो अव्यवस्था या विच्छृखलता विचारो में रह जायेगी उसे सम्पादन में ठीक किया जा सकता है। अनावश्यक अशो की कतरव्योत और टाक-जोड के बाद यह इटरव्यू असाधारण रूप से स्वाभाविक और प्रभावोत्पादक बन जाता है। लेकिन सब से कठिन है जकडन का प्रश्न ! ऐसे लोग वैसे तो खूब चहक रहे हैं लेकिन जैसे ही माइक सामने आता है और इजीनियर रिकार्डर को चालू करता है, उनकी बोलती बन्द हो जाती है। सुनाई देती है केवल खिसियानी हँसी। बहुत लुभाने, उकसाने या

तिकतिकाने पर भी वे काम की बात बोलकर नही देते। इस कठिनाई का हल यह है कि अगर सम्भव हो तो उन्हे रिकार्डर की उपस्थिति का ज्ञान न होने दिया जाये और बात-चीत करते हुए उसे रिकार्ड कर लिया जाये। बाद को स्टूडियो मे जाकर सम्पादित किये जाने पर रिकार्डित वस्तु को सन्तोषजनक रूप दिया जा सकता है।

स्टूडियो के बाहर और भी बहुत सी मौलिक और मूल्यवान वस्तुओ का सग्रह हो सकता है, जैसे ध्वनि-प्रभाव और सगीत आदि। डाक्यूमैन्टरी मे जितनी अधिक ध्वनि-वस्तु होगी उतना अधिक उसका प्रभाव होगा। हरिद्वार के कुम्भपर्व पर डाक्यूमैन्टरी बनाते समय मैने अलग-अलग दूरी से जनरव को रिकार्ड किया। मेले-ठेले का शोरोगुल, अनेक भाषाओ का प्रभाव, कीर्तन आदि के ध्वनि-प्रभाव भी रिकार्ड किये। इस बहुमूल्य सामग्री को दिल्ली लाकर उचित रूप से एकत्रित (Assemble) करके उपयोग किया गया। इसी प्रकार अजमेर के उर्स पर 'ख्वाजा गरीबनवाज' नामक रूपक में, मैंने उर्स के अन्तिम सप्ताह का ध्वनि-चित्र प्रस्तुत करते हुए, विभिन्न वक्ताओ की वाणी द्वारा उर्स की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को प्रकाशित किया। वहाँ भी अनेक प्रकार की ध्वनियाँ उपलब्ध थी। वहाँ जाकर मैंने अनुभव किया कि जनरव की कितनी छटाएँ होती है, और उन्हे रूपक के लिए कितने तरीको से इस्तेमाल किया जा सकता है। माइक एक जायर (यात्री) था जो सम्पूर्ण आसक्ति से दरगाह की हर एक पावन वस्तु का दर्शन कर रहा था। माइक को व्यक्तित्व और सवेदन दे देने से श्रोता ने अनुभव किया कि वह भी माइक के साथ-साथ दरगाह और उर्स को देख रहा है।

१०९. सम्पादन और सयोजना—जैसा कि डॉक्यूमैन्टरी—चित्र Nanook की चर्चा करते हुए कहा गया था कि निर्माता को पहले बहुत सी चित्र-सामग्री शूट करनी पडती है। ध्वनिरूपक के लिए बहुत सी ध्वनि-सामग्री का सग्रह करना पडता है। फिर इस सग्रह में से महत्त्वपूर्ण वस्तु को अलग कर लिया जाता है, ताकि डाक्यूमैन्टरी का अन्तिम रूप निर्मित करते हुए हम केवल आवश्यक अशो का उपयोग करें। इस प्रकार हम डाक्यूमैन्टरी निर्माण के तीसरे, और कदाचित् सब से अधिक कठिन, चरण पर आते है। कुशल सम्पादन पर ही कृति की सफलता निर्भर है। रेडियो डॉक्यूमैन्टरी के लिए सम्पादन करते समय हमें यह देखना होगा कि कही भी श्रोता के ऊब जाने का भय न रहे। इसलिए जहाँ भी पुनरुक्ति आदि दोष दिखाई दे वहाँ कैंची चला देनी चाहिए। अक्सर डॉक्यूमैन्टरी लेखक और निर्माता एव निर्देशक एक ही व्यक्ति होता है। अगर सग्रहकर्ता और निर्माता भिन्न व्यक्ति है, तो कार्य निश्चय ही कठिन और नाजुक होता है। निर्माता अपेक्षया अधिक वस्तुनिष्ठ और अनासक्त भाव से सम्पादन कर सका है। निरूपण, व्याख्या या सवाद को काटना अधिक कठिन नही होता। क्योकि दूसरी बार

पढने पर अक्सर लेखक चार शब्दो की बात दो वल्कि एक में कहना अच्छा समझता है। इटरव्यू को सक्षिप्त करना जहाँ सबसे अधिक वाछनीय है वहाँ सबसे अधिक कठिन भी है। क्योंकि पहले वाक्य का पाँचवें और फिर इन दोनो का ग्यारहवें से सिलसिला जोडना खासा मुश्किल होता है। अक्सर निर्माता का रिकार्डिंग इजीनियरो की सहायता से विभिन्न वाक्यो को अलग-अलग डिस्को पर रिकार्ड करके फिर सब को मिलाना होता है, ताकि विचार की कडी न टूटने पाये, और वाक्यो में गठन और प्रभाव में तीव्रता आ जाये। कभी बहुत से मिले-जुले ध्वनि-प्रभावो में से एक को अलग करना पडता है, ताकि उसे उचित स्थान पर चिपकाया जाये। यह भी विशेष रूप से निर्मित रिकार्ड बजाने की मशीनो (Callibrated turn table) की सहायता से सम्भव हो सकता है। यह काम विशेषकर ध्वनिसयोजक ही करते हैं।

सम्पादन के बाद सयोजना का प्रश्न आता है। विभिन्न टुकडो को किस तरकीब से रखा जाये, अमुक इन्टरव्यू कितना समय ले या अमुक ध्वनि-आभास कहाँ कैसा प्रभाव पैदा करे, इसका निर्णय अब करना होगा। इस कुशल डाक्यूमेन्टरी निर्माता की रचना में गुफन का गुण प्रधान होता है। उसकी रचना के अगो में उचित अनुपात होता है। उसमें केन्द्रीय विचार स्वाभाविक ढग से प्रकट होता है। सम्भव है कि कृति का अन्तिम रूप निर्धारित करते समय प्रारम्भिक रूपरेखा में कई परिवर्तन करने पड़ें, कई क्रमो (sequences) को आगे-पीछे करना पडे। एक अच्छी डाक्यूमेन्टरी का गुण है सगठन, गुफन और ऐक्य। इसके विपरीत, एक बुरी डाक्यूमेन्टरी में ढीलापन और विच्छृह्खलता होगी। उसके विभिन्न अगभूत भाग अलग-अलग दिखाई देंगे। हर टुकडा यदि अपने में आकृष्ट करता है तो कृति में निश्चय ही विकेन्द्रीयता होगी। ऐसी रचना में प्रभाव का अभाव रहेगा। कही भी श्रोता का ध्यान मूलभूत विषय से नही हटना चाहिए। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए शायद निर्माता को सगीत के लाईत मोतीफ की तरह अपनी थीम (Theme) को बार-बार दुहराना पडे। अगर ऐसा करना पडे तो लेखक की सफलता और कृति-कुशलता इसी में है कि वह विषय के एक statement को दूसरे से भिन्न रूप में प्रस्तुत करे।

११० अतिम रूप—डाक्यूमेन्टरी को सुगठित बनाने के लिए यह आवश्यक है कि मूल विषय एक केन्द्रीय विचार के रूप में उपस्थित हो। वही विभिन्न अगो को एक-सूत्र कर सकेगा। 'नीलोखेडी' रूपक में मैंने वरगद के पेड के विचार को केन्द्र मान कर उसकी परिक्रमा करने वाले उपविचारो को सयोजित किया है। बीज के प्रस्फुटन और विकास को नीलोखेडी नगर के विकास का प्रतिरूप मानकर चलने से न केवल निरूपण रोचक बन सका, वल्कि रचना में ऐक्य का गुण भी प्रधान रहा। या कभी-कभी कुशल निर्माता विषय को एक यथाक्रम द्वारा व्यक्त करते हैं, जिसमें नाटको की

सूत्रधार २—ससार की सभ्यता का इतिहास विचार-धाराओ का इतिहास है। ऐसी विचारधारा में जिसका बल प्रतिपल बढता जाता है, यहाँ तक कि वह महाक्रान्ति का रूप धारण कर लेती है। एक इन्सान के हृदय में जन्म लेकर वह हजारो, लाखो, करोडो इन्सानो के दिलो की प्रेरणा बस जाती है, और नई सभ्यता का उदय होता है।

(सगीत चरमोत्कर्ष तक पहुँचकर विलीन होने लगता है)

सूत्रधार १—आज आप नीलोखेडी को देखिये।

(पृष्ठभूमि से हल्का पक्षी कलरव उदय होता है)

सूरज अभी-अभी निकला है, और पक्षियो के कलरव ने वातावरण को जीवन से भर दिया है। (धीरे से बिजलीघर का शब्द स्पष्ट होता है) बिजलीघर में मशीनें चल पडी है, और काम करनेवाले अपने-अपने घरों से निकल पडे हैं। हर कारखाने मे कलपुर्जों का सगीत गूंज उठा है।

(बारी-बारी से सब मशीनों का चल पडना। सम्मिलित प्रभाव का चरमोत्कर्ष तक पहुँचना)

सारी नीलोखेडी जाग पडी है। और इस बस्ती के रहनेवाले अपने ध्येय की ओर बढे जा रहे हैं। एक कदम, दूसरा कदम, तीसरा क़दम, आगे ही आगे।

(मजदूर मजिल का गीत उभरता है)

सूत्रधार १—आज नीलोखेडी में साढे सात हज़ार से ऊपर लोग बस रहे हैं। यह एक हजार एक सौ पचास एकड में फैला हुआ है। यहाँ इस समय बहुत से कारखाने हैं, और लाखो रुपयो का काम रोज़ होता है। लेकिन यह महान् नगर एक दिन में नही बना, इसकी भी एक कहानी है।

(मज़दूर मजिल का गीत अधिकाधिक स्पष्ट होता जाय)

सूत्रधार ३—नीलोखेडी की कहानी कोई अलिफलैला की कहानी नही, जिसमें शहजादा हसन की, जिन्नो, परियो की और हीरे-जवाहरात के पहाडो की चर्चा हो, या जिसमें अलादीन के चिराग की दास्तान कही गई है, जिसके बल पर आप दुनिया की किसी भी वस्तु को प्राप्त कर सकते है। पलक झपकते भर में बादलों से बातें करने वाला महल खडा कर सकते हैं। पर नीलोखेडी की कहानी अलादीन के चिराग की कहानी से कम अद्भुत नही, बल्कि उससे कही अधिक आकर्षक है। नीलोखेडी की कहानी इन्सान के अमिट विश्वास की कहानी है जो सभी मुश्किलात को हल करके भविष्य को वर्तमान में ला सकता है।

(पृष्ठभूमि का गीत चरमोत्कर्ष तक पहुँचकर सगीत में विलीन हो जाता है। फिर सम्पूर्ण विलयन)

डाक्यूमैन्टरी अर्थात् आलेख रूपक

सूत्रधार २—१५ अगस्त, १९४७ निर्वासित जनता का एक सैलाब है जो भारत की दिशा में बहा चला आ रहा है। जनता, जिनके घरबार लुट गये हैं, जिनका साहस शिथिल हो चुका है, जिनका विश्वास डोल रहा है। यह जनता भय-भीत है, नही जानती कि किधर जाये, और क्या करे, नये देश में नया जीवन कैसे शुरु करे ?

सूत्रधार १—कुरुक्षेत्र के मैदान में, महाभारत के युद्ध ने एक सभ्यता का उपसहार देखा। उसी मैदान में आज एक नई सभ्यता का उदय हो रहा है। इस नई सभ्यता का आधार है।

सूत्रधार १—हर इन्सान को काम करने का बल मिला है।

सूत्रधार २—और उसे जिन्दगी की खुशी को बढाने के काम मे लाया जा सकता है।

सूत्रधार ३—और समृद्धि के साधनो पर सारे समाज का एकात्मक अधिकार होना चाहिए।

सूत्रधार १—इस क्रान्तिकारी विचार ने शिथिल जनता में स्फूर्ति भर दी, हताश दिलो में साहस भरा और पल-पल जल रहे विश्वास को दृढ बना दिया, और जनता ने कहा .

सूत्रधार १—हम भीख नही मांगेंगे।

सूत्रधार २—हम अपने शरीर के अन्दर सो रही शक्ति को जगायेंगे।

सूत्रधार ३—हमें काम करने का अवसर दिया जाये।

सूत्रधार ४—हम धरती को चीरकर उसमें छुपे सोने को निकाल लायेगे।

सब—हम नये भारत के जीवन को मुस्कराहटो से भर देंगे।

(संगीत)

सूत्रधार २—इसी विश्वास को लेकर वह आगे बढे।

सूत्रधार १—सत्रह हजार रुपये के सरमाये ने कुरुक्षेत्र कैम्प में एक 'वोकेश-नल सैन्टर' की बुनियाद रखी गई।

आवाज १—हमें कपडा चाहिये, हम कपडा बनायेंगे।

आवाज २—लेकिन कपडे के लिए खड्डियां चाहियें।

आवाज १—हम खड्डियां बनायेंगे।

आवाज २—खड्डियां बनाने के लिए औजार चाहियें।

आवाज १—हम औजार बनायेंगे।

आवाज २—औजार बनाने के लिए कारखाने चाहियें।

आवाज १—हम कारखाने क़ायम करेंगे।

सिद्धान्तो के अनुसार अपना जीवन ढालने की प्रेरणा देता है, ताकि नीलोखेडी का जीवन यन्त्रवत् न होकर रचनात्मक वन सके, और जीवन का स्तर ऊँचा किया जा सके। समाज-सेवा सस्था में सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान है स्वास्थ्य और शिक्षा-व्यवस्था का।

(श्री रामलाल से इन्टरव्यू का उद्धरण)

सूत्रधार १—नीलोखेडी का प्रथम ध्येय है बस्ती में रहने वालो को स्वावलम्बी बनाना, और उन्हे पूरी-पूरी आर्थिक स्वतन्त्रता दिलाना। उद्योगो को इस प्रकार चलाया गया है कि करीब करीब सारा माल वस्ती में या उसके आसपास के ग्रामो और नगरो में खप जाता है। इस व्यवस्था में 'मिडिल मैन' अर्थात् विचौलिये का कोई स्थान नहीं, जो स्वय कुछ काम न करके कारीगर और माल खरीदने वाले से कही अधिक लाभ प्राप्त कर सकता है।

सूत्रधार १—यह है

(वर्कशाप का सयुक्त ध्वनि-चित्र क्रमश प्रकट होता है)

नीलोखेडी का औद्योगिक केन्द्र। यह इजीनियरिग डिपार्टमेंट है।

(वर्कशाप का सयुक्त ध्वनि-चित्र स्पष्ट होता है)

और यह लकडी का काम करने का केन्द्र है।

(बढई विभाग का ध्वनि-चित्र)

यहाँ चमडे का काम हो रहा है। और यह है छापाखाना जो पजाव में कदाचित सबसे बडा छापाखाना है।

(छापेखाने का ध्वनि-चित्र)

सूत्रधार २—नीलोखेडी के नाटक में वहुत से पात्र है। लेकिन वह सब एक ही आदर्श की पूजा करते है, और वह है 'काम'। नीलोखेडी का सिद्धान्त है।

आवाज १—तुम अधिक काम करोगे तो अधिक कमाओगे। तुम अधिक कमाओगे तो तुम्हारा समाज अधिक समृद्ध होगा। समाज समृद्ध होगा तो तुम सुखी होगे।

आवाज २—आइये हम इस अद्भुत नाटक के कुछ पात्रो से परिचय प्राप्त करें।

(इन्टरव्यू)

सूत्रधार १—नीलोखेडी की समाज व्यवस्था किसी पर बलपूर्वक ठोसी नही गई। इसका निर्माण स्वय जनता की आकाक्षाओ से हुआ है। जन-सत्ता की विजय के इस प्रतीक का एक विशेष दर्शन है, जिसके मुख्य सूत्र है

सूत्रधार १—नीलोखेडी में केवल मेहनत द्वारा सुख प्राप्त करने वालो का

स्थान है, ऐसो का नही, जो दूसरो की कमाई का लाभ उठाना चाहते है ।

सूत्रधार २—काम के क्षेत्र से बाहर नीलोखेडी के सब वासी एक समान हैं ।

सूत्रधार ३—और सबको जीवन में उन्नत होने और अपने व्यक्तित्व को रचनात्मक कार्य में अभिव्यक्त करने का पूरा-पूरा अवसर मिलेगा ।

सूत्रधार ४—जो काम नही करेगा भूखा रहेगा।

सूत्रधार ५—हर बच्चे को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है ।

सूत्रधार ६—हर बीमार को, चाहे वह अमीर हो या गरीब, इलाज की सहायता का अधिकार है ।

सूत्रधार ७—धर्म हर नागरिक का व्यक्तिगत मामला है, और बस्ती के सामूहिक जीवन में इसका कोई स्थान नही ।

सूत्रधार ८—किसी को अधिकार नही कि वह जनता की इच्छा के विरुद्ध उनके स्नेह या आदर को पाने का प्रयत्न करे ।

सूत्रधार १—नीलोखेडी एक प्रयोग है, एक नया दर्शन है, जिससे प्रेरित होकर साढे सात हजार व्यक्ति अपनी जिन्दगी बसर कर रहे है । नीलोखेडी का प्रतीक है नटराज शिव, अर्थात् प्रगति, उन्नति और जीवन । नीलोखेडी का सृष्टा उसे 'मजदूर मजिल' कहता है । नीलोखेडी के मार्ग पर बैलगाडी और मोटर कार दोनो का स्थान है ।

सूत्रधार २—मजदूर मजिल व्यवस्था में व्यक्ति की स्वतन्त्रता को सामूहिक कर्तव्य-व्यवस्था में समोया गया है । नीलोखेडी सगम है पूर्व और पश्चिम का, और आशादीप है भारत के अनेको पुरानी आर्थिक व्यवस्था के बन्धन तोडने को आतुर जनता का ।

सूत्रधार ३—नीलोखेडी एक नई दुनिया की खोज का प्रतीक है जो इस समय भविष्य के गर्भ में जन्म ले चुकी है । नीलोखेडी की सफलता निर्भर है ऐसे धरती के बेटो पर जो दूर-दूर तक इस सन्देश को पहुँचा सकें, जो हर त्रस्त हृदय को भयमुक्त करा सकें, और हर इन्सान में यह विश्वास भर सकें, कि इस धरती के प्रत्येक प्राणी को जीने का अधिकार है ।

(उपसहार सगीत क्रमश उदय होता है)

सूत्रधार १—नीलोखेडी इन्सान की महानता का प्रमाण है जो बडी से बडी मुसीबत के सामने भी परास्त नही होती । जीवन के एक ऐसे अमर तत्व का प्रतीक है जो आत्मा की तरह अमर है अविनाशी ।

(संगीत उमड़ता है)

में परिणत होकर एक ही माइक्रोफोन द्वारा प्रसारित हो सके। यह ध्वनि-तरग कितनी ही जटिल तथा वैविध्यपूर्ण क्यो न हो एक ही प्रसारक (amplifier) द्वारा प्रसारित होती है।

आंख के सवेद की प्रक्रिया कान की सवेद-प्रक्रिया से भिन्न है। दृश्य वस्तु का चित्र आंख की पुतली (lens) द्वारा चक्षुपट (retina) पर प्रतिबिम्बित होता है। यह चक्षुपट छोटे-छोटे अनेकानेक वैयक्तिक-विशेषता सम्पन्न तत्त्वो से निर्मित है। प्रत्येक तत्त्व का दिमाग से अलग-अलग सम्बन्ध है। इस प्रकार के कोई एक लाख तत्त्व होते है। अत आंख एक अत्यन्त जटिल इन्द्री है और उसकी प्रक्रिया में सूक्ष्म सकलन और दृश्य वस्तु के छोटे-छोटे विवरणो तथा विशेषताओ को प्रतीति ग्रहण करने की सामर्थ्य है। और य सब विशेषताएँ और विवरण दिमाग तक अलग-अलग रास्तो से पहुँचते है। विवरणो का सम्मिश्रण नही होता, नही तो देखने वाला एक अरूप धब्बे से अधिक कुछ न देख पाता।

इसी लिए टैलीविजन में दृश्यवस्तु को प्रसारित करने के लिए अनेक विविध विवरणो को अलग-अलग किन्तु एक समय पर प्रसारित किया जाता है। एक समय पर कोई पच्चीस हजार विवरण प्रसारित किये जाते है। यह प्रसार एक Photo-cell द्वारा होता है जो एक चित्र को विद्युत्तरगो में परिणत कर देता है। प्रसार के लिए चित्र को खण्ड-खण्ड करना पडता है, रेखाओं के रूप में। रिसीवर में ये रेखाएँ फिर समन्वित होकर एक प्लेट पर आती है। फिल्म की तरह इन चित्रो का प्रसार इतनी द्रुत गति से किया जाता है कि देखने वाले को एक चित्र और दूसरे के बीच के रिक्त का आभास नही होता। एक-एक सैकिण्ड मे पच्चीस चित्र प्रसारित होते है।

लगता है कि टैलीविजन-नाटक सिनेमा के समरूप है, क्योकि दोनो के चित्र एक प्रकाशित पट (screen) पर आते है, दोनो के निर्माण-शिल्प में समानता है। लेकिन यह पूर्णतया सत्य नही है।

११३ ध्वनि-नाटक और टैलीविजन नाटक का विभेद—टैलीविजन में कैमरे का प्रयोग होता है। नाट्य-क्रिया को चित्रो और दृश्य-क्रमो द्वारा व्यक्त भी किया जाता है, और इसके कौशल मे उन सब साधनो, उपकरणो का उपयोग होती है, जिनका विकास सिनेमा ने किया है। इन उपकरणो की सहायता से ही टैलीविजन को अत्यधिक स्वतन्त्रता प्राप्त है। फिर भी टैलीविजन नाटक फिल्म की अपेक्षा रगनाटक के अधिक सन्निकट है। लेकिन फिर भी टैलीविजन फिलम से भिन्न है। वस्तुत. वह समन्वय है ध्वनि नाटक और रग-नाटक के रूपो का। इसके दो प्रमुख कारण है। एक, खेल का प्रभाव तात्कालिक होता है, delayed action नही। दो, प्रेक्षक और श्रोता-समूह की सख्या एक-सी होती है। यानी—

"It is an audience of individuals and small groups. It is not a mass audience." इसलिए टैलीविजन अभिनय का मूल स्रोत रंगमंच है। वहाँ सिनेमा की अपेक्षा, और ध्वनि-नाटक की तरह, अभिनेता को प्रसार के साथ-साथ नाटक के प्रभाव का निर्माण करना पडता है। फिल्म में तो अलग-अलग चित्र-क्रम तैयार होते है, और बाद में संयोजन द्वारा एकात्मक प्रवाह में प्रस्तुत किये जाते हैं। इस तुलना से यह महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकलता है कि टैलीविजन नाटक को ध्वनि-नाटक के अनुभव से लाभ उठाना चाहिए और यह समझना चाहिए कि जो विशाल समूह को प्रिय होता है वह संकुचित समूह को नही होगा। जैसा कि सुप्रसिद्ध निर्देशक वालगीलगुड ने हाल ही में लिखा था—

"where it has exalted the camera-drawing false analogies from the cinema and despised or depreciated the microphone, it has thrown away valuable accumulated experience of sound in favour of thinking, largely wishful, in terms of vision"

इसलिए टैलीविजन नाटक और ध्वनिनाटक का विभेदक पार्थक्य वाछनीय नही है।

टैलीविजन दृश्य-श्रव्य है, अत उनमें काव्य के दोनो प्रकारो के गुण और विशेषताएँ वर्तमान है। एक दृष्टिकोण से यह प्रयास है श्रव्य में दृश्य-तत्त्व के अभाव को पूर्ण करने का। श्रव्य का आधारमात्र काल है और दृश्य-श्रव्य का देश और काल। इसी से वह सिनेमा और उससे भी अधिक रंगमंच के अधिक निकट है।

कला की दृष्टि से सब से अधिक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन जो ब्रॉडकास्टिंग में होगा वह अरूप के स्थान पर रूपायत्त की स्थापना है। श्रव्य का आधार (और माध्यम) है ध्वनि, अरूप, और Non-figurative जिसका लक्ष्य श्रुति संवेद और कल्पना है। टैलीविजन जिनमें दृश्यतत्त्व की प्रधानता है सूक्ष्म विचारो और अनुभूतियो की अपेक्षा वस्तु, स्थूल वस्तु, पर अधिक बल देगी, और टैलीविजन के कार्यक्षेत्र में सूक्ष्म की अपेक्षा भव्य पर अधिक बल दिया जायेगा। इसके अनेक उदाहरण है। नाटक की अपेक्षा ओपेरा, वैसे और जलसे-जुलूसो, खेल-तमाशो, समारोहो के टैलीविजन कार्यक्रम अधिक लोकप्रिय पाए जाते हैं।

टैलीविजन के माध्यम के अन्तर्गत रेडियो, डॉक्युमेन्टरी की ओर अधिक झुक रहा है, सुदूर प्रदेशो की घटनाओ का वर्णन या ध्वन्यात्मक अभिव्यक्ति मात्र घटना के वस्तुतत्त्व, उनकी वृहदता को पूर्ण रूप से व्यक्त नही कर पाते। अत. दृश्य-श्रव्य द्वारा डॉक्यूमेंन्टरी प्रयोग की सम्भावनाएँ बढ गई है।

११५. ध्वनि नाटक का भविष्य—टैलीविजन एक चुनौती है ध्वनि नाटक

के लिए। वाल गीलुगुड ऐसे श्रव्यकार ने भी जिनकी ग्रास्था ध्वनि-नाट्य के प्रति ग्रडिग है कह दिया है कि "with the arrival of television drama, the seeds of death for the play broadcast in sound are inevitably sown" लेकिन इतना निराश होने की ग्रावश्यकता नही। सब से बडा कारण जो टैलीविजन के लिए रुकावट पैदा करेगा वह है भारत की ग्रार्थिक स्थिति। उन देशो में भी जहाँ की जनता का ग्रार्थिक स्तर ऊँचा है टैलीविजन रेडियो-सैट का स्थान नही ले सकी। इसके ग्रतिरिक्त एक टैलीविजन नाटक सात सौ से दो हज़ार पौण्ड की लागत से तैयार होता है। ग्रौर बी० बी० सी० में इसके लिए तीन से पाँच सप्ताह लगते हैं। स्पष्ट है कि वर्षो तक भारत इस उन्नत ग्रवस्था तक नही पहुँच सकता। टैलीविजन नाटक की लागत ही उसे रेडियो-नाटक की तरह ग्राम नही बनने देगी। लेकिन ग्रार्थिक कारणो के ग्रतिरिक्त ग्रन्य कई कारण हैं जो रेडियो-नाटक को चिरकाल तक लोकप्रिय बनाए रखेंगे। जब टैलीविजन ग्रा गई तो रेडियो-नाटक यथार्थनिष्ठता छोडकर ग्रभिव्यजनात्मक ग्रौर ग्रतिवस्तुवादी नाटक की दिशा में प्रगति करने लगेगा। ये ऐसे क्षेत्र है जहाँ टैलीविजन की पहुँच सरलता से नही हो सकती, क्योकि वहाँ रूपायत्त ग्रौर स्थूल की ग्रपेक्षा ग्ररूप का ग्रधिक मूल्य है। वस्तुत नाटक के उन विशेष रूपो का विकास श्रव्य के माध्यम द्वारा ही सम्भव है।

ग्रतिविकसित हो जाने पर भी टैलीविजन नाटक उन सूक्ष्म भावछटाग्रो को उतनी मार्मिकता से व्यक्त नही कर पाएगा, जितनी से कि ध्वनिनाटक कर पाता है। टैलीविजन नाटक की ग्रपील सामान्य जनता के लिए होगी ध्वनिनाटक की कलात्मक ग्रभिरुचि, विकसित बुद्धि वाले श्रोताग्रो के लिए, जो पूर्वनिर्मित से सन्तुष्ट नही होते बल्कि सूक्ष्म ग्राधारो पर कल्प्य मूल्यो के निर्माण में ग्रधिक ग्रानन्द प्राप्त करते हैं, जो देखने भर से प्रसन्न नही होते बल्कि सोचने ग्रौर ग्रनुभव करने को ग्रधिक महत्त्वपूर्ण ग्रौर ग्राध्यात्मक तृप्ति के लिए ग्रधिक मूल्यवान समझते हैं। इसी कारण टैलीविजन नाटक की भव्यता ग्रौर विस्तार पर बल देगी ग्रौर इन तत्त्वो से लाभ उठायेगी, ध्वनि नाटक गम्भीर ग्रौर प्रगाढ ग्रान्तरिक ग्रौर सूक्ष्म की ग्रभिव्यक्ति पर। टैलीविजन को ग्रपनी परिमितियो की क्षतिपूर्ति के लिए ध्वन्यात्मक मूल्यो का ग्राश्रय लेना पडेगा। जिन के साथ [illegible] ध्वनि को भी रखना होगा, जो रूपायत्त की पृष्ठभूमि में काम करने वाले ग्ररू[illegible] व्याख्या करे। तभी उसमें व्यजना, समग्रता (comprehensibility) ग्राएगी। इन दो तत्त्वो के परस्पर सहयोग ग्रौर सघात से निश्चय ही एक नवीन कला का विकास हो रहा है ग्रौर होता जाएगा, जो दोनो से भिन्न किन्तु दोनो से ग्रधिक [illegible] ग्रौर प्रभायुक्त होगी।

एक कलारूप को सब से ग्रधिक हानि उसका ग्रकलात्मक, ग्रसयत ग्रौर

अरुचिपूर्ण उपयोग पहुँचाता है। रेडियोनाट्य के ध्वनि रूप को स्वस्थ और शक्ति शाली बनाए रखने के लिए हमें उसके उपयोग पर एक प्रकार का नियत्रण रखना होगा, ताकि ध्वनिनाटक का आकर्षण, उसका प्रभाव व्यर्थ व्यय न हो। ध्वनिनाटक के क्षेत्र में अभी बहुत परिष्कृति और विकास की सम्भावना है। सुदृढ नीवो पर स्थापित ध्वनिनाटक निश्चय ही टैलीविजन के मुकाबले अपनी रोचकता और लोक-प्रियता बनाए रख सकता है इस सम्बन्ध में वाल गीलगुड ने बी० बी० सी० की त्रैमासिक पत्रिका के शरत अक (१६५०-५१) में जो मत प्रकट किया हो वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और विचारणीय है। वह लिखता है

"The danger to drama in sound lies rather, I believe, in its own success, than in the ultimate triumph of television Drama has been exploited, is to often exploited to cover a multitude of tedious sins Dramatization has been used, is being used, to embellish, to trim, to vulgarise straight forward items of broadcasting which should stand on their own feet When in doubt of listener appeal, back-ground music, sound effects, dramatic narrative, are dragged in by the heels to 'present' talks industrial featurs, news items, even variety terms The result has been to produce a conveyer-belt mentality in producers, a feeling of subject among listeners

के लिए। वाल गीलुगुड ऐसे श्रव्यकार ने भी जिनकी आस्था ध्वनि-नाट्य के प्रति अडिग है कह दिया है कि "with the arrival of television drama, the seeds of death for the play broadcast in sound are inevitably sown" लेकिन इतना निराश होने की आवश्यकता नही। सब से बडा कारण जो टैलीविजन के लिए रुकावट पैदा करेगा वह है भारत की आर्थिक स्थिति। उन देशो में भी जहाँ की जनता का आर्थिक स्तर ऊँचा है टैलीविजन रेडियो-सैट का स्थान नही ले सकी। इसके अतिरिक्त एक टैलीविजन नाटक सात सौ से दो हजार पौण्ड की लागत से तैयार होता है। और बी० बी० सी० में इसके लिए तीन से पाँच सप्ताह लगते है। स्पष्ट है कि वर्षो तक भारत इस उन्नत अवस्था तक नही पहुँच सकता। टैलीविजन नाटक की लागत ही उसे रेडियो-नाटक की तरह आम नही बनने देगी। लेकिन आर्थिक कारणो के अतिरिक्त अन्य कई कारण है जो रेडियो-नाटक को चिरकाल तक लोकप्रिय बनाए रखेगे। जब टैलीविजन आ गई तो रेडियो-नाटक यथार्थनिष्ठता छोडकर अभिव्यजनात्मक और अतिवस्तुवादी नाटक की दिशा मे प्रगति करने लगेगा। ये ऐसे क्षेत्र है जहाँ टैलीविजन की पहुँच सरलता से नहीं हो सकती, क्योकि वहाँ रूपायत्त और स्थूल की अपेक्षा अरूप का अधिक मूल्य है। वस्तुत नाटक के उन विशेष रूपो का विकास श्रव्य के माध्यम द्वारा ही सम्भव है।

अतिविकसित हो जाने पर भी टैलीविजन नाटक उन सूक्ष्म भावछटाओ को उतनी मार्मिकता से व्यक्त नही कर पाएगा, जितनी से कि ध्वनिनाटक कर पाता है। टैलीविजन नाटक की अपील सामान्य जनता के लिए होगी ध्वनिनाटक की कलात्मक अभिरुचि, विकसित बुद्धि वाले श्रोताओ के लिए, जो पूर्वनिर्मित से सन्तुष्ट नही होते बल्कि सूक्ष्म आधारो पर कल्प्य मूल्यो के निर्माण में अधिक आनन्द प्राप्त करते है, जो देखने भर से प्रसन्न नही होते बल्कि सोचने और अनुभव करने को अधिक महत्त्वपूर्ण और आध्यात्मक तृप्ति के लिए अधिक मूल्यवान समझते है। इसी कारण टैलीविजन नाटक की भव्यता और विस्तार पर बल देगी और इन तत्त्वो से लाभ उठायेगी, ध्वनि नाटक गम्भीर और प्रगाढ आन्तरिक और सूक्ष्म की अभिव्यक्ति पर। टैलीविजन को अपनी परिमितियो की क्षतिपूर्ति के लिए ध्वन्यात्मक मूल्यो का आश्रय लेना पडेगा। जिन के साथ उसे ध्वनि को भी रखना होगा, जो रूपायत्त की पृष्ठभूमि में काम करने वाले अरूप की व्याख्या करे। तभी उसमें व्यजना, समग्रता (comprehensibility) आएगी। इन दो तत्वो के परस्पर सहयोग और सघात से निश्चय ही एक नवीन कला का विकास हो रहा है और होता जाएगा, जो दोनो से भिन्न किन्तु दोनो से अधिक शक्तिशाली और प्रभायुक्त होगी।

एक कलारूप को सब से अधिक हानि उसका अकलात्मक, असयत और

अरुचिपूर्ण उपयोग पहुँचाता है। रेडियोनाट्य के ध्वनि रूप को स्वस्थ और शक्तिशाली बनाए रखने के लिए हमें उसके उपयोग पर एक प्रकार का नियन्त्रण रखना होगा, ताकि ध्वनिनाटक का आकर्षण, उसका प्रभाव व्यर्थ व्यय न हो। ध्वनिनाटक के क्षेत्र में अभी बहुत परिष्कृति और विकास की सम्भावना है। सुदृढ नीवों पर स्थापित ध्वनिनाटक निश्चय ही टैलीविजन के मुकावले अपनी रोचकता और लोकप्रियता बनाए रख सकता है इस सम्बन्ध में वाल गोलगुड ने बी० बी० सी० की त्रैमासिक पत्रिका के शरत अक (१६५०-५१) में जो मत प्रकट किया हो वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और विचारणीय है। वह लिखता है

"The danger to drama in sound lies rather, I believe, in its own success, than in the ultimate triumph of television Drama has been exploited, is to often exploited to cover a multitude of tedious sins Dramatization has been used, is being used, to embellish, to trim, to vulgarise straight forward items of broadcasting which should stand on their own feet When in doubt of listener appeal, background music, sound effects, dramatic narrative, are dragged in by the heels to 'present' talks industrial featurs, news items, even variety terms. The result has been to produce a conveyer-belt mentality in producers, a feeling of subject among listeners